प्राप्ति स्थान : श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी

गोदीको का रास्ता

किशनपोल बाजार, जयपुर-३०२००३

श्रुत पंचमी

सन् १९७८

मूल्य : २० रुपये

मुद्रक : मनोज प्रिन्टर्स

जयपुर।

अध्यक्ष की ओर से

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की ओर से प्रकाशित "महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एव भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति" पुस्तक को पाठको के हाथो मे देते हुये मुझे वडी प्रसन्नता है। प्रस्तुत पुस्तक महावीर ग्रन्थ अकादमी का प्रथम प्रकाशन है जो समूचे हिन्दी जैन साहित्य को २० भागो मे प्रकाशित करने के उद्देश्य से स्थापित की गयी है। हिन्दी भापा मे जैन कवियो द्वारा निवद्ध विशाल साहित्य उपलब्ध होता है। श्री दिगम्वर जैन अतिशय क्षेत्र अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी के साहित्य शोध विभाग की ओर से डा० कासलीवाल के सम्पादन मे राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूचियो के पाच भाग प्रकाशित हुए हैं उनमें जैन कवियो की सैकडो रचनाओ का उल्लेख मिलता है। डा० कासलीवाल जी ने "राजस्थान के जैन सन्त-व्यक्तित्व एवं कृतित्व" तथा "महाकवि दौलतराम कासलीवाल-व्यक्तित्व एवं कृतित्व" इन दो पुस्तको के माध्यम से जैन कवियो के महत्वपूर्ण साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया है जिनका सभी ओर से स्वागत हुआ है। समाज मे कितनी ही उच्चस्तरीय प्रकाशन संस्थायें हैं लेकिन हिन्दी मे निवद्ध जैन कवियो के साहित्य के प्रकाशन की कही कोई योजना नही दिखलायी दी। डा० कासलीवाल जी ने एवं उनके छोटे भाई वैद्य प्रभुदयाल जी जैन ने जव मुझे श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की योजना के वारे मे वतलाया तो मुझे वड़ी प्रसन्नता हुई और मैंने तत्काल इस ओर आगे कार्य करने के लिये उनसे आग्रह किया। ग्रन्थ अकादमी की स्थापना डा० कासलीवाल की सूझवूझ का प्रतिफल है। मुझे यह लिखते हुये प्रसन्नता है कि अकादमी की इस योजना का सभी ओर से स्वागत हो रहा है।

"महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एव भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति" ग्रन्थ अकादमी का सन् १९७८ का प्रथम प्रकाशन है जिसमें १७ वी शताब्दी के प्रथम चरण मे होने वाले दो प्रमुख कवियो का परिचय एव उनकी मूल कृतियो के पाठ दिये गये हैं। इसी वर्प मे अकादमी की ओर से दो भाग और प्रकाशित किये जावेंगे जिनमे कविवर वूचराज एव महाकवि ब्रह्म जिनदास तथा उनके समकालीन कवियो की कृतिया एव उनकी

मूल्यांकन रहेगा। इन पुस्तको से विश्वविद्यालयो मे शोध करने वाले विद्वानों एवं विद्यार्थियों को इस दिशा मे सामग्री भी उपलब्ध हो सकेगी और उन्हे जैन ग्रथ भण्डारो मे कम भागना पडेगा।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की योजना को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि इसकी अधिक से अधिक संख्या मे संचालन समिति के सदस्य एव विशिष्ट सदस्य के रूप मे समाज का सहयोग प्राप्त हो। यदि अकादमी के ५०० विशिष्ट सदस्य एव ५१ सचालन समिति सदस्य बन जावें तो अकादमी की अपनी योजना के क्रियान्वयन में पूर्ण सफलता मिल सकेगी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि समाज के साहित्य प्रेमी महानुभावो का इस दिशा मे पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा। मैं समाज को यह अवश्य विश्वास दिलाना चाहता हूं कि जिस उद्देश्य को लेकर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना हुई है उसमे वह बराबर आगे बढती रहेगी तथा पाँच वर्ष की अवधि मे अर्थात् सन् १९८२ तक हिन्दी जैन साहित्य को २० भागो में प्रस्तुत किया जा सकेगा। मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि अकादमी को साहु अशोककुमारजी जैन का सरक्षण प्राप्त है।

अन्त में मैं डॉ० कासलीवाल जी का आभारी हूं जिन्होंने अपना समस्त जीवन जैन साहित्य की सेवा मे सर्मपित कर रखा है। श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना उन्ही की कल्पनाओ का साकार रूप है। प्रस्तुत पुस्तक के वे ही लेखक एवं सम्पादक हैं। इसके अतिरिक्त सम्पादक मण्डल के सभी विद्वानो का आभारी हूँ जिन्होने इसे सर्वोपयोगी बनाने मे अपना योग दिया है। साथ ही उन सभी महानुभावो का भी मैं आभारी हूँ जिन्होने अकादमी की सदस्यता स्वीकार करके साहित्य सेवा की इस सुन्दर योजना को मूर्त्त रूप दिया है।

२३६ टी. एच. रोड़
मद्रास

कन्हैयालाल जैन

लेखक की कलम से

जैन कवियो द्वारा निबद्ध हिन्दी साहित्य कितना विशाल एव व्यापक है इसका अनुमान वे ही कर सकते हैं जिन्होंने शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत पाण्डुलिपियो को देखा है तथा उनके अन्दर तक प्रवेश किया है। अब तक जितने भी जैन कवियो से सम्बन्धित ग्रन्थ प्रकाशित हुये हैं उनमे महाकवि बनारसीदास, महाकवि दौलतराम कासलीवाल, एव महा पंडित टोडरमल के अतिरिक्त शेष सभी ग्रन्थ परिचयात्मक हैं और जिनमे लेखक का सामान्य परिचय एवं उसकी रचनाओ के नाम गिना दिये गये हैं। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना पचास से भी अधिक हिन्दी साहित्य के प्रतिनिधि जैन कवियो के मूल्याकन एव उनकी रचनाओ के प्रस्तुतीकरण के लिये हुई है। प्रस्तुत ग्रन्थ अकादमी का प्रथम पुष्प है जिसमें संवत् १६०१ से १६४० तक होने वाले प्रमुख दो कवियो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और ये दो कवि हैं — ब्रह्म रायमल्ल एव भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति। ब्रह्म रायमल्ल ढूढाड प्रदेश के कवि थे जबकि त्रिभुवनकीर्ति वागड़ एवं गुजरात प्रदेश मे अधिक रहे थे।

ब्रह्म रायमल्ल एव त्रिभुवनकीर्ति दोनो ही लोक कवि थे। इन कवियो ने अपनी कृतियो की रचना जन सामान्य की रुचि एवं भावना के अनुसार की थी। ब्रह्म रायमल्ल पूर्ण रूप से घुमक्कड कवि थे जिन्होंने ढूंढाड प्रदेश के प्रमुख नगरो मे विहार किया और अपने विहार की स्मृति मे किसी न किसी काव्य की रचना करने मे सफल हुये। कवि ने अपने काव्यो मे पौराणिक परम्परा का निर्वाह करते हुये तत्कालीन सामाजिक स्थिति का भी बहुत ही स्पष्ट वर्णन किया हैं। ब्रह्म रायमल्ल के सभी प्रमुख काव्य किसी न किसी नवीनता को लिये हुये हैं। कवि की परमहस चौपई आध्यात्मिक कृति होने पर भी सामाजिकता से ओत प्रोत हैं। प्रस्तुत भाग मे कवि के दो काव्य प्रद्युम्नु रास एवं श्रीपाल रास पूर्ण रूप से तथा परमहस चौपई एवं भविष्यदत्त चौपई के एक भाग को ही दिया गया है। शेष रचनाओ के पाठो को पृष्ठ संख्या अधिक हो जाने के भय से नहीं दिया जा सका। इसी तरह भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति के दो काव्यो मे से एक जम्बूस्वामी रास के पाठ को ही दिया गया है।

प्रस्तुत भाग मे उक्त दो कवियो का जीवन परिचय के साथ ही उनके काव्यो का अध्ययन भी प्रस्तुत किया है जिसके आधार पर काव्यो की विशेषताओ के साथ साथ कवि की काव्य शक्ति का भी परिचय प्राप्त हो सकेगा। दोनो ही कवि सगीतज्ञ

थे इसलिये उन्होंने अपने काव्यो को कितनी ही राग एव ढाली मे प्रस्तुत किया है। वास्तव मे उनके काव्य गेय काव्य बन गये हैं जिन्हे भाव विभोर होकर श्रोताओ के सामने प्रस्तुत किया जा सकता है।

ब्रह्म रायमल्ल ने अपना जीवन ग्रन्थ लिपिक के रूप मे प्रारम्भ किया था। सौभाग्य से उनके स्वय द्वारा लिपिबद्ध गुटका जयपुर के ही पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे उपलब्ध है जिसका एक चित्र पाठकों के अवलोकनार्थ दिया गया है। इसी तरह यद्यपि स्वय भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति द्वारा लिपिबद्ध पाण्डुलिपि प्राप्त नही हो सकी है लेकिन जिस गुटके मे उनके काव्यो का सग्रह है वह भी उन्ही की परम्परा मे होने वाले ब्रह्म सामल द्वारा लिपिबद्ध है।

प्रस्तुत भाग के सपादन मे जिन तीन अन्य विद्वानो आदरणीय डा. सत्येन्द्रजी, डा० माहेश्वरी जी एव प० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ का सहयोग मिला हैं उसके लिये मैं उनका हृदय से आभारी हू। आदरणीय डा० सत्येन्द्र जी के प्रति किन शब्दो मे आभार व्यक्त करू, उन्होने पुस्तक के सम्बन्ध मे 'दो शब्द' लिखने की महती कृपा की है।

इस अवसर पर मैं श्रीमान् बा० अनूपचन्द जी जैन दीवान व्यवस्थापक शास्त्र भण्डार पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर जयपुर एवं श्री प्रेमचन्द जी सौगाणी व्यवस्थापक शास्त्र भण्डार दि० जैन बड़ा तेरहपथी मन्दिर जयपुर का भी आभारी हू जिन्होने कवि की मूल पाण्डुलिपियां उपलब्ध करायी है। श्री प्रकाशचन्द जी वैद का भी आभारी हू जिन्होने 'परमहस चौपई' की प्रति उपलब्ध कराने में सहयोग प्रदान किया है। इनके अतिरिक्त श्री महेशचन्द जी जैन का भी आभारी हू जिन्होने पुस्तक की साज-सज्जा मे सहयोग दिया है।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

दो शब्द

मैं इसे अपना सौभाग्य मानता हू कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के इस 'प्रथम पुष्प' के लिए मुझ से 'दो शब्द' लिखने को कहा गया है। श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर के इस प्रथम पुष्प मे महाकवि 'ब्रह्म रायमल्ल एव भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति" के ग्रन्थ प्रकाशित किये गये हैं। इन ग्रन्थो का विद्वत्तापूर्ण सम्पादन डा० कासलीवाल ने किया है। हिन्दी साहित्य के अनुसधान के क्षेत्र मे डा० कासलीवाल का स्थान महत्वपूर्ण है। इन्होने हिन्दी जैन साहित्य के योगदान की ऐतिहासिक स्थापना की है। जैन ग्रन्थ भण्डारो की ग्रन्थ सूचिया प्रकाशित कर के इन भण्डारो मे उपलब्ध ग्रन्थो के नाम हस्तामलकवत् कर दिये है। इस भगीरथ प्रयत्न मे इन्हे सधारु का 'प्रद्युम्न चरित' मिला जिसका सम्पादन करके भी इन्होने यश अर्जन किया। यह प्रद्युम्न चरित सूर पूर्व ब्रज भाषा का प्रथम महाकाव्य माना जा सकता है।

महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर की स्थापना मे भी डा० कासलीवाल का ही प्रमुख हाथ रहा है। इस अकादमी की पंचवर्षीय योजना का दो सूत्री कार्यक्रम बनाया गया है। इस का द्वितीय सूत्र इस प्रकार है—

१. २० भागो मे जैन कवियो द्वारा निवद्ध समस्त हिन्दी साहित्य का प्रकाशन।

यह सूत्र ही हिन्दी साहित्य की समृद्धि को प्रकाश मे लाने और उसके इतिहास की कितनी ही अचर्चित और उपेक्षित कड़ियो को उभार कर ससदर्भ उन्हे यथास्थान लगाने का श्लाघ्य कार्य करेगा।

महावीर ग्रन्थ अकादमी सकल्पवद्ध होकर पंचवर्षीय योजना का कार्य सम्पादित कर रही है. यह इस 'प्रथम पुष्प' से सिद्ध होता है।

आज यह 'प्रथम पुष्प' पाठको के सामने है और इसमे "ब्रह्म रायमल्ल और त्रिभुवनकीर्ति" के कृतित्व का प्रकाशन हुआ है। यदि इन दोनो कवियों के ग्रन्थो का पाठ ही प्रकाशित करा दिया गया होता तव भी इस कार्य की प्रशसा होती और अकादमी का योगदान ऐतिहासिक माना जाता। किन्तु सोने मे सुगन्ध की भाति डा० कासलीवाल ने परिश्रमपूर्वक पाठ सम्पादित करके ग्रन्थ तो प्रकाशित किये ही

हैं, साथ ही एक विशद परिचयात्मक और विवेचनात्मक भूमिका देकर इन ग्रन्थो के सभी परिपार्श्वों का उद्घाटन कर दिया है ।

ब्रह्म रायमल्ल सूर–तुलसी के युग के कवि हैं । इस युग के जैन कवियो के सम्वन्ध मे इस 'प्रथम पुष्प' के विद्वान् सम्पादक के ये शब्द महत्वपूर्ण हैं :

"इन वर्षो मे जैन कवि भी पर्याप्त सख्या मे हुए और वे भी देश मे व्याप्त भक्ति धारा से अछूते नही रह सके । उनकी कृतिया भी भक्ति रस मे आप्लावित होकर सामने आयी और इस दृष्टि से भट्टारक शुभचन्द्र, पाण्डे राजमल्ल, भट्टारक वीरचन्द, सुमतिकीर्ति, ब्रह्म विद्याभूषण, ब्रह्म रायमल्ल, उपाध्याय साधुकीर्ति, भीखम कवि, कनक सोम, वाचक मालदेव, नवरग, कुशल लाभ, सकलभूषण, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । इन कवियो ने रास फागु, वेलि, चौपाई एव पदो के माध्यम से हिन्दी साहित्य की महती सेवा की है । इन कवियो मे से हम सर्वप्रथम ब्रह्म रायमल्ल का परिचय उपस्थित कर रहे हैं, क्योंकि सवत् १६०१ से १६४० तक की अवधि मे ब्रह्म रायमल्ल हिन्दी के प्रतिनिधि कवि रहे हैं ।"

डा० कासलीवाल की उक्त सूची को और सवर्धित किया जा सकता है, उन उल्लेखो के आधार पर जो जहा तहां हुए हैं । ऐसी सूची मे ये कवि स्थान पा सकते हैं : १–तल्लमल्ल, २–कल्याणदेव, ३–वनारसीदास, ४- मालदेव , ५–विजयदेव सूरि, उदयराज, ७-ऋषभदास, ८–रायमल्ल ब्रह्मचारी (मिश्र वधुओ के अनुसार इनके ग्रन्थ हैं : भविष्यदत्त चरित्र और सीताचरित्र तथा रचना काल १६६४, विवरण–सकलचन्द्र भट्टारक के शिष्य थे) । ९–रूपचन्द, १०–हेमविजय, ११–विद्याकमल, १२–समय सुन्दर उपाध्याय ।

सूर–तुलसी युग के इन जैन कवियो की सूची में नयी खोज रिपोर्टों से तथा अन्य खोजो से और नाम भी वढाये जा सकते हैं ।

हमने जो सूची दी है उसमे रायमल्ल ब्रह्मचारी का नाम आया है । यह मिश्र वन्धु विनोद की लेखक सख्या ३५७ के कवि है । इन्हे मिश्र वन्धुओ ने 'सकल-चन्द्र भट्टारक का शिष्य वताया है । डा० कासलीवाल ने इस ग्रन्थ की भूमिका मे तो वता दिया है कि ब्रह्म रायमल्ल मे ब्रह्म का अभिप्राय 'ब्रह्मचारी' से ही है। अतः रायमल्ल ब्रह्मचारी और ब्रह्मरायमल्ल मे अभेद विदित होता है ।

डा० कासलीवाल ने इस भूमिका मे विद्वत्तापूर्वक यह भी सिद्ध कर दिया है कि ये ब्रह्म रायमल्ल गुजराती ब्रह्मरायमल्ल से भिन्न है । गुजराती ब्रह्म रायमल्ल सस्कृत के विद्वान थे ।

पर मिश्र बन्धु विनोद के उक्त कवि क्या कोई तीसरे ब्रह्म रायमल्ल हैं ? संभव हो सकता है कि मिश्र बन्धु विनोद के टिप्पणीकार ने 'सकलकीर्ति' मुनिवर गुणवत को 'सकलचन्द्र' मान लिया हो। 'भविष्यदत्त चरित्र' इस सग्रह मे दी गयी भविष्यदत्त चौपई ही हो सकती है। दूसरा ग्रन्थ 'सीताचरित्र' भी इस संग्रह की 'हनुमन्त कथा' का ही दूसरा नाम हो सकता है ? सवत् १६६४ रचनाकाल के लिए या तो गलत पढ़ लिया गया है या सम्भव है कि यह लिपिकाल ही हो ? किन्तु यहा कठिनाई यह है कि मिश्रवन्धु विनोद के उक्त उल्लेख के प्रामाणिक स्रोत का पता लगाना सम्भव नही, अतः यही कह सकते हैं कि डा० कासलीवाल ने अपनी भूमिका मे जितना कुछ लिखा है वह प्रामाणिक है, और इस ग्रन्थ के द्वारा दो हिन्दी के महत्वपूर्ण और स्वल्पज्ञात कवियो का उद्घाटन हो रहा है।

ब्रह्म रायमल्ल महाकवि केशवदास के समकालिक हैं, और इनके काव्य मे जहा-तहा केशवदास से साम्य सा भी मिलता है।

ब्रह्म रायमल्ल का 'पोदनपुर नगर वर्णन' का एक उदाहरण यहाँ देना उपयुक्त होगा :

मारण नाम न सुनजे जहा,
खेलत सारि मारि जे तहा
हाथ पाई नवि छेदै कान
सुभद्र खाय ते छेदें पान।
बधन नाइ फूल बवेर
बधन कोई किसहा न देइ।
कामरिग नैण काजल होइ
हियडै मनुस न कालो होइ।
सर्प्पो परायो छिद्र जु गहै।
कोई किसका छिद्र न कहै।
गुगो कोई न दीसै सुनि।
पर अपवाद रहै धरि मौन
चोरी चोर न दीसे जहा
घडी नीर नं चोरो जहा
दंड नाम को किस ही न लेई
मनवचकाइ मुनि दड देइ ॥

और ऐसे ही आलंकारिक शिल्प मे केशव ने लिखा था—

मूलन ही की जहा अधोगति केशव गाई ।
होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाई ॥
दुर्गति दुर्जन ही जु कुटिल गति सरितन ही मे
श्रीफल की अभिलाष प्रकट कविकुल के जी मे
अति चचल जह चलदलै विधवा वनी न नारि
मन मोह्या ऋषि राज को अद्‌भुत नगर निहारि ।

डा० कासलीवाल का प्रयत्न निश्चय ही स्वागत योग्य है। उन्होने ब्रह्म रायमल्ल के ग्रन्थो का ही उद्धार नही किया, वरन् विस्तृत भूमिका मे कवि और उसके काव्य के सभी पक्षो पर अध्यवसाय पूर्वक प्रकाश डाला है। ऐसी भूमिका से ही इस कवि के गहन अध्ययन के लिए रुचि जाग्रत होती है।

इस महान् प्रयत्न मे सम्पादक मण्डल मे मुझे भी सम्मिलित करके जो उदारता और कृपा दिखायी है, और दो शब्द लिखने का अवसर दिया है, उसके लिए कृतज्ञता व्यक्त कर सकने योग्य शब्द मेरे पास नही।

हा, मैं आशा करता हू कि महावीर ग्रन्थ अकादमी के प्रकाशनो से समृद्ध जैन साहित्य का महत्वपूर्ण अश भण्डारो के कक्षो से बाहर आयेगा। मैं इस प्रयत्न की सफलता हृदय से चाहता हू।

डा० सत्येन्द्र

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

एक परिचय

जैनाचार्यों, भट्टारको एव विद्वानो ने देश की प्रत्येक भाषा मे विशाल साहित्य की रचना करके धर्म एव सस्कृति की सुरक्षा एव उसके विकास मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसी विशाल साहित्य को प्रकाश मे लाने की दृष्टि से भगवान महावीर के २५०० वें परिनिर्वाण वर्ष मे साहित्य प्रकाशन की कितनी ही योजनाए बनी। भारतीय ज्ञानपीठ देहली, विद्वत् परिषद्, साहित्य शोध विभाग, जयपुर, जैन विश्व भारती लाडनू, शास्त्री परिषद् एव पचासो अन्य संस्थाओ ने अनेक महत्वपूर्ण पुस्तको का प्रकाशन भी किया लेकिन इतने प्रयासो के उपरान्त भी हम हमारे विशाल साहित्य को जन साधारण तक नही रख पाये तथा विश्वविद्यालयो एव महाविद्यालयो मे कार्य करने वाले प्रोफेसरो एव शोध छात्रो को अभीष्ट पुस्तकें उपलब्ध नही करा सके। इसलिये जब कभी विद्वानो, शोधार्थियो एवं पाठको द्वारा किसी आचार्य एव विद्वान् की अथवा किसी विशिष्ट विषय पर उच्चस्तरीय पुस्तक की मांग की जाती है तो हम इधर उधर देखने लगते हैं और कभी-कभी एक दो पुस्तको के नाम भी नहीं बता पाते। इसके अतिरिक्त आजकल जिस प्रकार साहित्य के विविध पक्षो के प्रस्तुतीकरण की नवीन शैली अपनायी जा रही है उससे हम अपने आपको कोसो दूर पाते हैं।

उत्तरी भारत एवं विशेषतः राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश एव देहली मे स्थापित जैन ग्रन्थागारो मे लाखो पाण्डुलिपियां संग्रहीत है। श्री महावीर क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग द्वारा हस्तलिखित शास्त्रो की जो पाच भागो मे ग्रन्थ सूचिया प्रकाशित हुई है उनसे हमारे विशाल साहित्य के दर्शन हो सके है तथा पचासो विद्वानो को साहित्यिक क्षेत्र मे कार्य करने की प्रेरणा मिली है। लेकिन प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत एव हिन्दी मे जिन आचार्यों एव विद्वानो ने अनेको ग्रन्थो की सरचना की है उनके विषय मे सामान्य परिचय के अतिरिक्त उनका अभी तक न तो हम मूल्याकन कर पाये हैं और न उनकी मूलकृतियो को प्रकाशित ही कर सके हैं।

गत कुछ वर्षों से ऐसी ही किसी एक सस्था की आवश्यकता को अनुभव किया जा रहा था जो योजना बद्ध ढग से सभूचे भाषागत जैन साहित्य का प्रकाशन कर सके। अक्टूबर ७६ मे अकस्मात् श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का नाम सामने आया और सस्था का यही नाम रखना उचित समझा। नामकरण के साथ ही एक पंचवर्षीय योजना भी तैयार की।

सर्व प्रथम जैन कवियो द्वारा निवद्ध हिन्दी साहित्य को प्रकाशित करने का विचार सामने आया क्योकि सवत् १४०१ से लेकर १६०० तक हिन्दी एवं राजस्थानी मे जिस प्रकार के विपुल साहित्य का निर्माण किया गया वह सभी दृष्टियो से महत्व-पूर्ण है और उसके विस्तृत परिचय की महती आवश्यकता है। हिन्दी भाषा मे जिस प्रकार जायसी, सूरदास, मीरा, तुलसीदास, रसखान, विहारी, दादू, रज्जव, जैसे पचासो कवि हुये जिनके काव्यो के विविध पक्षो पर शोध कार्य हो चुका है और आगे भी होता रहेगा तथा जिनके व्यक्तित्व एव कृतित्व को नये-नये आयामो के आधार परखा जा रहा है लेकिन इस प्रकार से प्रकाशित होने वाली पुस्तको मे जैन कवियों का कही भी उल्लेख नही मिलता और यदि कही मिलता भी है तो वह एकदम सक्षिप्त एवं अपूर्ण होता है। जैन कवियो मे सधारु, राजसिंह, ब्रह्म जिनदास, ज्ञान-भूषण, बूचराज, ब्रह्म रायमल्ल, विद्याभूषण, त्रिभुवनकीर्ति, समयसुन्दर, यशोधर, रत्नकीर्ति, सोमसेन, वनारसीदास, भगवतीदास, भूधरदास, द्यानतराय, बुधजन, रूपचन्द, बुलाकीदास, किशनसिंह, दौलतराम जैसे कितने ही महाकवि हैं जिन्होने हिन्दी मे सैकडो रचनायें निवद्ध की और उसके विकास मे अपना सर्वाधिक योगदान दिया लेकिन इनमे सधारु राजसिंह, वनारसीदास एव दौलतराम जैसे कुछ कवियो को छोड शेष के सम्वन्ध हम स्वयं अन्धेरे मे हैं। इसलिये इन कवियो के जीवन एवं व्यक्तित्व के अध्ययन के साथ ही तथा उनकी कृतियो के मूल भाग को सम्पादित एव प्रकाशित करने की अतीव आवश्यकता है। मूल कृतियो के बिना कोई भी विद्वान् कवियो के मूल्याकन के कार्य मे आगे नही वढ सकता। और न आज शोधार्थी विभिन्न भण्डारो मे जाकर उनकी मूल पाण्डुलिपियो के अध्ययन का कष्ट साध्य परिश्रम करना चाहता है।

इसलिये प्रथम पचवर्षीय के अन्तर्गत २० भागो मे कम से कम पचास जैन कवियो का जीवन परिचय तथा उनके कृतित्व का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत करना ही इस महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना का मुख्य उद्देश्य निश्चित किया गया है।

इन कवियों के काव्यो के सूक्ष्म अध्ययन के साथ-साथ उनकी प्रमुख कृतियाँ भी प्रकाशित की जावेंगी : अकादमी के प्रथम भाग मे महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति को लिया गया है। दोनो ही कवि विक्रम की १७वी शताब्दि के प्रथम चरण के कवि है और जिनका साहित्यिक योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है।

अकादमी द्वारा पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत निम्न प्रकार पुस्तको के प्रकाशन की सख्या रहेगी।

वर्ष	पुस्तक सख्या
१९७८	३
१९७९	४
१९८०	४
१९८१	४
१९८२	५
	२०

इस योजना के अन्तर्गत जिन कवियो पर प्रकाशन कार्य होगा उनके नाम निम्न प्रकार हैं :—

१. महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति
२. कविवर बूचराज एव उनके समकालीन कवि
३. महाकवि ब्रह्म जिनदास एवं प्रतापकीर्ति
४. महाकवि वीरचन्द एव महिचन्द
५ विद्याभूषण, ज्ञानसागर एवं जिनदास पाण्डे।
६. ब्रह्म यशोधर एव भट्टारक ज्ञानभूषण
७. भट्टारक रत्नकीर्ति एव कुमुदचन्द्र
८ कविवर रूपचन्द, जगजीवन एवं ब्रह्म कपूरचन्द
९. महाकवि भूधरदास एव बुलाकीदास
१०. जोधराज गोदीका एवं हेमराज

११. महाकवि धानतराय
१२. भगवतीदास एवं भाउकवि
१३. कविवर खुशालचन्द काला एवं अजयराज पाटनी
१४ कविवर किशनसिंह, नथमल विलाला एव पाण्डे लालचन्द
१५. कविवर बुधजन एवं उनके समकालीन कवि
१६. कविवर नेमिचन्द्र एवं हर्षकीर्ति
१७. भैया भगवतीदास एव उनके समकालीन कवि
१८. कविवर दौलतराम एवं छत्तदास
१९. मनराम, मन्नासाह एवं लोहट
२०. २० वी शताब्दि के जैन कवि

२० भागो मे उक्त कवियो के व्यक्तित्व एव कृतित्व का सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत किया जावेगा। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कवि की मूल कृतियो के पाठ भी उनमे रहेगे। ऐसे कवियो एवं साहित्य निर्माताओ की संख्या कम से कम ५० होगी।

महावीर ग्रन्थ अकादमी की प्रथम पंचवर्षीय योजना करीव २ लाख रुपये की अनुमानित की गयी है जिसके अन्तर्गत २० भाग प्रकाशित किये जावेंगे। प्रत्येक भाग २५० से ३०० पृष्ठ का होगा। इस प्रकार अकादमी ५–६ हजार पृष्ठो का साहित्य प्रथम पाच वर्षों मे अपने पाठको को उपलब्ध करायेगी। इस योजना की क्रियान्विति के लिये सचालन समिति के ५१ सदस्य जिनमे सरक्षक, अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष उपाध्यक्ष एव निदेशक सम्मिलित हैं, होगे तथा कम से कम ५०० विशिष्ट सदस्य बनाये जावेंगे। विशिष्ट सदस्यो से २०१) रु० तथा संचालन समिति के सदस्यो से (पदाधिकारियो के अतिरिक्त) कम से कम ५०१) रु० लिये जावेंगे। मुझे यह लिखते हुये वड़ी प्रसन्नता होती है कि समाज मे साहित्य प्रकाशन की इस योजना का स्वागत हुआ है तथा अब तक संचालन समिति की सदस्यता के लिये एवं विशिष्ट सदस्यता के लिये १०० से अधिक महानुभावो की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। इस प्रकार अकादमी का कार्य चल पडा है। अकादमी की सरक्षकता के लिये मैंने श्रावक शिरोमणि स्व० साहु शान्तिप्रसाद जी जैन से अकादमी की योजना भेजते हुये जव निवेदन किया तो वे योजना से अत्यधिक प्रभावित हुये और एक सप्ताह मे ही उन्होंने अपनी स्वीकृति भेज दी। मुझे वड़ा खेद है कि उसके कुछ महीने पश्चात् ही

उनका अकस्मात स्वर्गवास हो गया और वे इसके एक भी प्रकाशन को नही देख सके लेकिन मुझे यह लिखते हुये प्रसन्नता है उन्ही के सुपुत्र साहु अशोक कुमार जी जैन ने हमारे विशिष्ट आग्रह पर अकादमी का संरक्षक बनने की स्वीकृति दे दी है साथ ही में अपना पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन भी दिया है। इसी प्रकार जब मैंने श्रीमान सेठ गुलाबचन्द जी साहब गंगवाल से उपाध्यक्ष बनने की स्वीकृति चाही तो उन्होंने भी तत्काल ही अपनी स्वीकति भिजवादी। इसी तरह श्रीमान् लाला अजीतप्रसाद जी जैन ठेकेदार देहली का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने सर्व प्रथम विशिष्ट सदस्यता के लिये और फिर विशेष आग्रह करने पर अकादमी के उपाध्यक्ष के लिये अपनी स्वीकृति भिजवादी।

अकादमी की स्थापना के सम्बन्ध मे जब मैने श्रीमान् सेठ कन्हैयालाल जी सा० जैन पहाडिया,मद्रास वालो से बात चलायी और उनसे उसकी अध्यक्षता स्वीकार करने के लिये आग्रह किया तो उन्होने अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुये दूसरे ही दिन बातचीत करने के लिये कहा। मै एवं वैद्य प्रभुदयाल जी कासलीवाल भिषगाचार्य दोनों ही दूसरे दिन उनके पास पहुचे तो उन्होने अकादमी के कार्य को आगे बढाने के लिये कहा और उसका अध्यक्ष बनना भी स्वीकार कर लिया। इसी तरह श्रीमान् सेठ कमलचन्द जी कासलीवाल एव श्री कन्हैयालाल जी सेठी ने भी उपाध्यक्ष बनने की जो स्वीकृति दी है उसके लिये हम उनके आभारी हैं। अकादमी के सदस्य बनाने के कार्य मे मुझे जिनका विशेष सहयोग मिला उनमे श्रीमती सुदर्शना देवी जी छाबड़ा, वैद्य प्रभुदयाल जी भिषगाचार्य, श्रीमती कोकिला जी सेठी, पं० अमृतलाल जी दर्शनाचार्य वाराणसी एवं श्री गुलाबचन्द जी गंगवाल, श्री महेशचन्द जी जैन, डॉ० चान्दमल जैन एवं डॉ० कमलचन्द सोगाणी उदयपुर के नाम विशेषत: उल्लेखनीय है। मैं इन सभी महानुभावो का हृदय से आभारी हूं जिन्होंने संचालन समिति अथवा विशिष्ट सदस्यता के रूप मे अपनी स्वीकृति भेजी है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि समाज के साहित्य प्रेमी महानुभाव समूचे हिन्दी जैन साहित्य के प्रकाशन में भागीदार बनकर सहयोग देने का कष्ट करेंगे।

साहित्य प्रकाशन के इस कार्य मे कितने ही विद्वानो ने सम्पादक के रूप में और कितने ही विद्वानों ने लेखक के रूप मे अपना सहयोग देने का आश्वासन दिया है। श्री महावीर अकादमी की इस योजना मे हम अधिक से अधिक विद्वानो का सहयोग लेना चाहेंगे। अभी तक देश एवं समाज के कम से कम ३० विद्वानो की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। ऐसे विद्वानो मे डा० सत्येन्द्र जी जयपुर, डा० रामचन्द्र

जी द्विवेदी उदयपुर, डा० दरबारीलाल जी कोठिया वाराणसी, डा० गंगाराम गर्ग, डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, डा० प्रेमचन्द रांवका जयपुर, डा० प्रेमचन्द जैन, पं० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ, डा० हीरालाल जी महेश्वरी, प० भिलापचन्द जी शास्त्री, प० भवरलाल जी न्यायतीर्थ एव डा० नरेन्द्रभानावत जयपुर का नाम विशेषत: उल्लेखनीय है।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
निदेशक एव प्रधान सम्पादक

विषय-सूची

पूर्व पीठिका

जैनाचार्यो, भट्टारको एव विद्वानो का भारतीय साहित्य को समृद्ध एव सशक्त बनाने मे विशेष योगदान रहा है। भारतीय संस्कृति के स्वर मे स्वर मिलाकर उन्होने देश की सभी भाषाओ मे विशाल साहित्य का निर्माण किया और उसके विकास मे चार चाद लगाये। उन्होने न किसी भाषा विशेष से राग किया और न द्वेषवश किसी भारतीय भाषा मे साहित्य निर्माण को बन्द किया। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एव हिन्दी जैसी राष्ट्रभाषाओ तथा राजस्थानी, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलगू एव कन्नड़ जैसी प्रादेशिक भाषाओ के विकास मे योग दिया। जैन कवियो ने काव्य, पुराण, सिद्धान्त, अध्यात्म, कथा, ज्योतिष, आयुर्वेद, गणित, छन्द एव अलकार जैसे विषयो पर सैंकड़ो ग्रन्थ लिखकर साहित्य सेवा का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। जैन कवि जन-जन मे बौद्धिक चेतना जागृत करने मे कभी पीछे नही रहे और किसी न किसी विषय पर साहित्य निर्माण करते रहे। देश के जैन ग्रन्थागारो मे जो विशाल साहित्य उपलब्ध होता है वह जैन आचार्यो एव विद्वानो के साहित्य प्रेम का स्पष्ट द्योतक है। इन ग्रन्थागारो मे सग्रहीत साहित्य अत्यधिक व्यापक एव समृद्ध है। यद्यपि अब तक सकडो कृतियाँ प्रकाशित की जा चुकी हैं लेकिन यह प्रकाशन तो उस विशाल साहित्य का एक अश मात्र है। वास्तव मे जैन ग्रन्थागार साहित्य के विपुल कोष हैं तथा उनमे सग्रहीत साहित्य देश की महान् निधि है।

हिन्दी मे भी जैन विद्वानो ने उस समय लिखना प्रारम्भ किया जब उसमे लिखना पाडित्य से परे समझा जाता था और वे भाषा के पडित कहलाते थे। यह भेदभाव तो महाकवि तुलसीदास एव बनारसीदास के बाद तक चलता रहा। हिन्दी मे जैन कवियो ने रास सज्ञक रचनाओ से काव्य निर्माण प्रारम्भ किया। जब अपभ्रंश भाषा का देश मे प्रचार था तब भी इन कवियो ने अपनी दूरदर्शिता के कारण हिन्दी मे भी अपनी लेखनी चलाई और साहित्य की सभी विधाओ को पल्लवित करते रहे और उनमे संस्कृति एव समाज की मनोदशा का यथार्थ चित्रण करने लगे। जिनदत्त-चरित (स० १३५४) एव प्रद्युम्नचरित (स० १४११) जैसी कृतिया अपने युग की खुली पुस्तकें हैं। जैन कवियो ने हिन्दी की सबसे अधिक एव सबसे लम्बे समय तक सेवा की तथा उसमे अबाध गति से साहित्य निर्माण करते रहे। लेकिन हिन्दी विद्वानो की जैन ग्रन्थागारो तक पहुच नही होने के कारण वे उसका मूल्याकन नही

कर सके और जब हिन्दी साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास लिखा गया तब जैन भण्डारो मे सग्रहीत विशाल हिन्दी साहित्य को प० रामचन्द्र शुक्ल जैसे महारथी विद्वान् ने यह लिख कर साहित्य की परिधि से बाहर निकाल दिया कि वह केवल धार्मिक साहित्य है और उसमे साहित्यिक तत्त्व विद्यमान नही है। रामचन्द्र शुक्ल की इस एक पक्ति ने जैन विद्वानो द्वारा निर्मित हिन्दी साहित्य का बडा भारी अहित किया। उसका फल आज भी उसे भुगतना पड रहा है।

समय ने पल्टा खाया। जैन ग्रन्थागारो के ताले खुलने लगे तथा विद्वानो का उस ओर ध्यान जाने लगा। शनै शनै जैनाचार्यों का विशाल साहित्य बाहर आने लगा। सर्वप्रथम अपभ्र श साहित्य पर विद्वानो का ध्यान गया और धनपाल के 'भविसयत्तचरिउ' की पाण्डुलिपि प्राप्त होते ही साहित्यिक जगत मे हलचल मच गयी क्योकि इसके पूर्व हिन्दी के विद्वानो ने समूचे अपभ्र श साहित्य को ही लुप्त प्राय साहित्य घोषित कर दिया था। अपभ्र श के महाकाव्य पउमचरिउ (स्वयंभू) रिट्ठणेमिचरिउ, महापुराण, जम्बूसामिचरिउ जैसे महाकाव्यो का जब पता चला तो महापडित राहुल साकृत्यायन ने रामचन्द्र शुक्ल के विरुद्ध झण्डे गाड दिये और महाकवि स्ययभू के पउमचरिउ को हिन्दी का प्रथम महाकाव्य घोषित कर दिया। इसके पश्चात् और भी विद्वानो का उस ओर ध्यान गया और उन्होने जैन कवियो के निर्मित काव्यो का मूल्यांकन करके उन्हे हिन्दी के श्रेष्ठ महाकाव्यो को कोटि मे ला बिठाया। ऐसे विद्वानो मे स्वर्गीय डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, स्वर्गीय डा० माता प्रसाद गुप्त, डा० रामसिंह तोमर, एव डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दी के वर्तमान मूर्द्धन्य विद्वानो मे डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम इस दिशा मे सर्वाधिक उल्लेखनीय है जिन्होंने अपनी पुस्तक "हिन्दी साहित्य का आदिकाल" मे हिन्दी जैन साहित्य के विषय मे जो पक्तिया लिखी है वे निम्न प्रकार हैं—

"इधर जैन अपभ्र श चरित काव्यो की जो विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है वह सिर्फ धार्मिक सम्प्रदाय के मुहर लगाने मात्र से अलग कर दी जाने योग्य नही है। स्वयम्भू, चतुर्मुख, पुष्पदन्त और धनपाल जैसे कवि केवल जैन होने के कारण ही काव्यक्षेत्र से बाहर नही चले जाते। धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्य कोटि से अलग नही की जा सकती। यदि ऐसा समझा जाना लगे तो तुलसीदास का रामचरितमानस भी साहित्य क्षेत्र मे अविवेच्य हो जाएगा और जायसी का पद्मावत भी साहित्य-सीमा के भीतर नही घुस सकेगा।"[1]

श्री महावीर क्षेत्र के द्वारा राजस्थान के जैन ग्रन्थागारो के सूचीकरण कार्य से अपभ्रंश एव हिन्दी कृतियो को प्रकाश मे लाने मे बहुत योग मिला। इससे

१ हिन्दी साहित्य का आदिकाल—पृष्ठ ११ प्रथम सस्करण १९५२

अपभ्रंश की पचासो कृतियाँ प्रकाश मे आ सकी। सन् १९५० मे जव इस क्षेत्र की ओर से एक प्रशस्ति सग्रह प्रकाशित किया गया तो अपभ्रंश के विशाल साहित्य की ओर विद्वानो का ध्यान गया और हिन्दी के मूर्द्धन्य विद्वानो ने उस अज्ञात साहित्य को हिन्दी के लिये वरदान माना। 'प्रशस्ति सग्रह' प्रकाशन के पश्चात् डा० हरिवश कोछड ने अपभ्रंश साहित्य पर अपना शोध प्रवन्ध प्रस्तुत किया जिसमे उसके महत्त्व पर प्रथम वार अच्छा प्रकाश डाला तथा अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी का ही पूर्वकालिक साहित्य स्वीकार किया। डा० हीरालाल जैन, एव डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये ने अपभ्रंश की कृतियो को प्रकाश मे लाने की दृष्टि से अत्यधिक महती सेवा की और महाकवि पुष्पदन्त के तीन ग्रन्थो को प्रकाश मे लाने मे सफलता प्राप्त की।

गत २५ वर्षो मे हिन्दी जैन कवियो एव उनके काव्यो पर देश के विभिन्न विश्वविद्यालयो मे जो शोध कार्य हुआ है और वर्तमान मे हो रहा है वह यद्यपि एक रूप मे सर्वे कार्य ही है फिर भी इससे जैन हिन्दी विद्वानो एव उनकी कृतियो को प्रकाश मे आने मे वहुत सहायता मिली है और हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वान् यह अनुभव करने लगे है कि जैन विद्वानो किकृतियो की केवल धार्मिक साहित्य के वहाने साहित्य जगत् से दूर रखना उनके साथ अन्याय होगा। इसलिये उसको भी वही स्थान प्राप्त होना चाहिये जो अन्य हिन्दी कवियो के साहित्य को प्राप्त है।

जैन कवियो के विशाल साहित्य को देखते हुये अभी तक जो कवि सामने आ सके हैं वे तो 'आटे मे नमक' के वरावर ही कहे जा सकते हैं। हिन्दी जैन साहित्य विशाल है और उसकी विशालता के मूल्याकन के लिये हजारो पृष्ठ भी कम रहेगे। अभी तो ऐसे सकडो कवि हैं जिनकी कृतियो का ग्रन्थ सूचियो के अतिरिक्त कही कोई नामोल्लेख भी नही हुआ है। मूल्याकन की वात का प्रश्न ही सामने नही आया। ब्रह्म जिनदास जैसे कवियो की रचनाओ को प्रकाशित करने के लिये वर्षो की साधना चाहिये और हजारो पृष्ठो का मैटर छापने के लिये चाहिये।

ब्रह्म रायमल्ल एक ऐसे ही हिन्दी कवि है जिनका व्यक्तित्व एव कृतित्व दोनो ही महत्त्वपूर्ण होते हुये भी अभी तक अज्ञात अवस्था को प्राप्त हैं। प्रस्तुत पुस्तक मे हम उनके एव उनके समकालीन (सवत् १६०१ से १६४० तक) होने वाले अन्य कवियो के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर सामान्य रूप से प्रकाश डालने का प्रयास कर रहे हैं। हमारा यह प्रयास कितना सफल रहता है इसका मूल्याकन तो विद्वान् ही कर सकेंगे।

तत्कालीन युग

सवत् १६०१ से १६४० तक का युग हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन की दृष्टि से भक्तिकाल मे आता है। मिश्रवन्धु विनोद मे इस काल को

प्रौढ माध्यमिक काल (संवत् १५६१ से १६८० तक) मे समाहित किया गया है।[२] पं० रामचन्द्र शुक्ल इस काल को पूर्ण मध्यकाल-भक्तिकाल (संवत् १३७५ से १७००) के रूप मे अभिव्यक्त किया है।[३] आचार्य श्यामसुन्दरदास ने सम्वत् १४०० से १७०० तक के काल को भक्ति युग का काल स्वीकार किया है।[४] इनसे आगे होने वाले डा० सूर्यकान्त शास्त्री ने इस काल को तारुण्य काल कह कर सम्बोधित किया है। डा० रामकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ सवत् ७५० से मानते हुए सम्वत् १३७५ से १७०० तक के काल को भक्तिकाल का युग कहा है। इसके पश्चात् होने वाले सभी विद्वानो ने सवत् १७०० तक के काल को भक्तिकाल की सज्ञा दी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का आलोच्य काल संवत् १६०१ से १६४० तक का रखा गया है। जो भक्तिकाल के अन्तर्गत आता है। हिन्दी साहित्य के ये ४० वर्ष भक्तिकाल के स्वर्ण वर्ष कहे जा सकते हैं। सगुण भक्तिधारा के अधिकाश कवियो का साहित्यिक जीवन इन्ही वर्षों मे निखरा और उन्होंने इन्ही वर्षों मे देश को अपनी मौलिक कृतियाँ समर्पित की। महाकवि सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास जैसे भक्त कवि इसी काल की भेट है। इसलिये ब्रह्म रायमल्ल को हिन्दी के इन महान् कवियो के समकालीन होने का गौरव प्राप्त है। कवि की रचनाओ मे भक्ति रस की जो छटा देखने को मिलती है वह सब उसी युग का प्रभाव है। क्योकि जब चारो ओर भक्ति रस की धारा बह रही हो तब उस धारा से जैन कवि कैसे अछूते रह सकते थे। सवत् १६०१ से १६४० की अवधि मे होने वाले प्रसिद्ध जैनेतर भक्त कवियो का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

कुम्भनदास

ये अष्ट छाप के कवि थे तथा वल्लभाचार्य के प्रमुख शिष्य थे। इनकी जन्म तिथि सम्वत् १५२५ एव मृत्यु तिथि सम्वत् १६२९ के आस-पास मानी जाती है। चौरासी वैष्णवों की वार्ता मे लिखा है कि सम्राट् अकबर ने कुभनदास को फतेहपुर सीकरी बुलवाया था। जिसका उल्लेख उन्होंने अपने एक पद में किया है।[५] इनके द्वारा निबद्ध भक्ति रस के पद कीर्तनसग्रह, कीर्त्तन रत्नाकर, राग कल्पद्रुम आदि मे मिलते हैं।

---

२. मिश्रबन्धु विनोद भूमिका पृष्ठ-९३
३. प रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ-९
४ पं श्यामसुन्दरराम-हिन्दी साहित्य पृष्ठ २९-२१
५. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ४१, ४३
५. भक्तन को कहा सीकरी सो काम
आवत जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरि नाम
जाको मुख देखे दुख लागे ताको करन परी प्रनाम।

तुलसीदास

महाकवि तुलसीदास देश के जनकवि थे। राम काव्य के सबसे बड़े नेता महाकवि तुलसीदास ही माने जाते हैं। ब्रजभाषा एवं अवधि दोनों ही भाषाओं में इन्होंने रचना कर के दिखा दी है। इनकी जन्म तिथि के सम्बन्ध में अत्यधिक मतभेद है लेकिन डा० माताप्रसाद गुप्त ने इनका जन्म सम्वत् १५८९ भादवा शुक्ला ११ माना है।[६] इनकी मृत्यु तिथि सम्वत् १६८० मानी जाती है। महाकवि ने अपनी केवल तीन रचनाओं में रचना संवत् दिया है वह निम्न प्रकार है—

रामचरितमानस	वि० सं० १६३१
पार्वतीमंगल	„ १६४३
कवितावली	„ १६८० से पूर्व

तुलसीदास की उक्त रचनाओं के अतिरिक्त गीतावली, बरवै, जानकी मंगल, कृष्णगीतावली, दोहावली आदि ११ रचनाएँ और हैं। महाकवि ने अपने आराध्य को जिस प्रकार रामचरित में समर्पित कर दिया था वह जगत प्रसिद्ध है। रामचरितमानस उनका सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है जिसका प्रत्येक शब्द भक्ति से ओतप्रोत है।

नन्ददास

नन्ददास अष्टछाप के कवियों में से श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। ये रामपुर ग्राम के निवासी थे। इन्हें महाकवि तुलसीदास का भाई बताया जाता है। डा० दीनदयाल गुप्त नन्ददास का जन्म संवत् १५९० के लगभग एवं मृत्यु संवत् १६४३ के लगभग मानते हैं। इनकी २९ रचनाएँ बताई जाती हैं जिनमें रास पंचाध्यायी, मानमंजरी, विरहमंजरी, रसमंजरी, सुदामाचरित, रुक्मिणी मंगल, भंवर गीत, दानलीला आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त नन्ददास के स्फुट पद भी प्राप्त हैं।

परमानन्ददास

ये भी अष्टछाप के एक कवि थे। डा० दीनदयाल गुप्त के अनुसार ये जाति से कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे तथा इनका जन्म कन्नौज में हुआ था। इनकी जन्म तिथि संवत् १५५० तथा मृत्यु तिथि संवत् १६४० मानी जाती है। इनकी दो कृतियाँ दानलीला एवं ध्रुव चरित्र तथा बहुत से पद मिलते हैं।[७]

---

६. तुलसीदास, पृष्ठ १०६–११

७. मिश्र बन्धु विनोद पृष्ठ २३५

सूरदास

महाकवि सूरदास भक्तियुग के महान् कवि थे। ये वल्लभाचार्य के समकालीन थे। इनका जन्म सवत् १५३५ वैशाख सुदी ५ को तथा मृत्यु सवत् १६३८ के लगभग हुई थी। बादशाह अकबर ने इनसे मथुरा मे भेट की थी। सूरदास के पद देश मे सर्वाधिक लोकप्रिय हैं और वे हजारो की सख्या मे हैं। अब तक इनकी २४ रचनाओ की प्राप्ति हो चुकी है जिनमे से उल्लेखनीय रचनाएँ निम्न प्रकार है—

१ सूरसागर	२ भागवत भाषा
३. दशमस्कध भाषा	४ सूरदास के पद
५. प्राणधारी	६ भवर गीत
७ सूर रामायण	८ नागलीला
९ गोवर्धन लीला	१० सूर पच्चीसी
११ सूरसागर सार	१२ सूरसारावली
१३ साहित्य लहरी	१४ सूरशतक
१५ दानलीला	१६ मानलीला

मीराबाई

मीराबाई राजस्थानी महिला भक्त कवि थी। मीराबाई के पद जन-जन को कण्ठस्थ है। "मीरा के प्रभु गिरधर नागर" पक्तियाँ अत्यधिक लोकप्रिय हैं। मीराबाई का जन्म सवत् १५५५ से १५७३ तक तथा मृत्यु सवत् १६२० से १६३० के बीच हुई थी। बगला भक्तमाला और सियाराम की हिन्दी भक्तमाला की टीकाओ मे सम्राट अकबर और तानसेन का मीरा के दर्शनो को आने का तथा मीराबाई का वृन्दावन जाकर रूप गोस्वामी के दर्शन करने का उल्लेख है।

उक्त कुछ प्रमुख कवियो के अतिरिक्त आसकरनदास, कल्लानदास, कान्हरदास, कृष्णदास, केशवभट्ट, गिरिधर, गोपीनाथ, चतुरबिहारी, तानसेन, सन्त तुकाराम, दामोदरदास, नागरीदास, नारायन भट्ट, माधवदास, रामदास, लालदास, विष्णुदास, आदि पचासो कवियो के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियो ने हिन्दी मे भक्तिरस की रचनाएँ निबद्ध कर देश मे भक्तिरस की धारा प्रवाहित की थी और इसके माध्यम से सारे देश को भावात्मक एकता मे निबद्ध किया था। यही नही देश मे वर्गभेद, जातिभेद की भावना मे भी परिवर्तन ला दिया का।

जैन कवि

इन वर्षो मे जैन कवि भी पर्याप्त सख्या मे हुए और वे भी देश मे व्याप्त भक्ति धारा से अछूते नही रह सके। उनकी कृतियाँ भी भक्तिरस मे आप्लावित

होकर सामने आयी और इस दृष्टि से भट्टारक शुभचन्द्र, पाण्डे राजमल्ल, भट्टारक वीरचन्द्र, सुमतिकीर्ति, ब्रह्म विद्याभूषण, ब्रह्म रायमल्ल, उपाध्याय साधुकीर्ति, भीखमकवि, कनकसोम, वाचक मालदेव, नवरग, कुशललाभ, हरिभूषण, सकलभूषण आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन कवियो ने रास, फागु, वेलि, चौपाई एव पदो के माध्यम से हिन्दी साहित्य की महती सेवा की है। इन कवियो मे से हम सर्वप्रथम ब्रह्म रायमल्ल का परिचय उपस्थित कर रहे है क्योकि सवत् १६०१ से १६४० तक की अवधि मे ब्रह्म रायमल्ल हिन्दी के प्रतिनिधि कवि रहे हैं।

ब्रह्म रायमल्ल

हमारे आलोच्य कवि ब्रह्म रायमल्ल हिन्दी के इसी स्वर्णयुग के प्रतिनिधि कवि थे। तत्कालीन जनभावनाओ का समादर करके कवि ने अपनी रचनाएँ लिखी और उन्हें मुक्त रूप से स्वाध्याय प्रेमियो को समर्पित किया। कवि ने अपने काव्यो को जन-जन के काव्य वनाने का प्रयास किया और लोक प्रचलित शैली मे लिखकर एक वहुत वडी कमी की पूर्ति की। ब्रह्म रायमल्ल की रचनाएँ इतनी अधिक लोकप्रिय रही कि राजस्थान के अधिकाश ग्रन्थालयो मे वे आज भी अच्छी सख्या मे मिलती है। जैन समाज मे ब्रह्म रायमल्ल सदैव वहुचर्चित कवि रहे और उनकी कृतियो का स्वाध्याय वडी रुचिपूर्वक किया जाता रहा।

ब्रह्म रायमल्ल की अधिकाश रचनाएँ राससज्ञक रचनाएँ है जिनमे अधिकतर कथापरक हैं। कवि ने श्रीपाल, सुदर्शन भविष्यदत्त, हनुमान, नेमिनाथ जैसे महापुरुषो के जीवन पर आख्यान परक रचनाएँ निवद्ध करके तत्कालीन समाज को एक नयी दिशा प्रदान की तथा उन महापुरुषो के अनुकूल अपने जीवन निर्माण को प्रोत्साहित किया, साथ ही मे तीर्थंकरो के प्रति श्रद्धा एव भक्ति भावना को पुनर्जीवित किया। यद्यपि महाकवि ने सूरदास एव कवीर जैसे पद नही लिखे और न निर्गुण एव सगुण जैसी भक्ति धारा मे वहे। उन्होने तो अपनी रचनाओ के माध्यम से यही सिद्ध करने का प्रयास किया कि तीर्थंकरो की पूजा, भक्ति एव स्तवन से अपार पुण्य की प्राप्ति होती है तथा दुष्कर्मों का नाश होता है।[८] श्रीपाल, सुदर्शन, प्रद्युम्न, भविष्यदत्त, हनुमान जैसे महापुरुषो का जीवन तीर्थंकरो की भक्ति एव श्रद्धा से उपार्जित पुण्य की खुली पुस्तकें हैं। उनका जीवन आगे आने वाली सन्तति के लिये प्रेरणा स्रोत है। यही कारण है कि इन महापुरुषो के जीवन को ब्रह्म रायमल्ल के पूर्ववर्ती एव उत्तरवर्ती सभी कवियो ने अपने-अपने काव्यो मे सर्वाधिक स्थान दिया है।

---

८ भाव भगति जिण दीया हो, करि स्नान पहरे शुभ चीर।
जिण चरण पूजा करी हो, झारी हाथ लई भरि नीर॥

ब्रह्म रायमल्ल का जन्म कब और कहाँ हुआ। वे किस देश एवं जाति के थे और किस प्रेरणा से उन्होने गृहत्याग किया इस सम्बन्ध मे हमे अभी तक कोई सामग्री उपलब्ध नही हुई। इन्होने प्रारम्भिक शिक्षा कहाँ प्राप्त की तथा विवाह होने के पश्चात् गृह त्याग किया अथवा विवाह के पूर्व ही ब्रह्मचारी बन गये, इसके सम्बन्ध मे भी न तो स्वय कवि ने अपनी रचनाओ मे उल्लेख किया है और न किसी अन्य विद्वान् ने अपनी रचना मे ब्रह्म रायमल्ल का स्मरण किया है। इनके नाम के पूर्व 'ब्रह्म' शब्द मिलने से सम्भवत. रायमल्ल ब्रह्मचारी थे और अन्तिम समय तक ये ब्रह्मचारी ही बने रहे इसके अतिरिक्त हम अधिक कुछ नही कह सकते।

प० परमानन्द जी शास्त्री[९] एवं डा० प्रेमसागर जैन[१०] ने ब्रह्म रायमल्ल का परिचय देते हुए भक्तामर स्तोत्र वृत्ति के कर्त्ता ब्रह्म रायमल्ल एव रास ग्रन्थो के निर्माता ब्रह्म रायमल्ल को एक ही माना है। 'भक्तामर स्तोत्र वृत्ति' मे दूसरे ब्रह्म रायमल्ल ने जो अपने माता-पिता आदि का नामोल्लेख किया है उसी को आलोच्य ब्रह्म रायमल्ल के माता पिता मान लिया है। 'भक्तामर स्तोत्र वृत्ति' के कर्त्ता ब्रह्म रायमल्ल हुवड वश के भूषण थे। इनके पिता का नाम मह्य एव माता का नाम चम्पा था। ये जिन चरण कमलो के उपासक थे।[११] इन्होंने महासागर तटभाग मे समाश्रित ग्रीवापुर के चन्द्रप्रभु चैत्यालय मे वर्णी कर्मसी के वचनो से 'भक्तामर स्तोत्र वृत्ति' की रचना विक्रम सवत् १६६७ मे समाप्त की थी।

हमारे विचार से ब्रह्म रायमल्ल नाम वाले दो भिन्न भिन्न विद्वान् हुए। प्रथम रायमल्ल रास ग्रन्थो के रचयिता थे जिन्होने हिन्दी मे काव्य रचना की तथा जिनकी सवत् १६१५ से सवत् १६३६ तक निर्मित एक दो नही किन्तु पूरी १५ रचनाएँ

९ जैन ग्रन्थ प्रशस्ति सग्रह—प्रस्तावना-पृष्ठ सख्या ५१

१०. जैन शोध और समीक्षा—पृष्ठ सख्या

११ श्रीमद् हूवड-वश-मडणमणि र्मह्येति नामा वणिक्
तद्भार्या गुणमडिता व्रतयुता चम्पामितीताभिधा ॥६॥
तत्पुत्रो जिनपादकजमधुपो रायादिमल्लोव्रती।
चक्रे वृत्तिमिमा स्तवस्य नितरा नत्वा श्री (सु) वादीदुक ॥७॥
सप्तषठ्यकिते वर्षे षोडशाख्ये हि सवते (१६६७)
आषाढ-श्वेतपक्षस्य पचम्या बुधवारके ॥८॥
ग्रीवापुरे महासिन्धोस्तप्भाग समाश्रिते
प्रोत्तु गदुर्ग सयुक्ते श्री चन्द्रप्रभसद्मनि ॥९॥
वर्णिन कर्मसी नाम्न वचनात् मयकाऽरचि।
भक्तामरस्य सद्वृत्ति रायमल्लेन वर्णिना ॥१०॥

मिलती हैं। सभी कृतियाँ भक्ति परक है तथा रास एव कथा सज्ञक है सभी मे उन्होंने अपना समान परिचय दिया है। इन कृतियो के आधार पर ब्रह्म रायमल्ल मुनि अनन्तकीर्ति के शिष्य थे जो भट्टारक रत्नकीर्ति के पट्टधर शिष्य थे। इन दोनो नामो के अतिरिक्त हिन्दी की किसी भी कृति मे उन्होंने अपना अधिक परिचय नही दिया।[१२] अपनी अन्तिम कृति 'परमहस चौपई' मे भी ब्रह्म रायमल्ल ने अपने गुरू एव दादागुरू का वही नामोल्लेख किया है केवल मुनि सकलकीर्ति का नामोल्लेख और किया है और उसीका दूसरा नाम मुनि रत्नकीर्ति था जिसको कवि ने अमृतोपम कहा है।

मूल संघ जग तारण हार, सरब गच्छ गरवो आचार।
सकलकीर्ति मुनिवर गुनवत, ता समाहि गुन लही न अंत ।।६४०।।
तिह को अमृत नाव अति चंग, रतनकीर्ति मुनि गुणा अभंग।
अनन्तकीर्ति तास सिष जान, बोलै मुख तै अमृत वान।
तास शिष्य जिन चरणा लीन, ब्रह्म रायमल्ल बुधि को हीन ।।

उक्त प्रशस्तियो के आधार पर आलोच्य ब्रह्म रायमल्ल मूलसघ एव सरस्वती गच्छ के भट्टारक रत्नकीर्ति के प्रशिष्य एव मुनि अनन्तकीर्ति के शिष्य थे। ये ब्रह्म रायमल्ल राजस्थानी विद्वान् थे तथा जिनका ढूढाहड प्रदेश प्रमुख केन्द्र था।

दूसरे ब्रह्म रायमल्ल गुजरात के सन्त थे जो सस्कृत के विद्वान् थे। ये हूबड जाति के थे तथा जिनके पिता मह्य एव माता चम्पादेवी थी। भक्तामर स्तोत्र वृत्ति इनकी एक मात्र कृति है जिसको उन्होंने सवत् १६६७ मे ग्रीवापुर के चन्द्रप्रभ चैत्यालय मे समाप्त की थी। सस्कृत के विद्वान् ब्रह्म रायमल्ल ने न तो अपने गुरू का उल्लेख किया है और न मूलसघ के सरस्वती गच्छ से अपना कोई सम्बन्ध बतलाया है। इस प्रकार दोनो रायमल्ल भिन्न भिन्न विद्वान् है। एक १७वी शताब्दि के पूर्वार्द्ध के हैं और दूसरे रायमल्ल उसी शताब्दि के उत्तरार्ध के विद्वान् हैं। हमारे मत का एक और सवल प्रमाण यह है कि प्रथम रायमल्ल की सवत् १६३६ के पश्चात् कोई रचना नही मिलती। यदि दोनो रायमल्लो को एक ही मान लिया जावे तो तो प्रथम रायमल्ल ३१ वर्ष तक साहित्य निर्माण से अपने आपको अलग रखे और फिर ३१ वर्ष पश्चात् 'भक्तामर स्तोत्र वृत्ति' लिखे इसे हम सम्भव नही मान सकते।

12 श्री मूलसघ मुनि सरसुती गछ, छोडी ही चारि कषाय निमछ।
अनन्तकीर्ति गुरू विदितौ, तासु तणौ सिषि कीयो जी बखाण।
ब्रह्म रायमल्ल जगि जाणियौ, स्वामी जी पार्श्वनाथ कौ जी थान।
—नेमिनाथ रास

क्योकि जिस कवि ने पहिले ३१ वर्षों मे १५ रचनाएँ निर्मित की हो वह आगे ३१ वर्षों तक चुपचाप बैठा रहे यह सभव प्रतीत नही होता ।

जीवन परिचय

ब्रह्म रायमल्ल के प्रारम्भिक जीवन का कोई इतिवृत्त नही मिलता । कवि ने किस अवस्था मे साधु जीवन स्वीकार किया इसके बारे मे भी हमे जानकारी नही मिलती लेकिन ऐसा मालूम पडता है कि कवि १०-१२ वर्ष की अवस्था मे ही भट्टारको अथवा उनके शिष्य प्रशिष्यो के निर्देशन मे चले गये । मुनि अनन्तकीर्ति को जब कवि की व्युत्पन्नमति एव शास्त्रो के उच्च अध्ययन की रुचि का पता चला तो उन्होंने इन्हे अपना शिष्य बना लिया और अपने पास ही रख कर इन्हे प्राकृत, सस्कृत एव हिन्दी का अध्ययन कराने लगे । सामान्य अध्ययन के पश्चात् कवि को शास्त्रो का अध्ययन कराया गया और ऐसे योग्य शिष्य को पाकर वे स्वय गौरवान्वित हो गये । मुनि अनन्तकीर्ति भट्टारक रत्नकीर्ति के पट्टधर शिष्य थे । भट्टारक रत्नकीर्ति नागौर गादी के प्रथम भट्टारको मे से हैं जो भट्टारक जिनचन्द्र के पश्चात् हुए थे । यदि मुनि अनन्तकीर्ति इन्ही भट्टारक जी के शिष्य थे तब तो ब्रह्म रायमल्ल का सम्बन्ध नागौर गादी से होना चाहिये । कवि ने ज्येष्ठजिनवर व्रत कथा को सवत् १६२५ मे साभर मे समाप्त किया था ।[13] लेकिन कवि सघ मे नही रह कर स्वतन्त्र रूप से ही विहार करते रहे, यह निश्चित है ।

उक्त सब तथ्यो के आधार पर कवि का जन्म संवत् १५८० के आस-पास होना चाहिये । यदि १५ वर्ष की अवस्था मे भी इनका भट्टारको से सम्पर्क मान लिया जावे तो इन्हे ग्रन्थो के गम्भीर अध्ययन मे कम से कम १० वर्ष तो लग ही गये होंगे । २५ वर्ष की अवस्था मे ये एक अच्छे विद्वान् की श्रेणी मे आ गये । प्रारम्भ में इनको प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थो के पढने एव लिपि करने का काम दिया गया और यह कार्य ब्रह्म रायमल्ल बिना सकोच के तथा विद्वत्तापूर्ण तरीके से करने लगे । सवत् १६१३ मे कवि द्वारा लिखा हुआ एक गुटका उपलब्ध हुआ है जिससे भी मालूम पडता है कि कवि को सर्वप्रथम ग्रन्थो के लेखन का कार्य दिया गया था । इस गुटके के कुछ प्रमुख पाठ निम्न प्रकार है—

---

13. मूलसघ भव तारण हार, सारद गछ गरवो ससार ।
रत्नकीर्ति मुनि अधिक सुजाण, तास पाटिमुनि गुणह निधान ।।७१।।
अनन्तकीर्ति मुनि प्रगट्यै नाम, कीर्त्ति अनन्त विस्तरी ताम ।
मेघ बूंद जे जाइ न गिनी, तास मुनि गुण जाइ न भणी ।।७२।।
तास शिष्य जिणचरणा लीन, ब्रह्म रायमल्ल मति को हीन ।
हण कथा कौ कियौ प्रकास, उत्तम क्रिया मुणीश्वर दास ।।७३।।

उक्त गुटके मे पृष्ठ ६० पर निम्न प्रशस्ति दी हुई है—

श्री । श्री सवतु १६१३ वर्ष जेष्ठ वदि ८ शनौ वारे लिखित ब्रह्म रायमल्ल ॥ देहली ग्रामे ।

इसी गुटके के पृष्ठ ९३ पर भी ब्रह्म रायमल्ल ने अपना निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

इति परमात्मप्रकाश समाप्त । प्रभुदास कृत ॥ सुभ भवतु ॥ श्री ॥ छ ॥ श्री ॥ लिखित ब्रह्म रायमल्लु ॥

इस प्रकार उक्त गुटका ब्रह्म रायमल्ल द्वारा लिपि वद्ध किया हुआ है । इस समय कवि देहली मे थे और वहाँ ग्रन्थो की प्रतिलिपि करने का कार्य करते थे । कवि ने इस गुटके के पूर्व एवं इसके पश्चात् और कितने ग्रन्थो की प्रतिलिपियाँ की थी इसका अभी कोई उल्लेख नही मिला है लेकिन इतना अवश्य है कि कवि ने अपना साहित्यिक जीवन ग्रन्थो की प्रतिलिपि करने के साथ प्रारम्भ किया था । उक्त गुटके मे कवि ने न तो अपने गुरू के नाम का उल्लेख किया है और न किसी श्रावक के नाम का, जिसके अनुरोध पर उक्त गुटका लिखा गया था । इसलिये यह भी कहा जा सकता है कि उसने यह गुटका स्वय अपने अध्ययन के लिये लिखा हो ।

साहित्य साधना

ग्रन्थो की प्रतिलिपि करते-करते ब्रह्म रायमल्ल साहित्य निर्माण की ओर प्रवृत्त हुए और सर्व प्रथम इन्होने नेमीश्वररास की रचना को हाथ मे लिया । साहित्य निर्माण का कार्य सम्भवत देहली छोड़ने के वाद ही प्रारम्भ किया था । देहली के वाद ये स्वतन्त्र रूप से विहार करने लगे और सर्व प्रथम झुंझुनू मे जाकर इन्होंने अपना स्वतत्र लेखन कार्य प्रारम्भ किया । झुंझुनु उस समय साहित्यिक केन्द्र था । देहली के पास होने से वहाँ जैन साधुओ का आवागमन वरावर रहता था । कवि ने उक्त नगर मे सवत् १६१५ की श्रावण वुदी १३ वुधवार के शुभ दिन 'नेमीश्वररास' का समापन दिवस मनाया[१५] तथा अपनी प्रथम कृति को विद्वानो एव स्वाध्याय

१४ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग, पृष्ठ ७६५

१५ अहो सोलहसै पन्द्रह रच्यौ रास, सावलि तेरसि सावण मास।
वरतै जी वुधि वासौ भलौ, अहो जैसी जी वुधि दीन्ही अवकास ।

प्रेमियो की सेवा मे समर्पित की। कवि ने 'नेमीश्वररास' के अन्त मे विद्वानो से विनय पूर्वक इतना अवश्य निवेदन किया कि जैसी उसकी बुद्धि थी उसी के अनुसार उसने ग्रन्थ रचना की है इसलिये पडितजन यदि कही त्रुटि हो तो उसके लिये क्षमा करें।

'नेमीश्वररास' काव्य कृति का अच्छा स्वागत हुआ तथा कवि से इस तरह की दूसरी रचना निवद्ध करने के लिये चारो ओर से आग्रह किया जाने लगा। एक ओर कवि का काव्य रचना के प्रति उत्साह, दूसरी ओर जनता का आग्रह, इन दोनो के कारण ६ महिने पश्चात् ही वैशाख कृष्णा नवमी शनिवार के शुभ दिन कवि ने "हनुमन्त कथा" को छन्दोवद्ध करके दूसरी काव्य रचना करने का गौरव प्राप्त किया।[16] हनुमन्त कथा एक वृहद् रचना है। इसमे कवि ने हनुमान की जीवन गाथा को वहुत ही सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया है। काव्य के रचना स्थान वाला पद कवि सम्भवत देना भूल गये या फिर इसे भी झुंझुनु नगर मे ही कविता वद्ध करने के कारण नगर का नाम दुवारा नही दिया। उक्त दोनो रचनाओ से कवि की कीर्ति चारो ओर फैल गयी और श्रावक गण उन्हे अपने यहाँ सादर आमन्त्रित करने लगे। इसके पश्चात् ८-९ वर्ष के दीर्घकाल तक कवि की कोई वडी रचना उपलब्ध नही होती। जिन लघु रचनाओ में सवत् नही दिया हुआ है हो सकता है उनमे से अधिकाश रचनाएँ इसी समय की हो।

सवत् १६२५ मे कवि का सामर नगर मे विहार होने का उल्लेख "ज्येष्ठ जिनवर कथा" की प्रशस्ति से मिलता है। प्रस्तुत कृति साभर प्रवास मे ही निवद्ध की गयी थी। यह एक लघु कृति है जिसमे आदिनाथ के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। इसकी एक मात्र प्रति अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे सग्रहीत है।[17] साभर नगर मे कवि ने जिणलाडू गीत का और निर्माण किया। यह रचना भी छोटी है जिसमे केवल १७ पद्य हैं।[18]

उक्त सवतोल्लेखवाली तृतीय रचना समाप्ति के पश्चात् कवि का साभर से विहार हो गया और वे मारवाड के अचल मे विहार करने लगे। नागौर की भट्टारक गादी से सम्वन्ध होने के कारण वे इस प्रदेश को कैसे भुला सकते थे। यद्यपि ब्रह्म रायमल्ल स्वाभिमानी सन्त थे और भट्टारको के पूर्णत अधीन नही रहना चाहते थे फिर भी उन्होंने शाकम्भरी प्रदेश एव नागौर प्रदेश को अपने उपदेशो से पावन किया और मवत् १६२८ मे वे हरसोरगढ पहुच गये जो नागौर प्रदेश का प्रमुख नगर था।

---

१७ देखिये राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची पचम भाग, पृष्ठ स ९४५

१८ देखिये राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची तृतीय भाग, पृष्ठ स ११७

यहां उन्होंने 'प्रद्युम्न रास' को समाप्त किया और अपनी रचना मे एक कडी और जोड दी। प्रद्युम्न रास कवि की उत्तम कृतियो मे से हैं। यह रचना १९५ पद्यो मे पूर्ण होती है। प्रस्तुत रास मे कवि ने अपना जो परिचय दिया है उसकी कुछ पंक्तियां निम्न प्रकार है—

हो मूलसंघ मुनि प्रगटी लौई, हो अनन्तकीर्ति जाणौ सहु कोउ।
तासु तणौ सिषि जाणिज्यौ जी, हो ब्रह्म रायमलि कीयौ बखाणौ।
हो सोलहसै अठवीस विचारो, हो भादव सुदी दुतीया बुधवारो।
गढ हरसौर महाभला जी, तिमै भलौ जिणेसुरथानो।
श्रीवंत लोग बसै भला जी, हो देव सास्त्र गुरू राखै मानो ।।१९४।।

हरसोर नागौर प्रदेश के इतिहास एव सस्कृति दोनो दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण नगर माना जाता रहा है।[१९] यह नगर सवत् १६२८ मे अजमेर सूबा मे सम्मिलित था।

हरसोर के पश्चात् महाकवि का काव्य रचना की ओर फिर ध्यान गया और वे एक के पश्चात् दूसरी रचना निर्मित करने लगे। सवत् १६२९ मे वे मारवाड से विहार कर धौलपुर आ गये। धौलपुर का क्षेत्र आज के समान उस समय भी सभवत डाकू आतकित क्षेत्र था इसलिये सन्त रायमल्ल ने इस प्रदेश के लोगो मे धार्मिक भावना जाग्रत करने के लिये विहार किया और पथ भ्रष्टो को वापिस गले लगाया। धौलपुर मे आने के पश्चात् उन्होंने "सुदर्शन रास" को छन्दोबद्ध किया और सवत् १६२९ मे वैशाख सुदी सप्तमी के शुभ दिन अपनी नवीनतम काव्यकृति को साहित्य जगत् को भेंट किया।[२०] धौलपुर पर उस समय बादशाह अकबर का शासन था। 'सुदर्शनरास' कवि की उत्तम कृतियो मे से हैं। धौलपुर के बीहड क्षेत्र मे विहार करने के पश्चात् ब्रह्म रायमल्ल आगरा, भरतपुर एव हिण्डौन होते हुये रणथम्भौर पहुचे। यह दुर्ग सदैव वीरता एव शौर्य के लिये प्रसिद्ध गढ माना जाता रहा तथा साहित्य एव सस्कृति का भी सैंकडो वर्षों तक केन्द्र रहा। जब रायमल्ल ने इस क्षेत्र मे प्रवेश किया तो उस समय वहा बादशाह अकबर का शासन था। चारो ओर शाति थी। महाकवि ने इस दुर्ग को कितने समय तक अपनी चरण रज से पावन किया इस विषय मे तो कोई उल्लेख नही मिलता लेकिन सवत् १६३० के प्रारम्भ मे जब इस दुर्ग मे प्रवेश किया तो जैन समाज के साथ-साथ सभी दुर्ग निवासियो ने ब्रह्म रायमल्ल का भावभीना स्वागत किया। कवि ने उस समय के दुर्ग का जो वर्णन किया है उससे ऐसा लगता है कि वहा के निवासी युद्धो की ज्वाला को भूल चुके थे

१९. Ancient Cities of Rajasthan page 329.
२० अहो सोलहसै गुणतीसै वैसाखि, सातै जी राति उजालै जी पाखि।

ग्रौर ग्रव शातिपूर्ण जीवन यापन करने लगे थे ।[२१] यहा रहने के कुछ समय पश्चात् ही सवत् १६३० की ग्रषाढ शुक्ला १३ शनिवार को उन्होने श्रीपाल रास की रचना समाप्त करने का गौरव प्राप्त किया । समाप्ति के दिन ग्रष्टान्हिका पर्व था इसलिये उस दिन समस्त समाज ने मिलकर नयी रासकृति का स्वागत किया । श्रीपाल रास कवि की वडी रचनाग्रो मे से है तथा उसमे २६८ छन्द हैं ।

रणथम्भोर ढूढाड प्रदेश का ही भाग माना जाता है । इसलिये कवि वहाँ से विहार करके सागानेर की ग्रोर चल पड़े । मार्ग मे ग्राने वाले ग्रनेक नगरो एव ग्रामो के नागरिको को सम्वोधित करते हुये वे सवत् १६३३ मे सागानेर ग्रा पहुचे सागानेर ढूढाड प्रदेश का प्रमुख नगर था तथा प्रदेश की राजधानी ग्रामेर से केवल १४ मील दूरी पर स्थित था । सागानेर को जैन साहित्य एवं सस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहने का गौरव प्राप्त रहा है । उस समय राजा भगवन्तदास ढूढाड के शासक थे तथा ग्रपने युवराज मानसिह के साथ राज्य का शासन भार सम्हालते थे । सागानेर ग्राने के पश्चात् कविवर ब्रह्म रायमल्ल ने ग्रपनी सवसे वडी कृति भविष्यदत्त चौपई को समाप्त करने का श्रेय प्राप्त किया । सयोग की वात है कि भविष्यदत्त चौपई की समाप्ति के दिन भी ग्रष्टान्हिका पर्व चल रहा था । उस दिन शनिवार था तथा संवत् १६३३ की कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी की पावन तिथि थी । नगर मे चारों ग्रोर ग्रष्टान्हिका महोत्सव मनाया जा रहा था । इसलिये ब्रह्म रायमल्ल की उक्त रचना का विमोचन समारोह भी वडे उत्साह के साथ ग्रायोजित किया गया । उस समय तक तक ब्रह्म रायमल्ल की ख्याति ग्राकाश को छूने लगी थी ग्रौर साहित्यिक जगत् मे उनका नाम प्रथम पक्ति मे ग्रा चुका था । वे कवि से महाकवि वन चुके थे तथा उनकी सभी रचनायें लोकप्रिय हो चुकी थी ।

सागानेर मे पर्याप्त समय तक ठहरने के पश्चात् महाकवि ब्रह्म रायमल्ल चाटसू की ग्रोर विहार कर गये ग्रौर काठाडा भाग के कितने ही ग्रामो को ग्रपने प्रवचनो का लाभ पहुचाते हुए वे टोडारायसिह जा पहुचे । टोडारायसिह का दूसरा नाम तक्षकगढ भी है । यह दुर्ग भी राजस्थान के विशिष्ट दुर्गों मे से एक दुर्ग है । १७ वी शताब्दि मे टोडारायसिह जैन साहित्य एव सस्कृति की दृष्टि से ख्याति प्राप्त केन्द्र रहा । देहली एव चाटसू गादी के भट्टारको का यहाँ खूव ग्रावागमन रहा । ब्रह्म रायमल्ल यहाँ ग्राने के पश्चात् साहित्य सरचना मे लग गये ग्रौर कुछ ही समय पश्चात् सवत् १६३६ ज्येष्ठ वुदी १३ शनिवार के दिन 'परमहस चौपई' की रचना समाप्त करके उसे स्वाध्याय प्रेमियो को स्वाध्याय के लिये विमुक्त कर दिया ।

---

२१. हो रणथभ्रमर सोमै कवि लास, भरीया नीर ताल चहु पास ।
वाग विहरि वाडी घणी, हो धन कण सम्पत्ति तणो निधान ।

कवि की यह आध्यात्मिक कृति है तथा रूपक काव्य है जिसमे परमहस परमात्मा का विशद वर्णन किया गया है। सवतोल्लेख वाली कवि की यह अन्तिम कृति है। इसमे ६५१ दोहा चौपई छन्द हैं।

सवत् १६३६ के पश्चात् ब्रह्म रायमल्ल और कितने वर्षो तक जीवित रहे तथा उनकी साहित्य साधना किस दिशा मे चलती रही इस सम्बन्ध मे अभी तक कोई उल्लेख नही मिल सका है। कवि की अब तक १५ रचनाएँ उपलब्ध हो चुकी है जिनमे ८ रचनाएँ सवतोल्लेख वाली है जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है शेष ७ रचनाओं मे रचना समाप्ति का कोई उल्लेख नही मिलता इसलिये उनकी कोई निश्चित रचना तिथि के बारे मे नही कहा जा सकता। लेकिन इन सात रचनाओ मे जम्बूस्वामिरास के अतिरिक्त सभी रचनाएँ लघु रचनाएँ है इसलिये हमारा अनुमान है कि वे सभी कृतियाँ सवत् १६१५ से १६३६ के बीच मे किसी समय रची गयी होगी।

रचनाएँ

महाकवि की अब तक १५ कृतियाँ उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम निम्न प्रकार है—

१	नेमीश्वररास	रचना सवत् १६१५
२	हनुमन्त कथा	रचना सवत् १६१६
३.	ज्येष्ठिजिनवर कथा	रचना सवत् १६२५
४.	प्रद्युम्न रास	रचना सवत् १६२८
५	सुदर्शन रास	रचना सवत् १६२९
६	श्रीपाल रास	रचना सवत् १६३०
७	भविष्यदत्त चौपई	रचना सवत् १६३३
८	परमहस चौपई	रचना सवत् १६३६

बिना संवत् वाली रचनाएँ

९ जम्बूस्वामी चौपई
१० निर्दोष सप्तमी कथा
११ चिन्तामणि जयमाल
१२ पच गुरू की जयमाल
१३ जिनलाडू गीत
१४ नेमिनिर्वाण
१५ चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न

उक्त सभी रचनाएँ हिन्दी की बहुमूल्य कृतियाँ है तथा भाषा, शैली एवं विषय वर्णन आदि सभी दृष्टियो मे उल्लेखनीय है। इन कृतियो का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

१. नेमीश्वररास

यह कवि की उपलब्ध कृतियो मे प्रथम कृति है। काव्य रचना मे प्रवेश करने के साथ ही कवि ने नेमिनाथ स्वामी के जीवन पर रास काव्य लिख कर उन्ही के चरणो मे उसे समर्पित किया है। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि नेमिनाथ के अत्यधिक भक्त थे। कवि को उस समय आयु क्या होगी इसके वारे मे कुछ नही कहा जा मकता। वैसे कवि का साहित्यिक जीवन सवत् १६१० से १६४० तक का रहा है। वे अपने पूरे साहित्यिक जीवन मे ब्रह्मचारी ही रहे और प्रत्येक काव्य के अन्त मे उन्होंने अपने आपको अनन्तकीर्ति के शिष्य के रूप मे प्रस्तुत किया। अनन्तकीर्ति मूलसघ भट्टारक परम्परा मे मुनि थे और उन्ही के शिष्य थे कविवर रायमल्ल जिन्होंने अपने गुरू का प्रस्तुत काव्य मे उल्लैख किया है।

नेमीश्वररास राजस्थानी भापा की कृति है। इसमे नेमिनाथ का जीवन चरित अकित है। नेमिनाथ २२ वें तीर्थंकर थे और भगवान श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। नेमिनाथ को ऐतिहासिक महापुरुप घोषित करने की ओर खोज जारी है। नेमि यदुवशी राजकुमार थे जिनके पिता समुद्रविजय थे। उनकी माता का नाम शिवादेवी वा। एक रात्रि को माता ने सोलह स्वप्नो देखे। स्वप्नो का फल पूछने पर समुद्रविजय ने अपूर्व लक्षणो युक्त पुत्र होने की वात कही। कार्तिक शुक्ला ६ को देवो ने मिलकर गर्भ कल्याणक मनाया।

श्रावण शुक्ला अष्टमी के दिन तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म हुआ। नगर मे विभिन्न उत्सव मनाये गये। आरती उतारी गयी और मौतियो का चौक माडा गया। स्वर्ग लोक के इन्द्र देव देवियो के साथ नगर मे आये और वाल तीर्थंकर को सुमेर पर्वत पर ले जाकर पाण्डुक शिला पर अभिपेक किया। इन्द्र अपने एक हजार आठ कलशो से जल भर कर नेमिकुमार का अभिपेक किया। दूध-दही, घृत एव रस के साथ औपधियो से मिले हुये जल से भगवान का न्हवण किया।

सहस अठोतर इद्र कै हाथि, अवर भरि लीया जी देवतां साथि।
जा हो जीऊ परि ढलिया, अहो दुध दही घृत रस कीजी घार।
सार सुगधी जी ऊपघी, अहो न्हवण भयौ शिव देवकुमार ।।२५।।

तीर्थंकर का नाम नेमिकुमार रखा गया इस सम्बन्ध मे कवि ने निम्न पद्य लिखा है—

अहो वज्र की सुइस्यो जो छेदिया कान, वस्त्र आभरण विनै वहुमान ।
अहो किया जी महोछा अतिघणा, वंदना भक्ति करि बारं-जी-वार ।।
अहो कर जोडै सुरपति भणी, नाम दिये तसु नेमिकुमार ।।२८।।

नेमिकार दोज के चन्द्रमा के समान वढने लगे । सुख एव ऐश्वर्य मे समय जाते देर नही लगती । नेमिकुमार कब युवा हो गये इसका किसी को पता भी नही चला । एक दिन श्रीकृष्ण वन क्रीडा को जाने लगे तो नेमिकुमार उनके साथ हो गये । अनेक यादव कुमार भी साथ मे थे तथा वे सभी हाथी रथ एव पालकी मे सवार थे । यही नही अन्त पुर का पूरा परिवार साथ मे था ।

वे वन मे विविध प्रकार की क्रीडा मे मस्त हो गये । एक युवती भूला भूलने लगी तो दूसरी हाथ मे डण्डा लेकर उसे मारने लगी । एक युवती यह देख कर खिलखिलाकर हसने लगी तो दूसरी अपने पति का नाम लिखने मे ही मरत हो गयी ।

एक तीया भुलै भुलरण, एक सखी हणै साट ले हाथि ।
एक सखी हा हा करै, अहो एक सखी लिहि कंत को नाव ।।

वही पर एक विशाल एव गहरी वावडी थी । वह गगा के समान निर्मल पानी से ओत-प्रोत थी । नेमिकुमार ने उस वावड़ी मे खूब स्नान किया । जब वे स्नान करके वावडी से वाहर निकले तो अपना दुपट्टा डाल दिया तथा अपनी भावज जामवती से उसे शीघ्र धोने का निवेदन किया । जामवती को वह अच्छा नही लगा और कहा कि यदि नारायण श्रीकृष्ण ऐसी वात सुन लें तो तुम्हे नगर से वाहर निकाल दें । नारायण के पास शख, एव धनुष जैसे शस्त्र है तथा नाग शैया पर वे सोते हैं । यदि तुम्हारे मे भी वल हो, तथा इनको प्राप्त कर सको तो वह उनके कपड़े धो सकती है । नेमिकुमार को जामवती की वात अच्छी नही लगी । वन क्रीडा से लौटने के पश्चात् नेमि नारायण के घर गये और वहा उनका शख पूर दिया । शख पूरने से तीनो लोकों मे खलवली मच गयी । नेमिकुमार ने नारायण के धनुष को भी चढा दिया । वही श्रीकृष्णजी आ गये । वे क्रोधित होकर नेमिकुमार को डाटने लगे । दोनो मे मल्ल युद्ध होने लगा । लेकिन श्रीकृष्ण इन्हे नही हरा सके ।

नारायण ने समुद्र विजय के घर आकर शिवादेवी के चरण स्पर्श किये तथा कहा कि नेमिकुमार युवा हो गये हैं इसलिये शीघ्र ही उनका विवाह करना चाहिये तथा यह भी कहा कि उग्रसेन की पुत्री नेमिकुमार के योग्य कन्या है । माता ने श्रीकृष्ण के कहने पर अपनी स्वीकृति दे दी । इसके पश्चाद् नारायण ने राजा उग्रसेन के समक्ष राजुल के विवाह का प्रस्ताव रखा । उग्रसेन ने माना कि घर पर वैठे गगा

आ गयी और उन्होंने अपने भाग्य को सराहा। ज्योतिषी को बुलाया गया तथा दोनों के नक्षत्र देखे गये। उग्रसेन एव श्रीकृष्ण ने ज्योतिषी से निम्न प्रकार कहा—

अहो लेहु शुभ लग्न जिव होई कुसलात, रोग विजोगन सांचरौ।
स्वामि राहु सनिशर टालि जै लाभ, श्री नेमिजिनेश्वर पाय नमूं ॥४८॥

ज्योतिषी ने दोनो के निम्न प्रकार लग्न देखा—

अहो मांडि जी खडहि कियौ वखाण, ग्यारहु सुरु गुरू राजल थान।
नेमि नौ सात उरवि लौ, अहो लिख्यौ जी लग्न गोणी ज्योतिगी यां ज्ञान।

सम्वन्ध निश्चित हो गया तथा श्रीकृष्ण जी के आचल मे पान सुपारी हल्दी और नारियल समर्पित कर दी गयी।

भगवान श्रीकृष्ण जी द्वारा सुपारी स्वीकार करते ही चारो और हर्ष छा गया। वाजे वजने लगे तथा घर घर मे वधावा गाये जाने लगे। षट् रस व्यजन वनाये गये तथा सभी राजा एक पंक्ति मे भोजन करने लगे। भोजन के पश्चात् तावूल दिये गये। वस्त्राभूषण का तो कोई ठिकाना ही नही था। अन्त मे कृष्ण जी को हाथ जोड कर विदा किया गया। लगन लेकर जव कृष्ण जी वापिस पहुंचे तो शिवादेवी से नेमिमुमार के विवाह की तैयारिया करने को कहा। एक और सुन्दरिया गीत गाने लगी। तेल इत्र छिडका जाने लगा तथा केसर कस्तूरी तथा फूलो से सारा राजमहल सुगन्वित होने लगा। दूसरी और विश्वस्त सेवको को वुलाकर महिष, सुवर, सांभर, रोझ, सियाल आदि को एक वाडा मे वन्द किये जाने का आदेश दिया गया।[1]

अहो तव लगु केसौ जी रच्यौ हो उपाउ, सेवक आपणा लीयाजी बुलाई।
वेग देव नमौ जी गम करौ, अहो छै लाहो महिष हरण सुवर–
सांवर रोझ सियाल, वेगि हो जाई वाडौ रचौ
अहो गौरण ओग्रजी सेणि भोवाल ॥५५॥

नेमीकुमार की वारात मे सभी यादव परिवार के अतिरिक्त कौरव, पाडव भी थे। वराती सभी सज धज कर चले। आंखो मे कज्जल, मुख मे पान, केशर चन्दन तथा कुंकुम के तिलक लगे हुये पालकी, रथ एव हाथियो पर वे चले। लेकिन जव वारात चली तो दाहिनी ओर रासभ पुकारने लगा, रथ की ध्वजा फट गयी, कुत्ते ने कान फडफडाया, तथा विल्ली ने रास्ता काट दिया।

नेमिकुमार के सेहरा वांधा गया उनके मोतियो की माला लटक रही थी। कानो मे कुडल थे तथा मुकुट मे हीरे जडे हुये थे। उनके वस्त्र दक्षिण देश से विशेष रूप से मगाये गये थे। जव वरात नगर मे पहुंची तो वाजे वजने लगे। शख ध्वनि होने लगी। वरात की अगुवानी हुई तथा महाराजा उग्रसेन ने नेमिकुमार से कृपा रखने के लिये निवेदन किया।

दूसरे दिन लग्न की तिथि आयी तो नेमिकुमार अपने परिजनो के साथ तोरण के लिये पहुचे। उनके स्वागत मे महिलाओ ने मगल गीत गाये। राजुल ने भी अपना पूरा शृंगार किया।

अहो मंदिरि राजल करी जी सिंगार, सोहै जी गली रत्नांड्यौ हार।
नासिका मोती जी अति वण्यौ, अहो पाई नेवर महा सिरहा मैह-मंद।
काना हो कुंडल अति भला, अहो मेरू दुहुं दिसो जिम सूर अर चद।

नेमिकुमार जव तोरण द्वार पर पहुचे तो उन्हे एक स्थान से अनेक पशुओ की करुण पुकार सुनाई दी। उनकी पुकार सुन कर वे चुपचाप नही रह सके और उसका कारण पूछा। जव नेमिकुमार को मालूम पड़ा कि ये पशु उन्ही की वरात मे आये हुये वरातियो के लिये हैं तो वे चिन्तित हो उठे और सपत्ति को पाप का मूल जान कर विवाह के स्थान पर वैराग्य लेने को अधिक उचित समझा और ककन तोड कर गिरनार पर्वत पर चढ गये—

स्वामी जीव पसू सहु दीना जी छोडि, चाल्यौ जी फेरि तप नै रथ मोडि।
कांधै जी सुराह लीधी पालिकी, अहो जै जै कार भयो असमान।
सुरपति विनौ जी बोलै घणौ, स्वामि जाइ चढ्यौ गिरनारि गढ़ थानि ।।७३।।

क्योकि जहा जीव दया नही है वहा सव वेकार है—

जप तप संजम पाठ सहु, पूजा विधि व्यौहार।
जीव दया विण सहु अफल, ज्यौ दुरजन उपगार।

लेकिन जव राजुल ने नेमिकुमार द्वारा वैराग्य धारण करने की वात सुनी तो वह मूर्छित होकर गिर पडी—

अहो गइ जी वचन सुणता मुरछाई, काटि जी बेलि जैसौं कुमलाई।
नाटिका थानक छाडिया, अहो मात पिता जब लाधी जी सार।
रूदन करौ अति सिर धुणै, अहो कीना जी सीतल उपचार ।।७५।।

जब राजुल के माता पिता ने उसका दूसरे कुमार के साथ विवाह करने की वात कही तो राजुल ने उसे भारतीय सस्कृति के विरुद्ध वतलाया तथा नेमिकुमार के अतिरिक्त सभी को अपने पिता एव भाई के समान मानने का अपना निश्चय प्रकट किया। वह अपनी एक सहेली को लेकर गिरनार पर्वत पर गयी जहा नेमिनाथ मुनि दीक्षा धारण कर तपस्या मे लीन हो गये थे। राजुल ने नेमिनाथ से वापिस घर चलने को कहा, अपने सौन्दर्य की प्रशसा की। विभिन्न १२ महिनो मे होने वाले

प्राकृतिक उपद्रवो की भयकरता पर प्रकाश डाला एव विविध प्रकार से अनुनय विनय किया—

अहो असा जी बारह मास कुमार, रिति रित भोग कीजै अतिसार ।
आवता जन्म की को गिणै, अहो घर मे जी नाज खाबाजै जी होइ ।
पापि लांघण करि मरौ स्वामी मुवा थे लाकडी देई न कोई ।।६७।।

नेमिनाथ ने राजुल की वेदना बडे ध्यान से सुनी लेकिन वे उससे जरा भी प्रभावित नही हुये । उन्होंने ससार की असारता, मनुष्य जीवन का महत्त्व, जगत् के पारवारिक सम्बन्धो के बारे मे विस्तृत प्रकाश डाला तथा वैराग्य लेने के निश्चय को दोहराया ।

राजुल नेमिनाथ की बातो से प्रभावित तो हुई लेकिन उसने स्त्रीगत भावो का फिर प्रदर्शन किया । लेकिन नेमिनाथ को वह प्रभावित नही कर सकी । नेमिनाथ की माता शिवादेवी भी वही आ गयी और उन्हे घर चल कर राज्य सम्पदा भोगने के लिये अपना अनुनय किया ।

अहो माता सिवदेवि जी नेमि नै दे उपदेसि पुत्र सुकमाल तुं हुं बालक वेस ।
दिन दस घर में जी थिति करौ, अहो सुखस्यौ जी भोगवौ पिता को राज ।
दिष्या हो लेण वेला नहिं स्वामि चौथै हो आश्रमि आतमा काज ।।११४।।

माता शिवादेवी एवं नेमिनाथ मे खूब वाद विवाद हुआ । माता ने विविध दृष्टान्तो से राज्य सम्पदा के सुख भोगने की बात कही जबकि नेमिनाथ जगत् के सुखो की असारता के बारे मे दृष्टान्त दिये ।

माता पिता के पश्चात् बलभद्र, श्रीकृष्णजी एव अन्य परिवार के मुखिया नेमिनाथ को समझाने आये लेकिन नेमिनाथ ने वैराग्य लेने का दृढ निश्चय प्रकट किया और अन्त मे सावन शुक्ला ६ को वैराग्य ले लिया । तत्काल स्वर्ग से इन्द्रो ने आकर नेमिनाथ के चरणो की पूजा, भक्ति एव वन्दना की । राजुल ने भी वैराग्य लेने का निश्चय किया और अपने आभूषण एव वस्त्रालकार उतार दिये तथा उसने आर्यिका की दीक्षा ले ली । वह विविध व्रतो एव तप मे लीन रहती हुई अन्त मे मर कर १६ वें स्वर्ग मे इन्द्र हो गयी । नेमिनाथ ने कैवल्य प्राप्त किया और देश मे सैंकड़ो वर्षों तक विहार करके तथा अहिंसा, अनेकान्त एव अन्य सिद्धान्तो का उपदेश देकर देश मे अहिंसा धर्म का प्रचार किया और अन्त मे गिरनार से ही मुक्ति प्राप्त की ।

प्रस्तुत काव्य ब्रह्म रायमल्ल की प्रथम कृति है । इसे कवि ने सवत् १६१५ सावन कृष्णा १३ बुधवार के शुभ दिन समाप्त किया था । नेमीश्वररास की रचना झुंझुनु नगर मे हुई थी जहाँ चारो ओर बाग बगीचे थे । महाजन लोग जहाँ पर्याप्त

सख्या मे थे तथा जिसमे ३६ जातियाँ रहती थी। उस नगर के शासक चौहान जाति के थे जो अपने परिवार के साथ राज्य करते थे। नगर मे श्री पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर था और वही नेमिश्वररास का रचना स्थान था। प्रशस्ति मे कवि ने अपने आपको मूलसंघ सरस्वती गच्छ के मुनि अनन्तकीर्ति का शिष्य होना लिखा है। पूरी प्रशस्ति महत्वपूर्ण है जो निम्न प्रकार है—

श्री मूलसंघ मुनि सरसुती गछ, छोडी हो चारि कषाय निभंछ।
अनन्तकीर्ति गुरू विदितो, तासु तणें सिषि कीयो जी वखाण।
ब्रह्म रायमल्ल जगि जाणियें, स्वामी जी पार्श्वनाथ को जी थानि ।।१४१।।

रचना काल—

अहो सोलाहसै पन्द्राह रच्यो रास, सावलि तेरसि सावण मास।
बरतै जी बुधि वासौ भली, अहो जैसी जी बुधि दीन्हो अवकास।
पंडित कोई जो मत हसौ, तैसी जी बुधि कीयो परगास ।।१४२।।

रचना स्थान—

बागवाडी धणी नीकै जी ठाणि, वसै हो महाजन नग्र झाझौंणि।
पौणि छत्तीस लीला करै, गाम को साहिब जाति चौहाण।
राज करौ परिवार स्यो, अहो छह दरसन को राखौ जी मान ।।१४३।।

छंद सख्या—

भण्यो जी रासौ सिवदेवी का बालको, कडवाहो एक सौ अधिक पैताल।
भाव जी मेव जुदा जुदा, छंद नामा इहु शब्द सुभवर्ण।
कर जोडै कवियण कहै, भव भव धर्म जिनेसुर सर्ण ।।१४४।।

श्री नेमिजिणेसर पय नमुं ।।

उक्त प्रशस्ति के अनुसार रास मे १४५ कडवक छन्द होने चाहिये।

२. हनुमन्त कथा

प्रस्तुत कृति भी कवि की विस्तृत कृतियो मे से है। भविष्यदत्त चौपई के समान इस रचना के भी हनुमन्तकथा, हनुमन्तरास एव हनुमन्त चौपई आदि नाम मिलते हैं। हनुमान पौराणिक पुण्य पुरुषो मे से एक हैं तथा उनकी कथा का प्रमुख उद्गम स्थान रविषेणाचार्य का पद्म पुराण है जो सस्कृत भाषा मे है। हनुमान का जीवन समाज मे लोकप्रिय रहा है इसलिये हनुमान के जीवन पर आधारित कितनी ही रचनाएँ मिलती है। प्रस्तुत कृति भी कवि की ऐसी एक लोकप्रिय कृति है। जिसकी कितनी ही प्रतियाँ राजस्थान के विभिन्न भण्डारो मे सग्रहीत है।

ब्रह्म रायमल्ल ने कथा का प्रारम्भ चौवीस तीर्थंकरो की वन्दना से किया है। उसके पश्चात् सरस्वती का स्तवन किया गया है तथा अपनी निम्न शब्दो मे लघुता प्रकट की है—

समरौ सरसति सामरिण पाय, होइ बुधि तुम्ह तणी पसाइ ।
हौं मूरिख अति अपढ अयाण, पडित जन मोह्या सु विहाण ।।१५।।
अक्षर पद नवि पाऊं भेद, लह्यो न अर्थ होइ वहु खेद ।
लघु दीर्घ जाणु नहीं वर्ण, करिवा कहौं कथा आचर्ण ।।१६।।

इसके पश्चात् आचार्य कुन्दकुन्द का नमन करके कथा को प्रारम्भ किया गया है। सुमेरू के दक्षिण भाग की ओर विधाधरो की वस्ती थी । चारो ओर सघन हरियाली थी वनो मे चारो ओर वृक्ष लगे हुये थे । सुपारी भी कमरख था तथा निंवु एव आम के सघन वृक्ष, लोग, अखरोट एव जायफल मे लदे हुये वृक्ष थे । कुजा, मरवा एव रायचपा की वेलिया जुही, पाडल, वोलश्री, चमेली, एव मूचकद के लता एव वृक्ष थे ।

घोल सुपारी कमरख घणी, निंवु जां आवांफण सचिचिरिण ।
मिरि विदाम लौंग अखरोट, वहत जाइफल फले समाट ।।८।।
कुंजौ मरवौ साटौ जाइ, वेलि सिहाली चंपौ राइ ।
जुही पाडल बौलश्री कंद, चंवेली कनयर मुचकंद ।।९।।

आदितपुर वहुत सुन्दर नगर था जिसके राजा का नाम प्रहलाद था । उसके एक पुत्र था नाम था पवनकुमार । आदितपुर नगर सव तरह से सम्पन्न था । मदिर थे, वाजार थे, वडे वडे व्यापारी थे । श्रावक गण धन धान्य से पूर्ण थे । एक दूसरे मे ईर्ष्या नही थी । कही मल्लयुद्ध होता था तो कही अखाडा चलता था । घर घर विवाह होते रहते थे । नगर मे मुनियो का आहार होता रहता था ।

इसी भरत क्षेत्र मे मेरू के पूर्व दिशा की ओर वसन्त नगर था उसका राजा महेन्द्र था तथा रानी का नाम इन्द्रदवनि था । अजना उसकी पुत्री का नाम था । वह वहुत रूपवती थी । अजना जव पूर्ण युवती हो गई तो राजा ने अपने चारो मत्रियो से वुलाकर अजना के लिये उचित वर की तलाश करने को कहा । प्रथम मन्त्री ने रावण से विवाह करने का प्रस्ताव किया । दूसरे मन्त्री ने रावण के पुत्र इन्द्रजीत एव मेघनाद मे से किसी एक के साथ विवाह करने के लिये कहा । तीसरे मन्त्री ने हिरणाभ के पुत्र अरिंद कुमार से करने की सलाह दी । चौथे मन्त्री ने पवनजय के साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा । सभी सभासदो को अन्तिम प्रस्ताव अच्छा लगा ।

कुछ दिनो पश्चात् अष्टान्हिका पर्व आ गया और सव विद्याधर अष्टान्हिका पूजा के निमित्त नन्दीश्वर द्वीप चले गये । वहा भक्तिपूर्वक पूजा होने लगी । वही

पर पवनकुमार के पिता प्रह्लाद आ गये। दोनो राजा मिलकर अतीव प्रसन्न हुए—

बहुत आनन्द दुहु मन भयो, ताको वर्णन जाइ न कह्यो।
कनक सिला सोभै अति भली, बैठा तहां भूपति अति बली।

राजा महेन्द्र ने अपनी पुत्री अजना का राजा प्रह्लाद के सामने प्रस्ताव रखा और कहने लगा—

मुझ पुत्री सुन्दरि अंजनी, रूप विवेक कला बहु भणी।
वर प्राप्ति सा कन्या भई, निस वासरि मुझ निद्रा गई।
चिंत अधिक भई सरीर, तज्यां तंबोल अन्न अरु नीर।
राज कुंवार देखै सब टोहि, बात विचार न आवैं कोइ ॥५६॥
हम ऊपरि करि दया पसाव, राखौ बोल हमारो राव।
बात तुम्हारै चित्त सुहाइ, पवन अंजना दीजै व्याहि ॥६६॥

अन्त मे विवाह का निश्चय हो गया और शुभ मूहरत मे दोनो का विवाह हो गया। एक महीने तक वहा वारात ठहरी।

लका मे रावण का शासन था। वह तीनखंड का सम्राट था। चारों दिशाओ मे उसकी धाक थी। लेकिन पुडरीक नगर के राजा वरुण अपने आपको अधिक शक्तिशाली मानते थे। इसलिये रावण ने उस पर विजय प्राप्त करने का निश्चय किया और अपना दूत उसके दरबार मे भेजा। इसके पश्चात् दोनो की सेनाओ मे युद्ध छिडा लेकिन रावण जीत नही सका। वह वापिस लका आ गया और सेना एकत्रित करके युद्ध की पुन तैयारी करने लगा। रावण ने प्रह्लाद राजा को भी सेना लेकर बुलाया। पवनकुमार ने अपने पिता के समक्ष स्वय जाने का प्रस्ताव रखा और पिता की स्वीकृति से सेना को साथ लेकर चल दिया। रात्रि होने पर सरोवर के पास पडाव डाल दिया। वहा पवनकुमार ने चकवी के विरह को देखा। पवनकुमार को अजना की याद आ गयी जिसको उसने अकारण ही १२ वर्ष से छोड रखा था। अन्त मे वह अपने मित्र की सहायता से तत्काल उसी रात्रि को अजना से मिलने गया। अजना से अपने किये पर क्षमा मागी और दोनो ने रात्रि आनन्द से व्यतीत की। अजना की प्रार्थना पर उसे एक स्वर्ण अगूठी देकर पवनजय वापिस युद्ध भूमि के लिये चल दिया।

अजना गर्भवती हो गयी। चारो ओर चर्चा होने लगी। उसकी सास को जब मालूम पडा तो अजना ने अपना स्पष्टीकरण दे दिया लेकिन किसी ने उस पर विश्वास नही किया और उसको अपने पिता के घर भेज दिया। पिता ने भी उसके चरित्र पर सन्देह किया और बहुत कुछ समझाने पर भी किसी बात पर भी

विश्वास नही किया और अजना को देश निकाला दे दिया। होनहार ऐसा ही था। कवि ने ऐसी घटनाओ पर अपनी वहुत सुन्दर टिप्पणी दी है—

जा दिन आवै आपदा ता दिन प्रीत न कोइ।
माता पिता, कटुंव सहु ते फिरि वैरी होइ।
कंत सासु सुसरौ पिता, रथ दल अधिक अनूप।
सुन्दरी निकली एकली, यौ संसार सरूप ॥२७॥

अपने पिता की नगरी से अजना अपनी एक दासी के साथ भयकर वन में पहुची। उसी वन मे उसे एक मुनि के दर्शन हुए जिससे उसको वहुत कुछ सात्वना मिली। उसने णमोकार मन्त्र का उच्चारण किया। मुनि ने भी उन्हे उपदेश दिया और विपत्ती मे धैर्य धारण करने के लिये कहा। मुनि से अजना ने अपनी विपत्ति का कारण पूछा। अजना ने अपने पूर्व सचित पाप कर्मो का फल जानने के पश्चात् वह और उसकी दासी वन मे रहने लगी। वही एक रात्रि को गुफा मे अजना ने पुत्र को जन्म दिया।

गुफा मध्य अति भयो उजास, जाणकि दिणयर किियो प्रकास।
रूप कला गुण लहै न पार, परतषि..........काम अवतार ॥७६॥
दिवयर कोटि दिपै तस देह, सोल कला चन्द्र मुख एव।
तेज पुंज दीजै वर वीर, महाबज्र तसु चर्म सरीर ॥८०॥

उसी गुफा के ऊपर से एक विद्याधर विमान द्वारा सपत्नीक जा रहा था। जव उसे मालूम हुआ तो वह गुफा मे जाकर अंजना एवं नवजात शिशु के सम्वन्ध मे जानना चाहा। दासी द्वारा जव वात मालुम हुई कि वह तो उसका मामा ही है, वह तत्काल अजना को अपने साथ ले गया और वालक का जन्मोत्सव मनाया। ज्योतिषी ने जन्म कुडली वनायी और कहा कि यह वालक अपूर्व तेजस्वी होगा तथा अन्त मे निर्वाण प्राप्त करेगा। मामा के विमान मे पाचो वैठ कर चल दिये। वालक मामा के हाथ मे था। विमान ऊपर चला जा रहा था कि मामा के हाथ से छूट कर वह नीचे गिर पडा। अजना पर फिर विपत्ति आ गयी। नीचे जव विमान को उतारा तो देखा वालक प्रसन्न होकर अगूठा चूख रहा है। अंजना की प्रसन्नता का पार नही रहा अन्त मे वे सव अपने घर आ गये। अजना अपने मामा के घर रहने लगी।

इधर पवनकुमार रावण से सम्मानित होने के पश्चात् वापिस अपने देश लौट आया। वहां आने पर जव उसे अजना नही मिली तो वह तत्काल अपने साथी के साथ राजा महेन्द्र के यहा गया। जव वहा भी उसे अजना नही मिली तो वह उसके विरह मे उन्मत्त होकर चारो ओर वन, पर्वत एव गुफाओ मे उसकी तलाश करने लगा। लेकिन फिर भी उसे अंजना नही मिली। अन्त मे उसके पिता श्वसुर आदि

सभी उसे खोजते वहा आ गये और पवनजय को अजना मिलने की खुशखबरी सुनायी। कुछ समय पश्चात्-पवन कुमार उसको साथ लेकर वापिस आदितपुर चला गया और वहा सुख पूर्वक राज्य करने लगा।

वहुत वर्षो पश्चात् रावण का फिर सदेश लेकर दूत आया और शीघ्र ही सेना लेकर वरुण को पराजित करने का आदेश दिया। हनुमान ने अपने पिता के साथ जाने का प्रस्ताव रखा। लेकिन पिता ने वालक हनुमान को युद्ध की भयानकता के वारे मे वतलाया लेकिन उसने एक भी नही सुनी। अन्त मे पिता ने उसे सम्मान के साथ विदा किया। हनुमान को नगर से निकलते ही शुभ शकुन हुये। कवि ने उन्हे निम्न शव्दो मे गिनाया है—

भये सुगरण सुभ चालत बार, बांई देव्या करै घोकार।
बावौ तीतर बाई माल, बांई सारस सांड सियाल ।।११।।
बांवो घूघू घूमै घणो, देहि मान रावण घति घणो।
बावो सुणहो ठोकै कंध, बेगौ करे शत्रु को वध ।।१२।।
बावै सिंघ करै दोकार, बावं रासभ बारंबार।
आडी फिरि आई लौंगती, बांधें शत्रु हण भूपति ।।१३।।

हनुमान ने वरुण की सेना को सहज ही परास्त कर दिया। इससे चारो ओर उसकी जय जय कार होने लगी। एक दिन हनुमान अपने दीवान के साथ बैठे हुये थे। एक दूत ने हनुमान के हाथ मे पत्र दिया जिसमे उनसे कोकिंदा के राजा सुग्रीव की अत्यधिक सुन्दर पुत्री पद्मावती के साथ विवाह करने की प्रार्थना की गई थी। कुछ समय पश्चात् खरदूषण के मरने एव सवुक के पतन के समाचार सुनकर हनुमान को भी दुख हुआ।

पर्याप्त समय के पश्चात् हनुमान के पास पत्र लेकर फिर एक दूत आया पत्र मे निम्न पक्तिया थी—

दूजा दिन आयो एक दूत, लिख्यो लेख दीनौ हनुवंत।
सीता हरण कही सहु बात, राम लखमन की कुशलात ।।५।।
रामचन्द्र कीन्हौ उपगार, सहु सुग्रीव सुण्यो व्योहार।
राम छुडाई आइ सुतार, सुणी सहु ते बात विचार ।।६।।

पत्र को पढ कर हनुमान शीघ्र ही राम के पास गये। राम ने हनुमान का स्वागत किया और सीता हरण की वात वतलायी तथा तत्काल लका मे जाकर सीता से मिलकर निम्न सदेश देने के लिये कहा—

कहि जे सिया छुडाउं तोहि, सफल जन्म तब मेरउ होई
तिया गये सो जो नवि करे, तास भार धरती थर रहे ।।२५।।

हनुमान राम का शुभाशीर्वाद लेकर लका के लिये रवाना हुये। मार्ग में दो मुनियो को सकट मे देख कर उनका उपसर्ग शान्त किया। वही पर लका सुन्दरी से विवाह किया और उसे सीता के सम्बन्ध मे बात बतलायी।

हनुमान लका मे जाकर विभीषण से मिले। वहा उनका उचित स्वागत हुआ। हनुमान जहा सीता रहती थी वहा गये।

हनुमान ने वहा सीता के दर्शन किये। सर्व प्रथम राम नाम की मुद्रिका को ऊपर से सीता के पास गिरा दी। मुद्रिका देख कर सीता प्रसन्न हुई। उधर रावण को भी मन्दोदरी ने बहुत समझाया। उसके पहले ही १८ हजार राणिया थी और वे भी एक से एक सुन्दर थी। सीता की भी मन्दोदरी ने निम्न शब्दो मे प्रशसा की—

तुम्ह सम रूप नहीं को नारि, संयम सील वरत आचार।
धनि पिता माता जिहि जणी, धनि रामचन्द्र तस कामिनी ॥३६॥

हनुमान ने सीता से राम के समाचार कहे तथा सीता को छुडाने का रामचन्द्र का निश्चय घोषित किया। हनुमान एव सीता ने एक दूसरे की बात पूछी तथा किस तरह सीता का हरण किया गया वह बतलाया। सुग्रीव का राम से जाकर मिलना तथा उन्हे अपनी राजधानी मे लाकर ठहराने की बात कही।

उधर मन्दोदरी ने हनुमान के आने की बात रावण से कही तो उसने तत्काल उसे बाध कर लाने का आदेश दिया। हनुमान ने सबका सामना किया। रावण ने अपने पुत्र इन्द्रजीत को हनुमान को बाध कर लाने के लिये भेजा। अन्त मे इन्द्रजीत हनुमान को रावण के पास ले जाने मे सफल हो गया। रावण ने हनुमान को बहुत समझाया, ससार का स्वरूप बतलाया, लेकिन रावण ने एक भी नही सुनी। हनुमान से अपने मरण की बात बतलायी और पूंछ के कपडा रूई आदि बाधने तथा उस पर तेल डालने के लिये कहा। हनुमान ने तत्काल अपनी पूछ चारो ओर घुमा दी जिससे लका जलने लगी। इसके पश्चात् हनुमान वापिस राम के पास आ गये। राम ने हनुमान का राजसी स्वागत किया। वापिस आने के पश्चात् हनुमान ने लका का पूरा वृत्तान्त सुनाया। इसके पश्चात् राम ने लका विजय के लिये सेना तैयार की और वे लका विजय के लिये चल पडे। इसके पहले कि वे रावण पर आक्रमण करते उन्होने रावण को समझाने के लिये अपना दूत भेजा लेकिन रावण ने दूत की बातो पर कोई ध्यान नही दिया तथा उसके नाक कान काटने का आदेश दिया।

अन्त मे राम को लका पर आक्रमण करना पडा। दोनो की सेनाओ मे घोर युद्ध हुआ और अन्त मे लक्ष्मण के हाथ से रावण का अन्त हुआ। सीता को लेकर राम वापिस अयोध्या लौट आये। हनुमान कुडलपुर पर राज्य करने लगे। बहुत

समय तक राज्य करने के पश्चात् हनुमान को जगत् से उदासीनता हो गयी। उन्होंने मुनि दीक्षा धारण कर ली और महानिर्वाण प्राप्त किया।

रचना काल

कवि ने अपने इस काव्य को सवत् १६१६ वैशाख कृष्णा ६ शनिवार को समाप्त किया। उसने नम्रतापूर्वक अपने लघु ज्ञान के लिये सब विद्वानो से क्षमा मागी है। जिसका उल्लेख उसने अपनी प्रशस्ति मे किया है।[1] उसने रत्नकीर्ति और मुनि अनन्तकीर्ति के नामो का उल्लेख किया है और अपने आपको अनन्तकीर्ति का शिष्य स्वीकार किया है।[2]

मूलसंघ भव तारण हार, सारद गच्छ गरवौ संसार।
रत्नकीर्ति मुनि अधिक सुजाण, तास पाटि मुनि गुणहनिधान।
अनन्तकीर्ति मुनि प्रगट्यौ नाम, कीर्ति अनन्त विस्तरी ताम।
मेघ बूंद जे जाइ न गिनी, तास मुनि गुण जाउन भणी।
तास सिष्य जिण चरणां लीण, व्रह्म राउमल मति को हीण।
हणू कथा नी कियौ प्रकास, उत्तम क्रिया मुणीश्वर दास।

कवि की यह सवतोल्लेख वाली यह दूसरी रचना है।[3] कवि ने इसका रचना स्थन नही लिखा है और न तत्कालीन किसी शासक का नाम ही लिखा है। कवि ने प्रारम्भ और अन्त मे मुनिसुव्रतानाथ का स्मरण किया है जिससे पता चलता है कि इसकी रचना मुनिसुव्रतनाथ के चैत्यालय मे हुई थी।[1]

प्रस्तुत राम काव्य मे ७५७ पद्य हैं जो वस्तुबन्ध, दोहा और चौपई छन्दो मे विभक्त हैं। रास की भाषा राजस्थानी है।

---

१ भणी कथ मन मै धरि हर्ष सोलासै सोला शुभ वर्ष।
रिति वसत मास वैशाख, नौमि सनीसर कृष्णहि पास॥

२. मूलसघ भव तारण हार, सारद गच्छ गरवौ ससार।
रत्नकीर्ति मुनि अधिक सुजाण, तास पाटि मुनि गुणहनिधान्।
अनन्तकीर्ति मुनि प्रगट्यौ नाम, कीर्ति अनन्त विस्तरी ताम।
मेघ वूद जे जाइ न गिनी, तास मुनि गुण जासन भणी।
तास सिष्य जिण चरणा लीना, व्रह्म राउमल मति को हीण।
हरण कथा नी कियो प्रकास, उत्तम क्रिया मुणीश्वर दास।

३ प्रस्तुत पाडुलिपि एक गुटके मे है जो महावीर भवन मे सग्रहीत है। गुटका का लेखनकाल सवत् १७१६ पौष सुदी प्रतिपदा है।

३. ज्येष्ठ जिनवर कला

यह कवि की लघु रचना है जिसमें प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव का जीवन चरित्र अंकित है। प्रथम तीर्थंकर होने के कारण वे सबसे बडे जिन हैं, इसलिये इस कथा का नाम जेष्ठजिनवर कथा रखा गया है। इसका रचना काल सवत् १६२५ तथा रचना स्थान सांभर (राजस्थान) है। प्रस्तुत कथा का अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर मे संग्रहीत है। रचना सामान्य है।

४. प्रद्युम्नरास

परदवणरास ब्रह्म रायमल्ल की रास सज्ञक कृतियो मे महत्वपूर्ण कृति है। राजस्थानी भाषा मे निवद्ध इस रास काव्य का रचनाकाल सवत् १६२८ भादवा सुदी २ वुधवार है।[1] गढ हरसोर इसका रचना स्थान है। हरसोर जयपुर राज्य का ही एक ठिकाना था जहा जैन श्रीमन्तो की अच्छी वस्ती थी। जिनमन्दिर था तथा उसमे पूजा व्रत विधान होते रहते थे। कवि ने सम्भवत सवत् १६२८ का चातुर्मास यही व्यतीत किया था और वही श्रावको के आग्रह से इस रास की रचना समाप्त की थी।[1]

प्रद्युम्न की गणना १६६ पुण्य पुरुषो मे की गयी है तथा २४ कामदेवो मे भी प्रद्युम्न का सम्मानित स्थान है। ये नवें नारायण श्रीकृष्ण जी के पुत्र थे। चरम शरीरी थे। जैन वाङ्मय मे प्रद्युम्न के चरित्र का महत्वपूर्ण स्थान है। अब तक संस्कृत, अपभ्रंश हिन्दी एव राजस्थानी मे विभिन्न कवियो द्वारा निवद्ध प्रद्युम्न के जीवन पर २५ कृतियां खोज ली गयी हैं।[2] ब्रम्ह रायमल्ल के पूर्व निवद्ध ७ कृतियां मिलती है और प्रस्तुत रास काव्य के रचना के पश्चात् १७ कृतियां और लिखी गयी जिनसे प्रद्युम्न के जीवन की उत्तरोत्तर लोकप्रियता का भान होता है।[2]

रास काव्य का मूल्यांकन

प्रद्युम्न रास का प्रारम्भ तीर्थंकर की वन्दना से होता है इसके पश्चात् जिनवाणी तथा फिर निर्ग्रन्थ गुरू को नमस्कार किया गया है। कवि ने फिर अपनी अल्पज्ञता का निम्न पद्य मे वर्णन किया है–

हो हौ मूढि अति अपढ अयाण, भावभेद जाणो नहीं जी
हो थोडी जी वुधि किम करौ वखाण, रास भणौ परदवण को जी।

---

१ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची पचम भाग–पृष्ठ सख्या १४५

१ हो सोलहसै अठ्ठवीस विचारो, हो भादवा सुदि द्वितीया बुधवारो।
गढ हरसोर महाभलौ जी हो तिमै भला जिणोसुर थानौ।
श्रीवत लोग वसै भलाजो, हो देव शास्त्र गुरु राखै मानौ ॥१६४॥

२. देखिये–लेखक द्वारा सम्पादित प्रद्युम्न चरित्र की प्रस्तावना, पृ० ४३

द्वारिका के वर्णन से रास प्रारम्भ होता है। वहा अ धकवृष्टि राजा थे जो सम्यक्दृष्टि श्रावक थे। कुन्ती इसी की पुत्री थी जिसका पाडुराज से विवाह हुआ था। इसका पुत्र वसुदेव था तथा उसकी पत्नी का नाम रोहिणी था जो रूप सौन्दर्य में अप्सरा के समान थी (रूपकला अपसरा समान)। इनके दो पुत्र नारायण एव वलिभद्र थे। दोनो ही शलाका पुरुषो मे थे तथा जैन धर्म के प्रति उनका विशेष अनुराग था। एक दिन नारायण के घर पर नारद ऋषि का आगमन हुआ। ऋषि का स्वागत सत्कार करने के पश्चात् नारायण ने नारद से अढाई द्वीप का समाचार कहने के लिये निवेदन किया क्योकि नारद का सभी क्षेत्रो एव स्थानो पर आवागमन रहता था। नारद ने कहा कि पूर्व और पश्चिम दोनो मे केवल ज्ञानी विचरते हैं और उसके समवसरण मे प्राणी मात्र धर्मलाभ लेते हैं। इसके पश्चात् नारद महलो मे गये जहां श्रीकृष्ण की रानी सत्यभामा रहती थी। सत्यभामा ने नारद का स्वागत नही किया और अपने ही श्रृ गार मे व्यस्त रही। इस पर नारद ने सत्यभामा को गर्व नही करने की वात कही किन्तु इस पर वह उल्टे नारद को मान कषाय त्यागने का उपदेश देने लगी। इस पर नारद क्रोधित हो गये और निम्न शब्दो मे उसकी भर्त्संना की—

हो भणै रखीसुर देवी अभागी, हो हम नै जी सीख देण तू लागी।
पाप धर्म जाणौ नहीं जी, हो मुझ नै जी मानदान सहु आपै।
सुर नर सहु सेवा करै जी, हो तीनि लोक मुझ थे सहु कंपै।

सत्यभामा ने उसका फिर कटाक्ष रूप मे उत्तर दिया जिससे नारद ऋषि और भी जल गये। उन्होंने निश्चय किया कि सत्यभामा अपने रूप लावण्य के मद मे चूर है इसलिये श्रीकृष्ण जी के इससे भी सुन्दर वधु लानी चाहिये। इसी विचार से वे चारो ओर घूमने लगे। वे विद्याधरो की नगरी मे गये और देश की विभिन्न राजधानियो मे गये। अन्त मे चल कर वे कुण्डलपुर पहु चे जहा भीषमराज राज करते थे। श्रीमती उनकी पटरानी थी। रूप कुमार पुत्र था तथा रुक्मिणी पुत्री थी। एक मुनि ने नारद ऋषि के आने के पूर्व ही रुक्मिणी का विवाह कृष्णजी के साथ होगा ऐसी भविष्यवाणी कर दी थी। जव रुक्मिणी की भुवा सुमति ने मुनि की भविष्य-वाणी के वारे मे वतलाया तो भीषम राजा ने श्रीकृष्ण जी के साथ विवाह करने का विरोध किया तथा शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह करना निश्चय किया।

नारद ऋषि भीषम राजा के महल मे गये। वहां रानियो ने नमस्कार करके उन्हे उचित आदर सत्कार दिया। रुक्मिणी ने आकर जव नारद की वन्दना की तो उसे श्रीकृष्ण जी की पटरानी वनने का आशीर्वाद दिया। नारद वही से कृष्ण जी की सभा मे गये और वहा उन्होने निम्न वात कही—

हो नारद बोलै हरी नरेसो, हो कुंडलपुर वसै असेसो ।
भीषम राजा राजई जी, हो तिहकै सुता रूपिणी जाणों ।
तासु रूप लिखि आणियो जी, हो सोभै नाराईण कै राणी ।।३६।।

भीषमराजा ने रुक्मिणी के विवाह की तैयारिया प्रारम्भ कर दी । लेकिन जब उसकी भुवा को मालूम पड़ा तो वह अत्यधिक चिन्तित हुई और पत्र के द्वारा श्रीकृष्ण जी को निमन्त्रण भेज दिया । पत्र वाहक ने पूरे समाचार मौखिक रूप से कहे कि विवाह के दिन नागपूजने के बहाने से रुक्मिणी बाग मे आवेगी तब वहा भेंट हो सकेगी । पूर्व निश्चयानुसार रुक्मिणी वहा आगयी और कहने लगी–

हो ताहि औसरि रूपणि तहा आई, हो नाग देवता की पूज रचाइ ।
हाथ जोडि विनती करै जी हो, जे छै सकल देवता साचो ।
नाराइण अब आइज्यौ जी, हो फुरिज्यो सही तुहारी बाचो ।।४२।।

रुक्मिणी हरण की नगर मे जब खबर पहुची तो युद्ध की तैयारी प्रारम्भ हो गयी—

हो कुंडलपुर मैं लावी सारो, ठाइ ठाइव पडि पुकारो ।
रूपिणि नै हरि ले गयो जी, हो राजा जी भषिम बाहर लागौ ।
साठि सहस रथ जोतिया जी, हो तीनि लाख घोडा सुर बागा ।।४५।।

रूक्मिणी सेना देख कर डर गयी और कृष्ण जी से 'अब आगे क्या होगा' कहने लगी । लेकिन श्रीकृष्ण जी ने शीघ्र ही धनुषबाण चलाना प्रारम्भ कर दिया और सर्वप्रथम रूपकुमार को धराशायी कर दिया । शिशुपाल और श्रीकृष्ण मे युद्ध होने लगा । और कृष्ण जी ने बाण से उसका भी सिर छेद दिया । उसके पश्चात् वे रूपकुमार को साथ मे लेकर रैवत पर्वत पर चले गये वहां रुक्मिणी के साथ विवाह कर लिया । द्वारिका पहुंचने पर उनका जोरदार स्वागत किया गया ।

हो हलधर किस्न द्वारिका आया, हो जित्याजी सम निसाण बजाया

एक दिन कृष्ण ने अपना एक दूत दुर्योधन के पास भेजा और कहलवाया कि रुक्मिणी और सत्यभामा दोनो मे से जिस किसी के प्रथम पुत्र होगा वह उसकी सुता उदधिमाला से विवाह करेगा । इधर सत्यभामा एव रूक्मिणी मे यह तय हुआ कि जो दोनो मे से प्रथम पुत्र पैदा करेगी वह दुर्योधन की लडकी के साथ विवाह करने के पश्चात् दूसरी का सिर मुण्डन करेगी । नौ महिने के पश्चात् दोनो को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई । लेकिन कृष्णजी के पास रूक्मिणी का दूत पहिले पहुचा और सत्यभामा का दूत पीछे । पुत्र उत्पन्न होने पर द्वारिका मे खूब उत्सव मनाये गये—

हो नग्र द्वारिका भयौ उछाहौ, घरि घरि गावै कामणी जी ।।६७।।

जन्म के ६ दिन पश्चात् धूमकेतु नामक विद्याधर प्रद्युम्न को आकाश मार्ग से उडाकर ले गया और महाभयानक वन मे एक सिला के नीचे दबा कर चला गया ।

इसी अवसर पर वहा कालसवर का विमान आया। प्रद्युम्न के ऊपर आने पर जव विमान रुक गया तो नीचे उतर कर उसने शिला के नीचे से शिशु प्रद्युम्न को उठा लिया और अपनी रानी कचनमाला को ले जाकर दे दिया। कालसवर के पहिले ही पाचसौ पुत्र थे इसलिये उसने कहा—

हो थारै जी पुत्र पांचसै सारो, हो ईहिं बालक कौ करै प्रहारो।
ते दुख जाईन मे सह्या जी, हो सुणि बोलौ संबर नर नाहो।

कालसवर प्रद्युम्न को मेघकूट दुर्ग पर ले गया जहा उसका राज्य था। वहा प्रद्युम्न की प्राप्ति पर अनेक उत्सव मनाये गये। उधर द्वारिका मे शिशु प्रद्युम्न के हरण पर शोक छा गया। रुक्मिणी रोने पीटने लगी—

रुदन करै हरि कामिणी जी, हो घूंणै सीस दुवै कर पीटे ॥७६॥
हो राजा जी भीखम तणी कुमारी, हो हिइडौ सिर कूटै अति भारी।
दीसै जी खरी डरावणी जी, हो सुणी बात किस्न कै दि वाणि।
मुख तंबोल हरि रालीयोजी, हो हाहाकार भयौ असमाने ॥७७॥

इतने ही मे नारद जी का द्वारिका आगमन हुआ। उनसे भी रुक्मिणी ने रूदनपूर्वक प्रद्युम्न के अपहरण की चर्चा की। ऋषि ने रुक्मिणी को सान्त्वना देते हुये शीघ्र ही आकाश मार्ग से विदेह क्षेत्र में जाकर सीमन्धर तीर्थंकर से प्रद्युम्न हरण के वारे-मे जानने के लिये कहा। नारद ऋषि तत्काल वहा से उसी क्षेत्र मे गये जहा सीमन्धर स्वामी का समवसरण लगा हुआ था। नारद ऋषि वन्दना करके समवसरण मे वैठ गये। वहा सीमधर स्वामी ने प्रद्युम्न के पूर्वभव, उनके अपहरण का कारण एव वर्तमान मे उसका निवास स्थान आदि के बारे मे विस्तृत जानकारी दी। नारद जी ने पुन. द्वारिका मे जाकर निम्न वाते कही—

हो रूपिणिस्यो मुनि बात पयासी, हो सोलह वरष गयां घरि आसी
रीती सरवर जलि भरै जी, हो सुका वन फूलै असमानो।
दूध खिरै तुम्ह अंचला जी, हो तो जाणी साची सहनाणी ॥१०३॥

उधर कालसंवर के यहा प्रद्युम्न दिन प्रति बढने लगा। एक बार कालसवर ने अपने पाच सौ पुत्रो को अपने शत्रु राजा सिंघ भूपति को पराजित करने के लिये भेजा लेकिन वे सफल नही हो सके। अन्त मे प्रद्युम्न उनसे आज्ञा माग कर सिंघरथ को पराजित कराने के लिये गया और शीघ्र ही उसे वाघ कर कालसवर के पास ले आया। इसके पश्चात् वह १६ गुफाओ मे गया जहा से उसे कितनी ही सिद्धिया प्राप्त हुई। घर पर जाकर जव वह कचनमाला से मिला तो वह उसके रूप को देख कर मोहित हो गयी और उससे वासना पूर्ति की वात करने लगी। अपनी तीन विद्याएं भी उसी को दे डाली। प्रद्युम्न ने कचनमाला से विद्या तो लेली लेकिन वह उसे माता एव गुराणि कह कर वहा से चल दिया।

नमस्कार करि वीनवै जी दो, ईक माता अरू भई गुराणी ।
विद्या दान दीयो घणौ जी, हो पुत्र जोगि सो काज बखाणी ।।११७,।

कचनमाला ने तत्काल पाचसौ पुत्रो को बुला कर प्रद्युम्न को मारने की सलाह दी तथा कालसवर के सामने अपना विरूप बनाकर प्रद्युम्न के द्वारा अपने शीलभंग के बारे मे कहा । इस पर कालसवर अत्यधिक क्रोधित होकर प्रद्युम्न को पकडना चाहा लेकिन प्रद्युम्न के सामने सेना नही टिक सकी तथा अपनी विद्यावल से कालसवर को वाघ लिया । इतने ही मे वहा नारद ऋषि आ गये और उन्होंने कालसंवर से वास्तविक वात वतलाकर परस्पर के मनमुटाव को शान्त किया—

हो संवरि वाण जाई नवि संधिउ, नागपासि स्यौ तंक्षण बंधिउ ।
कामदेव रिणि जीतियो जी, हो तौलग नारद मुनिवर आयो ।।१२४।।

नारद ने प्रद्युम्न से द्वारिका चलने को कहा । प्रद्युम्न ने द्वारिका जाने के पूर्व सर्व प्रथम कचनमाला से क्षमा मागी और कालसवर से आज्ञा लेकर विमान द्वारा नारद के साथ द्वारिका के लिए प्रस्थान किया ।

द्वारिका मे प्रवेश करने के पूर्व प्रद्युम्न ने दुर्योधन से उसकी लड़की उदधिमाला को छीन ली तथा माया का घोडा वना कर भानुकुमार के द्वारा घुडसवारी करने पर उसे खूब छकाया तथा पटक दिया प्रद्युम्न इस समय वृद्ध ब्राम्हण के वेश मे थे ।

हो फेर्या जी घोडा चाबुका दीया, आडा उभौ रालिया जी ।।१४२।।

प्रद्युम्न सत्यभामा के घर गया जहा भानुकुमार का विवाह था । वहा उसने वृद्ध ब्राम्हण का रूप वनाया—

विप्र रूप बूढौ भयोजी, हो छिटिक्या होठ निकस्या दंतो ।
मुंडि हाथ डगमग करै जी, हो बैठो मडप माहि हसंतो ।

प्रद्युम्न ने कहा कि ब्राम्हण को जो यदि भर पेट जिमाता है तो वह वांछित फल प्राप्त करता है । सत्यभामा ने यह सुनकर उसको वैठने को आसन दिया और थाल मे भोजन परोस दिवा । प्रद्युम्न सारा का सारा भोजन खा गया और पानी भी खूब पी गया । फिर उसने मुह मे हाथ डाल कर उल्टी कर दी जिससे सारा महल दुर्गन्ध से भर गया । इसके पश्चात् प्रद्युम्न ने ब्रम्हचारी का रूप धारण कर लिया । और अपनी माता रुक्मिणी के घर चला गया । माता से दुर्वलता एव चिन्ता के समाचार पूछने पर रुक्मिणी ने पुत्र के वियोग के कारण होने वाली दशा की वात कही । प्रद्युम्न अपने वास्तविक रूप मे प्रकट हो गया और माता के चरण छूए ।

हो नमस्कार करि चरणां लागौ, हो भीषम पुत्री को दुख भागौ।
असुरपात आनंद काजी, हो बूझै बात हरिष करि मातो।
सहु संबर का घर तणी जी, हो मयण मूल कौ कह्यो वतांतो ।।५५।।

प्रद्युम्न ने अपने शौर्य, पराक्रम एव विद्यावल को अपने पिता स्वय श्रीकृष्ण जी को भी वतलाने की एक युक्ति रची। उसने रूक्मिणी का हरण कर लिया और श्रीकृष्ण, वलराम आदि सभी को युद्ध के लिए ललकारा—

है कहिज्योजी जी तुम्ह वलिभद्र झुझारो, हो बाना घालि होई असवारो
रूपिणि नै हु ले चल्यो जी, हो पोरिष छै तौ आई छुडा जै ।।१६६।।

प्रद्युम्न ने श्रीकृष्ण के अतिरिक्त पाचो पाण्डवो को भी युद्ध के लिये ललकारा। श्रीकृष्ण अपनी समस्त सेना के साथ युद्ध भूमि मे आ डटे। प्रद्युम्न ने भी मायामयी सेना तैयार की। कवि ने युद्ध का जो वर्णन किया है वह सक्षिप्त होते हुए भी महत्वपूर्ण है—

हो असवारां मारै असवारो, हो रथ सेथी रथ जुडै झुझारो।
हस्तीस्यौ हस्ती भिडैजी, हो घणं कहौ तो होई विस्तारो ।।

श्रीकृष्ण की जव सेना नष्ट होने लगी तो उन्होंने गदा उठाली और प्रद्युम्न पर आक्रमण करने के लिए दौडे। इतने मे रूक्मिणी ने नारद से वास्तविक बात प्रकट करने के लिए कहा। जव श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न को अपने पुत्र के रूप मे पाया तो उनका दिल भर आया। युद्ध वन्द कर दिया गया। प्रद्युम्न को समारोह के साथ द्वारिका मे ले जाया गया। प्रद्युम्न का उदधिमाला से विवाह हो गया और वे आनन्द के साथ जीवन व्यतीत करने लगे।

कुछ समय पश्चात् भगवान नेमिनाथ का उधर समवसरण आया। सभी उनकी वन्दना को गये। समवसरण में जव श्रीकृष्ण जी के राज्य की अवधि पूछने पर नेमिनाथ ने वारह वर्प के पश्चात् द्वारिका दहन की वात कही। प्रद्युम्न ने ससार की आसारता को जान कर वैराग्य धारण कर लिया और घोर तपस्या करके कर्मों के वन्वन को काट कर मोक्ष पद प्राप्त किया।

कवि ने अन्त मे अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

हो मूलसघ मुनि प्रगटौ लौई, हो अनतकीर्त्ति जाणं सहु कोई।
तासु तणौ सिषि जाणिज्यौजी, हो अहि्म राइमलि कीयौ बखाण ।।१९३

मूल्यांकन

प्रद्युम्न रास शुद्ध राजस्थानी भापा की कृति है। इसमे तत्कालीन वोल-चाल के शव्दो का एव लोक शैली का सुन्दरता से प्रयोग किया गया है। प्रत्येक छद के

प्रारम्भ मे 'हो' शब्द का प्रयोग किया गया है जो सम्भवत अपने पाठको के ध्यान को एकाग्र रखने के लिये अथवा वर्ण्य विषय पर जोर देने के लिये है। दिखावरण (३) परणी (६) बोल्या (१०) चाल्यौ (१३) भास्यो (१५) आइयौ (४०) चाल्यौ (४१) जैसी क्रिया पदो का प्रयोग हियडै (१६) भूवा (२४) किस्न (२५) व्याहु (३७) हरिस्यौ (५१) जैसे शुद्ध राजस्थानी शब्दो का प्रयोग करके कवि ने राजस्थानी भाषा के प्रति अपने प्रेम को प्रदर्शित किया है।

प्रद्युम्नरास का अपना ही छद है। सारे काव्य मे एक ही रास छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक छन्द मे ६ पद है जिनमे २० से १८, १७, १७ तथा १६, १६ मात्राए हैं। कवि ने इसे कडवा छन्द लिखा हैं।

कवि ने पुराणो मे वर्णित कथा के आधार पर ही रास काव्य की रचना की है। अपनी ओर से न तो कथा मे कोई परिवर्तन किया है और न किसी नये कथानक को स्थान दिया है। हा कथा का विस्तार एव सक्षिप्तीकरण अपने काव्य के छन्दो की सीमित सख्या के अनुसार किया है। नेमिनाथ के समवसरण मे केवल द्वारिका दहन की चर्चा ही होती है उसमे जैन सिद्धांतो का प्रतिपादन जो जैन कवियो की अपनी शैली रही है कवि ने उसे इस काव्य मे स्थान नही दिया है।

सामाजिक तत्वो की दृष्टि से रास काव्य मे कोई विशेष वर्णन तो नही आया किन्तु प्रद्युम्न के विवाह के समय लग्न लिखना, चौरी मण्डप बनाना, बधावा गीत गाना, वर कन्या के तेल चढाना, ब्राम्हणो द्वारा वेद मन्त्र का पाठ कराना आदि कुछ वर्णन तात्कालीन समाज की ओर सकेत है।

रास सुखात काव्य है। प्रद्युम्न राज्य सम्पदा का सुख भोगने के पश्चात् गृह त्याग कर देते हैं और अन्त मे घोर तपस्या के पश्चात् निर्वाण प्राप्त करते है।

कवि ने इसे गढ हरसोर मे सवत् १६२८ (सन् १५७१) मे पूर्ण किया था। उस दिन भादवा शुक्ला द्वितीया बुधवार था। हरसोर मे उस समय श्रावको की अच्छी वस्ती थी। वहा भव्य जिन मन्दिर थे तथा श्रावक गण देव शास्त्र एव गुरू का सम्मान करते थे[1]।

---

१ हो सोलहसौ अट्ठवीस वीचारो, हो भादवा सुदि दुतिया बुधवारो।
गढ हरसौर महा भलौ जी, हो तिमैं भलौ जिणेसुर थानो।
श्रीवंत लोग बसैं भला जी, हो देव शास्त्र गुरु राखैं मानो ।।१६४।।

पूरे रास मे १६५ पद्य हैं जिसका कवि ने रास के अन्त मे उल्लेख किया है[2] ।

५ सुदर्शन रास

प्रस्तुत कृति ब्रह्म रायमल्ल की एक महत्वपूर्ण कृति है । इसमे अपनी सच्चरित्रता मे प्रसिद्ध सेठ सुदर्शन का जीवन वृत निबद्ध है । यह एक रास काव्य है और इसकी भी वर्णन शैली वही है जो कवि ने अन्य काव्यो मे अपनायी है । सर्व प्रथम रास काव्य चौवीस तीर्थकरो की वदना से प्रारम्भ किया गया है जो ५५ पद्यो मे समाप्त होता है ।

रास की कथा जम्वूद्वीप से प्रारम्भ होती है । भरतक्षेत्र मे अ ग देश है उसकी राजधानी चपा नगरी है । उसके राजा धाडीवाहन तथा रानी का नाम अभया था । नगर सेठ थे श्रेष्ठि वृषभदास जो पूजा पाठ एव वन्दना मे अपार विश्वास रखते थे । सेठानी जिनमती भी धार्मिक प्रवृत्ति वाली थी । एक रात्रि के पिछले पहर मे सेठानी ने स्वप्न देखा और मुनि द्वारा स्वप्न फल बतलाये जाने पर दोनो पति पत्नि अत्यधिक प्रसन्न हुए कि उन्हें शीघ्र ही सुपुत्र रत्न की प्राप्ति होगी । सेठ ने पुत्र जन्म पर खूब दान दिया, उत्सव किये एव पूजा पाठ का आयोजन किया । उन्होने पुत्र का नाम सुदर्शन रखा । बालक बडा हुआ । पढने लगा और जब वह युवा हो गया तो माता-पिता ने एक सुन्दर कन्या से उसका विवाह कर दिया । सुदर्शन के माता-पिता ने उसे गृहस्थी का समस्त भार सौंप कर जिन दीक्षा धारण करली । कुछ समय पश्चात् सेठ सुदर्शन के भी पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई ।

एक दिन सेठ सुदर्शन कपिला ब्राम्हणी के घर के नीचे होकर निकले । कपिला सुदर्शन के रूप एव सौन्दर्य को देख कर उस पर आसक्त हो गयी । उसे चाहने लगी । एक दिन कपिला ब्राम्हणी के पति को कही बाहर जाना पडा । कपिला ने अपने पेट के दर्द का बहाना लिया और दुख से विहवल होकर चिल्लाने लगी तथा मन्दिर के ऊपर जाकर ढक कर सो गयी । सेठ सुदर्शन ऊपर गये और ब्राम्हणी की बीमारी के बारे मे जानकारी चाही । जब वह अपने मित्र के साथ ऊपर गया तो ब्राह्मणी ने उसका हाथ पकड लिया और काम ज्वर का नाम लेने लगी । सेठ सुदर्शन ब्राह्मणी का चरित्र देखकर अचम्भित हो गया और अपनी स्त्री मनोरमा के अतिरिक्त सभी स्त्रियो को माता, बहिन एव पुत्री के समान मानने की बात कहने लगा । सेठ ने ब्राम्हणी को बहुत समझाया तथा शील के महत्व को सामने रखा । अन्त मे वह ब्राह्मणी के चगुल से मुक्त होकर घर पहु चा ।

---

२ हो कडवा एकसौ अधिक पंचाणू, हो रास रहस परदमन बखाणी ।

कुछ दिनो पश्चात् बसन्त ऋतु आयी। चारो ओर पुष्प महकने लगे। राजा, रानी, सेठ सुदर्शन एवं उसकी पत्नी एव पुत्र तथा कपिल ब्राह्मणी सभी वन विहार के लिये चले। जब रानी ने सेठ सुदर्शन को देखा तो वह उसकी अपूर्व सुन्दरता से प्रभावित हो गयी और उसके बारे मे जानकारी चाही। रानी के पास ही कपिला ब्राह्मणी थी। पहिले तो उसने सेठ को नपुंसक बतलाया और रानी को कहा कि यदि वह सेठ को अपने जाल मे फांस सके तब उसके चातुर्य को समझे।

रानी ने घर आकर अपनी मन की बात पडित जी से कही। लेकिन पडितजी ने रानी की बात को मानने के बजाय उसे शील महात्म्य पर खूब उपदेश दिया। लेकिन रानी ने कहा कि उसने कपिला ब्राम्हणी को वचन दे दिया है कि वह सुदर्शन को अपने वश मे कर लेगी नही तो कटारी खाकर मर जावेगी। वचन का निर्वाह करना प्राचीन परम्परा रही है। अन्त मे अनेक उपाय सोचे गये। अष्टान्हिका मे सेठ सुदर्शन श्मशान मे जाकर ध्यान लगाता था। यह बात जब रानी की दासी को मालुम हुआ तो उसने महल के रक्षको को भुलावे मे डालने के लिये मानवाकृति के आटे के पुतले को प्रतिदिन लाने ले जाने लगी। और अन्त मे आठवें दिन स्वय ध्यानस्थ सेठ को रानी के महल मे लाकर पलंग पर डाल दिया।

अहो सेठि सुदर्शन रह्यो धरि ध्यान, मनु कियो वज्र का थंभ समान।
आयोजी आप समीधियो, अहो मन वचन कायाजी लियो सन्यांस।
मो उपसर्ग थे वरौ, अहो हाथि भोजन करौ वन मैं जी वास।।१२२।।

रानी ने सेठ के साथ सभोग करने की कितनी ही चालें चली। विविध हाव भाव बतलाये। लेकिन वह सेठ को वश मे नही कर सकी। अन्त मे निराश होकर सेठ को बाहर निकाल दिया और स्वय कपडे फाड कर अपने आप खरोच कर चिल्लाने लगी—

अहो रच्यो जी प्रपंच सह फाडौजी चीर, काचुयौ तोडि विलूरि सरीर।
बंधु वाहर करै पापणी, अहो सेठि पापी मुझ तोडियो अंग।
राति उपसर्ग किया घणा, अहो राउ स्युं कही जिम करै सिर भंग।

नगर में रानी की बात आधी के समान फैल गयी। चारो ओर हाहाकार होने लगा तथा किसी ने भी सेठ सुदर्शन के चरित्र पर शंका प्रकट नही की।

अहो श्रावक क्रिया जी पालै हो सार, दान पूजा करै पर उपकार
नग्र नर नारि नै सीख दे अहो, पंडित जाणौ जी जैन पुराण।
कर्म कुकर्म सो किम करै, अहो सील न छोड़े हो जाहि पराण।

राजा ने जब रानी की बात सुनी तो उसके क्रोध का पार नही रहा और

उसने तत्काल सेठ को सूली लगाने का आदेश दिया। सेठाणी हाहाकार विलाप करती हुई सेठ के पास पहुंची तो उसने पूर्व जन्म के किये हुये पापो का फल बतला कर उसे सान्त्वना देना चाहा। सेठ को शूली पर चढाने के लिये ले जाया गया और ज्योही उसे शूली पर चढाया वह शूली सिंहासन बन गयी। यह देख कर सेवक वहा से भागे और जाकर राजा से निवेदन किया। राजा ने उस पर विश्वास नही किया और तत्काल सेना लेकर वहा पहुंचा। देवताओ ने राजा को मार भगाया। राजा नंगे पांव सेठ के पास गया और विनयपूर्वक अपने अपराध के लिये क्षमा मागने लगा। अन्त मे सेठ ने देवताओ से राजा को क्यों मारते हो ऐसा कहा। देवो ने सेठ के चरित्र की बहुत प्रशंसा की और उसका खूब सम्मान करके स्वर्ग लोक चले गये।

रानी ने जब सब वृतान्त सुना तो उसने आत्मघात कर लिया तथा पडिता पाडलीपुर चली गयी और वहा वैश्या के पास रहने लगी। सेठ सुदर्शन घर आकर सुख से रहने लगा तथा अपना जीवन धर्म कार्यमे व्यतीत करने लगा। एक दिन वहा मुनिराज आये तथा जब सेठ ने शूली वाली घटना की बात जाननी चाही तो मुनिराज ने विस्तार पूर्वक पूर्व भव की बातो का वर्णन किया। अन्त मे सेठ ने मुनि दीक्षा ली और अनेक उपसर्गों को सहने के पश्चात् कैवल्य प्राप्त करके अन्त मे निर्वाण प्राप्त किया।

इस प्रकार २०१ पद्यो मे निर्मित सुदर्शन रास कवि की कथा प्रधान रचना है इसमे कथा का बाहुल्य है। सभी पद्य एक ही छन्द मे लिखे हुये हैं तथा उनमे कोई नवीनता नही है। कवि ने अपना परिचय देते हुये अपने आपको मूलसघ के मुनि अनन्तकीर्ति का शिष्य लिखा है[1]।

रास का रचना काल सवत् १६२९ वैशाख शुक्ला सप्तमी है। उस समय अकबर का शासन था जो सभी छह दर्शनो का सम्मान करता था[2]। रचना स्थान धौलहर नगर लिखा है जो सम्भवत धौलपुर का नाम हो। धौलपुर स्वर्ग के समान था वहां सभी ३६ जातियां थी जो प्रतिदिन जिन पूजा करती थी।

---

१ अहो श्री मूलसंघ मुनि प्रगटो जी लोइ, अनंतकीर्ति जाणो सहु कोई
तास तणो सिषि जाणज्यो, अहो राइमल्ल ब्रह्म मनि भयो उछाह।
बुद्धि करि हीण जाणै नहीं, अहो वणयो रास सुदर्शन साह ॥१९८॥

२ अहो सोलहसै गुणतीसै वैसाखि, सातै जी राति उजालै जो पाखि।
साहि अकबर राजिया, अहो भोगवै राज अति इन्द्र समान।
चोर लवांड राखै नहीं, अहो छह दर्शण को राखै जी मान ॥१९९॥

३ अहो घोलहर नग्रं बन देहुरा थान, देवपुर सोभै जी सर्ग समान।
पौणि छत्तीस लीला करै, अहो करै पूजा नित जयै अरहंत ॥२००॥

६ श्रीपाल रास

जैन धर्म मे श्रीपाल एव मैनासुन्दरी का जीवन अत्यधिक लोकप्रिय है। सिद्ध चक्र की पूजा के महात्म्य को जन जीवन तक पहुचाने का पूरा श्रेय मैना सुन्दरी को है जिसने इस सिद्धचक्र व्रत एव पूजा के महात्म्य से कुष्ट रोग से पीडित अपने पति श्रीपाल एव उसके ७०० साथियो का कुष्टरोग दूर कर दिया था। इसलिये जैनाचार्यों एव जैन विद्वानो ने इन दोनो के जीवन को लेकर विविध काव्य लिखे हैं। प्राकृत, सस्कृत, अपभ्र श, राजस्थानी एव हिन्दी मे चरित, रास, चौपई, वेलि सज्ञक रचनाए निबद्ध की गयी और उनके माध्यम से श्रीपाल एव मैनासुन्दरी का जीवन आकर्षण का केन्द्र बन गया।

रचना काल

प्रस्तुत रास कविवर ब्रह्म रायमल्ल की काव्य रचना है जिसमे उन्होंने २९८ पद्यो मे श्रीपाल एव मैनासुन्दरी के जीवन का विषद वर्णन किया है। यह रास कवि के काव्य जीवन की परिपक्व अवस्था का काव्य है जिसे उन्होंने सवत् १६३० अषाढ सुदी १३ शनिवार को राजस्थान के प्रसिद्ध गढ रणथम्भौर मे समाप्त किया था। अष्टान्हिका पर्व मे विमोचित यह रास काव्य श्रीपाल एव मैनासुन्दरी को समर्पित काव्य है। रणथम्भौर उस समय धन जन सम्पन्न दुर्ग था। बादशाह अकबर का उस पर शासन था। दुर्ग मे चारो ओर छोटे-छोटे सरोवर, बाग एव बगीचे थे। सरोवर जल से अप्लावित थे तथा उद्यान वृक्ष और लताओ से आच्छादित थे। दुर्ग मे जैन धर्मावलम्बियो की अच्छी सख्या थी। वे सभी धन सम्पत्ति से भरपूर थे। सभी श्रावक चार प्रकार के दान-आहारदान, औषधिदान, ज्ञानदान एवं अभयदान के देने वाले थे। यही नही वे प्रतिदिन व्रत, उपवास, प्रोषध एव सामायिक करते थे। ब्रह्म रायमल्ल को भी ऐसे ही दुर्ग मे श्रावको के मध्य कुछ समय के लिये रहना पड़ा और उन्होंने श्रावको के आग्रह से वही पर श्रीपाल रास की रचना की।

---

१. हो सोलहसै तीसो सुभवर्ष, हो मास आषाढ भण्यो करि हर्ष।
तिथि तेरसि सित सोभनी, हो अनुराधा नक्षत्र सुभ सार।
कर्ण जोग दीसै भला, हो सोभन वार शनिश्चरवार ॥२९५॥

रास भणौं सरिपाल को।

हो रणथभ्रमर सौभै कवि लास, भरीया नीर ताल चहु पास।
वाग विहरि वाडी घणी, हो धन कण सम्पत्ति तणो निधान
साहि अकवर राज हो। सौभै घणा जिणेसुर थान ॥२९६॥

कवि ने काव्य के अन्त मे २९६ छन्दो का उल्लेख किया है जबकि रास मे २९८ छन्द हैं। सम्भवत कवि ने अन्तिम दो छन्दो को रास काव्य की छन्द सख्या मे नही लिया है।

हो द्वै से अधिका छिनवै छंद, कवियण भण्यौं तासु मतिमंद।

काव्य के अन्त मे कवि ने अपनी काव्य निर्माण के प्रति अनभिज्ञता प्रकट करते हुये विद्वानो से श्रीपाल रास को पढ कर हसी नही उडाने की प्रार्थना की है।

पद अक्षर की सुधि नहीं, हो जैसी मति दीनो आकास।
पंडित कोई मति हंसो, तैसो मति कीनो परकास ।।२९८।।
रास भणौ श्रीपाल को।

कथा भाग

श्रीपालरास चौबीस तीर्थकरो की स्तुति से प्रारम्भ होता है। उज्जैयिनी नगरी के राजा पहुपपाल के दो पुत्रिया थी। बडी सुरसुन्दरी एव छोटी मैनासुन्दरी थी। राजा ने सुरसुन्दरी को सोमशर्मा की चटशाला मे पढने को भेजा। वहा उसने तर्कशास्त्र, पुराण, व्याकरण आदि ग्रन्थ पढे। छोटी लडकी यमघर नामक मुनि के पास पढने लगी। जिससे मैनासुन्दरी ने भेद विज्ञान का मर्म जाना। पुत्रियो के वयस्क होने पर राजा ने सुरसुन्दरी से अपनी इच्छानुसार राजा का नाम बतलाने को कहा जिससे उसके साथ उसका विवाह किया जा सके। सुरसुन्दरी ने नागछत्रपुर के राजा का नाम लिया और पहुपपाल ने सुरसुन्दरी का तत्काल उससे विवाह कर दिया। दहेज मे राजा ने हाथी, घोडे, वस्त्र, आभूषण, दासी दास आदि बहुत से दिये।

अस्व हस्ती बहुडाइजो, हो वस्त्र पटम्बर बहु आभर्ण।
दासी दास दिया घणा, हो मणि माणिक जड्या सोवर्ण ।।१६।।

एक दिन मैनासुन्दरी जब प्रात पूजा से निवृत्त होकर पिता के पास आयी तो राजा ने उससे भी अपनी इच्छित वर का नाम बताने को कहा। मैना सुन्दरी प्रारम्भ से ही धार्मिक विचारो की थी इसलिये उसने उत्तर दिया कि जैसा भाग्य मे लिखा होगा वही पति मिलेगा।

हो श्रावक लोग वसै धनवत, पूजा करै जपै अरहन्त।
दान चारि शुभ सकतिस्यौ, हो श्रावक व्रत पाले मनलाइ।
पोसा सामाइक सदा, हो मत मिथ्यात न लगता जाइ ।।२९७।।

माता पिता कन्या का जिसके साथ विवाह कर देते हैं, लड़की उसी को अपना पति मान लेती है तथा देह और छाया के समान अभिन्न होकर रहने लगती है।

कुल कन्या तहि नै वरै, करै स्नेह जिस देह रू छांह ॥२०॥

राजा पाहुपाल को अपनी लडकी की यह वात अच्छी नही लगी उस समय तो उसने कुछ नही कहा लेकिन एक दिन जव वह वन क्रीडा को गया तो उसे वहा एक कोढी राजकुमार मिला जिसके साथ मे ७०० कोढी और थे। कवि ने कोढ़ियो का जो वर्णन किया है वह निम्न प्रकार है—

हो वहरी व्यौंची कोढ कुजाति, खसरो कंडू ते वहु भांति।
सीइल पथरी वोदरी, हो वडौ बाउ जहि बैसे नाक।
कोढ मसूरिउ जाणि जे, हो वैठे गलै जिम काक ॥रास॥२५॥
हो कोढ उदंवर सेत सरीर, दाद कोढ अति दुःख गहीर।
खुसन्चौ वाल रहे नही हो, चांदी कोढ उपजै साल।
गलत कौढ अगुलि चुवै, हो निकलै हाड उपडै खाल।

राजा ने उसी के साथ मैना सुन्दरी का विवाह कर दिया। कवि ने विवाह विधि का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

हो लगन महूरत वेगि लिखाई वेदी मंडप सोभा लाइ।
वस्त्र पटबर ताणियां, हो वर कन्या ने तेल चहोडि।
सोल सिंगार जु साजिया, हो बैठा वेदी अंचल जोडि ॥3४॥
हो वांभण भणै वेद भणकार, कामिणी गावै गीत सुचार।
भाट भणै बिउदावली, हो वर कन्या देखे नृप रूप ॥

मैना सुन्दरी ने विना कुछ विरोध किये कोढी श्रीपाल को अपना पति स्वीकार कर लिया और उसी के साथ वन मे रहने को चल दी। राजा ने श्रीपाल को दहेज मे वहुत धन सम्पत्ति दासी दास के साथ रहने के लिये वन मे भवन भी दिया। मैना सुन्दरी श्रीपाल के साथ रहने लगी। वह प्रतिदिन भगवान जिनेन्द्र की पूजा करती। एक दिन सयोग से उसी वन मे एक निर्ग्रन्थ साधु आये। मैनासुन्दरी एव श्रीपाल ने उनकी खूब सेवा सुश्रूषा की। मुनि ने श्रावक धर्म का वर्णन किया और जीवन मे उसे उतारने पर जोर दिया। अन्त मे मैनासुन्दरी ने श्रीपाल की कोढ मुक्ति के वारे मे पूछा। इस पर मुनिश्री ने अष्टान्हिका मे आठ दिन व्रत करने एव भगवान की पूजा करने को कहा—

हो मुनिवर बोले सुणौं कुमारि, सिद्धचक्र गरउौ संसारि ।
सिद्धचक्र व्रत तुम्ह करौ, हो आठ दिवस पूजौ मन लाइ ।
आठ द्रव्य ले निर्मला, हो कोढि कलेस व्याधि सहु जाइ ।। ४६ ।।

सिद्धचक्र व्रत के महात्म्य से श्रीपाल एव उनके साथियो का कोढ रोग दूर हो गया और उसके शरीर की लावण्यता चारो ओर चमकने लगी। श्रीपाल ने निम्न व्रत अगीकार किये—

हो सिद्धचक्र पूजा करि सार, द्वारा पेषण दान अहार ।
पछै आप भोजन करै, हो पर कामिनी देखै निज मात ।
सत्य वचन बोले सदा, हो तरस जीउ को करै न घात ।।६०।।
हो द्रव्य परायो लेइ न जाण, परिग्रह तणो करे परमाण ।
करे अणुव्रत भावना हो, गुणव्रत तीन्यौ पालै सार ।

कोढ दूर होने पर पहिले श्रीपाल की माता उधर आ गयी । इसके पश्चात् एक दिन मैंनासुन्दरी के पिता ने जव श्रीपाल के अतिशय सुन्दर शरीर युक्त देखा तो उसने भी कर्म के प्रभाव को स्वीकार किया। श्रीपाल का उसने वहुत सत्कार किया और अपना आधा राज्य भी देने के लिए प्रस्ताव किया लेकिन श्रीपाल ने उसे स्वीकार नही किया। वे दोनो वही रहने लगे । श्रीपाल को श्वसुर के घर रहना उचित नही लगा तो वह इसी चिंता मे चिन्तित रहने लगा। अन्त मे वह मैंनासुन्दरी से १२ वर्ष की आज्ञा लेकर रत्नदीप जाने का निश्चय किया। श्रीपाल के साथ मैना ने जाने की इच्छा प्रगट की तो उसने सीता का उदाहरण दिया जिसके कारण राम को अत्यधिक कष्ट उठाने पडे थे—

फल लागा जे राम नै हो साथि सिया नै लीयां फिरै ।

श्रीपाल अपनी मा के चरण छू कर विदेश यात्रा के लिये प्रस्थान किया। अनेक ग्राम, नगर वन एव नदियो को पार करने के पश्चात् वह अगुकच्छ तट पर पहुचा। उधर समुद्र तट पर धवल सेठ पाच सौ व्यापारियो के साथ रत्नद्वीप जाने की तैय्यारी मे था लेकिन उसके जहाज चल ही नही रहे थे। जव किसी निमित्त ज्ञानी मुनि से जहाज न चलने का कारण पूछा तो वतलाया गया कि जव तक वत्तीस लक्षणो से युक्त कोई युवक जहाज मे नही वैठेगा तव तक जहाज नही चलेगा। सेठ ने अपने आदमियो को चारो ओर दौडाया। मार्ग मे इन्हे श्रीपाल मिल गया। धवल सेठ श्रीपाल को देख कर अतीव प्रसन्न हुआ और उसका खूव आदर सत्कार किया। श्रीपाल को लेकर धवल सेठ का जहाजी वेडा रवाना हुआ । जव वे आधी दूर ही पहुचे थे कि वीच मे उन्हे समुद्री चोर मिल गये और धवल सेठ को वन्दी वना कर

जहाजो मे भरे हुए सामान को लूट लिया। श्रीपाल से जव सवने मिल कर प्रार्थना की तो उसने धनुष-वाण लेकर लुटेरो का सामना किया और उन पर विजय प्राप्त की। श्रीपाल की वीरता से धवल सेठ एवं उसके साथी अत्यधिक प्रभावित हुये और सेठ ने उसे अपना धर्मपुत्र वना लिया।

दोहडा – कोटपाल वणिवर कह्यो, नाइ मु..........नर।
ए ता मित्र जुतौ करौ, जै होइ सर्व संघार ।। ९६ ।।

श्रीपाल का जहाजी वेडा रत्नद्वीप पर आ पहुंचा। सव प्रथम वह वहां के जिनमन्दिर के दर्शनार्थ गया। वहां सहस्त्रकूट चैत्यालय था। चन्द्रमणिकान्त की जहा प्रतिमाएं थी। स्वर्ण के स्तम्भ थे। वेदी मे पाच वर्ण की मणियां जडी हुई थी।

हो सहसकूट सोभा वहु भांति, वंन्यो पीठ चंद्रमणि कांति।
कनक थंभ चहुंदिसि वण्या, हो पंच वर्ण मणि वेदी जडिउ।
सिला सिंघासन सोभिती हो जाणि विधाता आपण घडिउ ।।

उस सहस्त्रकूट चैत्यालय के वज्र के कपाट थे लेकिन श्रीपाल के हाथ लगते ही वे खुल गये। श्रीपाल ने बड़ी भक्ति भाव से जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये। अष्ट द्रव्य से पूजा की और अपने आपको दर्शन करके धन्य समझा।

भाव भगति जिण दिया हो करि स्नान पहरे सुभ चीर।
जिण चरण पूजा करि हो झारी हाथ लइ भरि नीर ।।१०२।।
हो जल चंदन अक्षत शुभ माल नेवज दीप धूप भरि थाल।
नालिकेर फल वहु लिया हो पुहपांजलि रचि जोड्या हाथ।
जिणवर गुण भास्या घणा हो जै जै स्वामी त्रिभुवन नाथ।

रत्नदीप के विद्याधर राजा के पास मन्दिर के कपाट खुलने के सचाचार पहुचे तो वह तत्काल वहा आया और श्रीपाल को अपना परिचय देकर अपनी सर्वगुणसम्पन्न कन्या रत्नमजूषा से विवाह करने की प्रार्थना की। विद्याधर ने किसी अवधिज्ञानी मुनि द्वारा वज्र के कपाट खुलने वाले के साथ अपनी पुत्री के विवाह की भविष्यवाणी की वात सुनी थी। उसने अपनी पुत्री को 'गुणलावण्य पुण्य की खानि' कहा। तत्काल विवाह मडप तैयार किया गया और सात फेरो के पश्चात् वह श्रीपाल की धर्मपत्नी हो गयी। साथ मे उसे अपार दहेज भी प्राप्त हुआ।

दे विद्याधर डाइजो हस्ती, घोड़ा कनक अपार ।।११०।।

श्रीपाल अपनी नवपत्नी के साथ अपने वेडे पर गया। घवल सेठ और उनके सभी साथियो ने ऐसी सुन्दर वधु प्राप्त करने पर उसे बधाई दी। श्रीपाल ने अपने साथियो को बडा भोज दिया।

हो निड्हर मध्य भयो जैकार, सीरीपाल दीनी ज्यौंणार।
तथा जुगति संतोषीया, हो कनक वस्त्र दीना बहु दान।
हाथ जोडि विनती करी, हो घवल सेट्ठि नै दीनौ मान ।।११३।।

एक दिन रत्नमजूषा ने श्रीपाल से पूरा परिचय जानना चाहा। श्रीपाल ने सक्षिप्त रूप से अपना परिचय दिया और विदेश यात्रा पर आने का निम्न कारण बताया

हो हमस्यौ कहै बाल गोपाल, राज जवाइं इहु सीरीपाल।
नाम पिता कौ कोन लेहो, मेरा मन में उपज्यो सोग।
कामरिण सेवक छाडिया हो, मृगकछ पटरिण संजोग ।।११८।।

रत्नदीप से अनेक वस्तुओ को साथ लेकर धवल सेठ ने वहां से अपने देश को प्रस्थान किया। साथ मे उसके ५०० जहाजो का वेडा था। श्रीपाल एव रत्नमजूषा भी साथ थे। घवल सेठ रत्नमजूषा का रूप लावण्य देख कर आपे मे नही रह सका। वह दिन प्रतिदिन उसके साथ सहवास की इच्छा करने लगा। श्रीपाल एव रत्नमजूषा-के हास परिहास को देखकर वह बेहाल हो जाता और उसको प्राप्त करने का उपाय सोचता रहता।

हो रैंण मंजूषा सेवै कंत, घवल सेट्ठि अति पीसै दंत।
नींद भूख तिरषा गइ, हो मंत्री जोग्य कही सहु बात
सुंदरि स्यौ मेलौ करो हो, कै हो मरौं करौं अपघात ।।१२२।।

उसके मन्त्री ने सेठ को वहुत समझाया। कीचक एव रावण के उदाहरण दिये। लोक मे निन्दा होने की वात कही तथा श्रीपाल को धर्मपुत्र होने की वात वतलायी। लेकिन सेठ के मन पर कोई असर नही हुआ। अन्त मे सेठ ने एक दाव फैंका और उसे एक लाख टका इनाम देने की वात कही—

हाथ जोड़ विनती करै हो लाख टका पहली ल्यौ रोक।
सुंदरि हम मेलो करो, हो जाय हमारा मन को सोक ।।१२७।।

लाख टके की बात सुन कर मन्त्री को लोभ आ गया और वह श्रीपाल के वध की चाल सोचने लगा। उसने जहाज के चालक (धीमर) से मिल कर एक षडयन्त्र रचा जिसके फलस्वरूप जहाज के धीमर (मल्लाह) चोर-चोर चिल्लाने लगे।

श्रीपाल यह सुन कर जहाज के ऊपर चढ़ कर चारो ओर देखने लगा। धोखे से उस धीमर ने रस्सी काट दी जिससे श्रीपाल समुद्र मे गिर गया। चारो ओर दुख छा गया। रैंणामजूषा विलाप करने लगी। उसने अपने सभी आभूषण छोड दिये तथा दिन रात आसू वहाने लगी।

> ....हो रैंण मंजूसा करे पुकार, सिर कूटै हीयो हसे
> हो कहगो कोडी भट भरतार ।।१३०।।

कामान्ध धवलसेठ ने अपनी एक दूती को रत्नमजूषा के पास भेज कर उसे फुसलाना चाहा। दूती ने सेठ के वैभव की बात कही तथा मनुष्य जन्म की सार्थकता "खाजे पीजे विलसीजे हो, अवर जनम की कही न जाइ" इन शब्दो मे वतलायी। रत्नमजूषा के शरीर मे उस पतिता की वात सुन पसीना आ गया और उसकी निम्न शब्दो मे भर्त्सना करके उसे अपने यहा से निकाल दिया—

> हो सुणी सुंदरी कूटणि वात, हो उपनो दुख पसीनो गात।
> कोय करिवि सा वीनवौ हो नरक थे वेगि जाहि अव रांड
> पाप वचन तै भासिया हो इसा वोल थे होसी भांड ।।१३४।।

इसके पश्चात् वह कामान्ध सेठ स्वय उसके पास चला गया और कहने लगा—

> हाथ जोडि वीनती करै, हो हम उपरि करि दया पसाउ
> काम अग्नि तनु वालीयो हो राख्यै वोल हमारो भाउ ।।१३५।।

रत्नमजूषा ने सेठ को अनेको युक्तियो से पतिव्रत धर्म के वारे मे कहा तथा दुश्चरित्र होने पर इस जन्म मे ही नही दूसरे जन्म मे भी जो नरक यातनाए भोगनी पडती है उसके सम्वन्ध मे कितने ही उदाहरण प्रस्तुत किये। लेकिन धवल सेठ के एक भी वात समझ मे नही आयी। उसने रत्नमंजूषा का हाथ पकड़ लिया। इतने मे ही एक दैवी घटना घटी और रत्नमजूषा के शील की रक्षार्थ जिनशासनदेव, ज्वाला मालिनी देवी, वायु कुमार और चक्रेश्वरी देवी वहां प्रगट होकर धवल सेठ की वुरी तरह दुर्गति की।

> हो ज्वाला मालणी देवी आइ, दीनी मोहणि अग्नि लगाइ
> रोहिणी औंधौ टंकियो हो विष्टा मुख मे दीनी द्वेलि।
> लात घमूका अति हणै, हो सांकल तौष गला मे मेलि ।।१४१।।

हो वातकुमार जब तब आइ, दीनौ अधिकौ पवन चलाइ।
जल कोलोल बहु उछलै हो, चक्केसुरि अति कीनौ कोप।
प्रोहण फेरै चक्र ज्यों हो, अंधकार करियो आटोप ॥१४२॥

हो अंवा ताते छडके तेलि, मूत नासिका दीनो ठेलि।
छेदन भेदन दुःख सहै हो मणिभद्र आयो तहि ठाउ।
मार मार मुखि उच्चैर हो, धवल सेठ मुखि लुहेडलाइ ॥१४३॥

धवल सेठ चारो ओर विपत्ति को देखकर तथा असहाय वेदना झेल कर रत्नमजूषा के चरणो मे गिर पडा और उससे क्षमा मागने लगा और अपने किये पर पश्चाताप करने लगा। रत्नमजूषा को उस पर दया आ गयी और चक्रेश्वरी आदि देवियो से उसे छोड देने की प्रार्थना की।

उधर श्रीपाल ने समुद्र मे गिरने के पश्चात् णमोकार मत्र का स्मरण किया। कवि ने णमोकार मन्त्र की प्रभावना का भी वर्णन किया है। अनायास ही एक लकडी का वडा टुकड़ा उसके हाथ आ गया। श्रीपाल उस पर वैठ गया और समुद्र के किनारे जा लगा। किनारे पर ही उस द्वीप के राजा के दो सेवक श्रीपाल की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। उस द्वीप का नाम था 'दलवणपटण' तथा शासक का नाम धनपाल था। गुणमाला उसकी पुत्री थी। राजा ने जव एक वार मुनि से उसके विवाह की चर्चा की तो मुनि ने भविष्यवाणी की थी कि श्रीपाल इस समुद्र को तैर कर आवेगा और वही गुणमाला का पति होगा। सेवको ने जाकर तत्काल राजा से निवेदन किया। धनपाल चिर अभिलाषित कुमार को पाकर अत्यधिक हर्षित हुआ और किनारे पर आकर श्रीपाल से भेंट की। श्रीपाल के स्वागत मे वाजा वजने लगे तथा चारण विरुदावालो गाने लगे।

हो भयो हरख राजा धनपाल, गयौ सामुहौ जहा सिरीपाल।
नग्रउ छाडिउ जुगतिस्यौ, हो भेरी नफेरो नाद निसाण।
साहण सेना साखती हो चारण बोलै विउड वखाण ॥ १६२ ॥

धनपाल ने श्रीपाल को कठ लगाया। कुशल क्षेम पूछी तथा उसे हाथी पर विठला कर 'दलपटण' नगर मे प्रवेश किया। तत्काल विवाह मडप रचा गया और उसमे श्रीपाल और गुणमाला का विवाह सपन्न हुआ। दहेज मे हाथी सोना तथा कितने ही गाव दिये —

हो भांवरि सात फिरिउ चहं याषि, भयो विवाह अग्नि दे साखि।
राजा दीनो डाइजौ हो कन्या हस्ति कनक के काण।
देस ग्राम दीना घणा, हो विनती करि दीनौ बहुमान।

श्रीपाल और गुणमाला सुख से वही रहने लगे। इतने मे ही धवल सेठ का जहाज भी सयोग से उसी द्वीप मे आ गया। राजा ने सेठ का वहुत आदर सत्कार किया तथा उसे राज्य सभा मे आमन्त्रित करके उचित सम्मान किया। सेठ ने श्रीपाल को भी वही देखा। गुप्तरूप से श्रीपाल के वारे मे जानकर सेठ उससे डर गया। और एक वार फिर उसे राजद्वार से निकालने की युक्ति सोची। वह एक डूम को वुला कर राज्य सभा मे श्रीपाल को अपना सम्वन्धी वतलाने को कहा। डूम और डूमनी सपरिवार राज्य सभा मे आकर विविध खेल दिखाने लगे और श्रीपाल को भी अपने ही परिवार का सिद्ध करने मे सफल हो गये।

डूमा पाखंड मांडियो हो रह्या सुभट नै कंठि लगाइ ।। १७८ ।।
हो एक डूमडी उट्ठी रोई, मेरौ सगौ भतीजो होइ।
एक डूमडी वीनवै हो इहु मेरी पुत्री भरतार।
वहुत दिवस थे पाइयो हो कामि तजि किम गयो गवार।
पालि पोसि मोटा किया हो करी लडाइ भोजन जोग।
समूद्र माझ लहुडउ पडिउ, हो लाधौ आवै कर्म के जोग ।। १८० ।।

राजा धनपाल ने श्रीपाल को डूम का पुत्र मान कर उसे तत्काल सूली लगाने का आदेश दिया। श्रीपाल ने फिर अपने ऊपर आयी हुई विपत्ति देख कर शांत भाव से उसे सहने का निश्चय किया। उसे वुरे हाल मे सूली पर ले जाया गया। रोती पीटती गुणमाला भी वही आ पहुची और श्रीपाल से वास्तविक बात जाननी चही। श्रीपाल ने धवल सेठ के जहाज मे बैठी हुई अपनी पत्नी रत्नमजूषा से उसके वारे मे पता लगाने को कहा। गुणमाला दौड़ती हुई उसके पास गई और श्रीपाल का जीवन वृतात जान कर रत्नमजूषा को साथ लेकर राजा के पास आयी। रत्नमजूषा ने श्रीपाल के वारे मे राजा से पूरा वृतात कहा और उसके साहसिक कार्यों की पूरी जानकारी दी। तत्काल राजा ने जाकर श्रीपाल से क्षमा मागी और फिर ससम्मान उसे नगर मे घुमा कर राज्य दरवार मे लाया गया। धवल सेठ को जाल रचने के अपराध मे तत्काल वन्धन मे डाल दिया और वहुत वुरा हाल किया।

हो राजा किंकर पठाया घणा, औणो बंधि धवल सेठ तंक्षणा
वधि सेठि ले आइया हो मारत दाउ न सेका करै।
मत दियो वहु नासिका हो औधों मुख पग ऊंचा करै ।।१६६।।

लेकिन पुन. श्रीपाल ने सेठ को अपना धर्म पिता वतला कर उसे छुडा दिया। वह अपने सायियो से जाकर मिला। उसका अत्यधिक सम्मान किया गया। इन्हे सामूहिक भोजन कराया और पूरी तरह मे उनका आतिथ्य किया। श्रीपाल के अत्यधिक

विनय को लेकर धवल सेठ अपने जीवन को धिक्कारने लगा और इसी बीच वहीं उसकी मृत्यु हो गयी। यहा कवि ने फिर दृष्टान्तों द्वारा चरित्र हीनता को नरक बंध, अपयश एव नीच गति का प्रमुख कारण वतलाया है।

श्रीपाल अपनी दोनों पत्नियो के साथ सुख पूर्वक रहने लगा। दिनों को जाते देर नही लगती। कुछ समय पश्चात् वहां कुंकण देश से एक दूत आया और श्रीपाल को वहां के राजा की आठ कन्याओ के प्रश्नो का समाधान करने के पश्चात् विवाह करने के लिये निवेदन किया। श्रीपाल ने दूत की बात स्वीकार करली और तत्काल कुंकण देश के लिये रवाना हो गया। वहा जाने पर श्रीपाल का खूब स्वागत किया गया और आठ कन्याओ से उसकी भेंट करायी गयी। श्रीपाल से उनकी समस्याओ का समाधान करने के लिये निवेदन किया जिसे श्रीपाल ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। पहिले सबसे वडी राज कुमारी ने इस प्रकार समस्या रखी—

सुभग गौरि बोली बड़ी, हो कोडीभड सुणि मेरो बुधि।
तीनि पदा आगै कहो, हो साहस जहां तहां हो सिद्धि।

श्रीपाल ने इसका निम्न प्रकार समाधान किया—

हो सुण्या वचन बोलै वरवीर, सुणहु कुमारि चित्त करि धीर।
सत्त सरीर हस्यौं रहै हो उदै कर्म तैसो ही बुधि।
उदिम तउ न छोडि जे, हो साहस जहां तहां ही सिद्धि।

सोमा देवी ने अपनी समस्या इस प्रकार रखी—

हो सोमा देवी कहै विचार कोण धर्म जगि तारणहार।
सुणि कोडी भड बोलिया हो ग्यारह प्रतिमा श्रावक सार।
तेरह विधि व्रत मुनि तणा, हो कुंण धर्म्म जगि तारण हार।

एक राजकुमारी से पद का प्रश्न एव श्रीपाल का उत्तर निम्न प्रकार था—

हो संपव बोली वचन सुमीट्ठ, सो न तैंजे विरला दिट्ठ।
सिरीपाल उतर दियो, हो दीप अढाइ मध्य पइट्ठ।
बुरी पराइ ना कहै हो सो नर तीजै विरला दीट्ठ।

इस प्रकार श्रीपाल ने आठो राज कन्याओ के प्रश्नो का समाधान कर दिया। और फिर अत्यधिक हर्ष और उल्लास के मध्य आठो राजकन्याओ से उसका विवाह हो गया। श्रीपाल विविध सुख साधनो के मध्य रहने लगे। दिनो को जाते देर नही लगती और इस प्रकार वारह वर्ष व्यतीत होने को आने लगे। उसे वहा मैंनासुन्दरी

का ध्यान आया। और वह तत्काल अपनी आठ हजार राणियों तथा आठ हजार सेना घोड़े, हाथी रथ आदि के साथ वह उज्जयिनी पहुचा।

उधर मैनासुन्दरी अपने प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही थी। उसनें एक एक दिन गिन कर बारह वर्ष व्यतीत किये थे। और जब श्रीपाल को अवधि समाप्त होने पर भी आता हुआ नही देखा तो उसने अपनी सास से सब सकल्प विकल्प छोड़ कर प्रातः आर्यिका दीक्षा लेने की बात कही। सास ने दस दिन तक और प्रतीक्षा करने के लिपे कहा। दस दिन समाप्त होने के पूर्व ही एक दिन अकमात् श्रीपाल वहा पहुच गया। सबसे पहिले उसने माता के चरण छुए और फिर मैनासुन्दरी ने श्रीपाल की वन्दना की। बारह वर्षों की घटनाओ की जानकारी श्रीपाल ने अपनी माता एव पत्नी को दी। तत्काल वह माता और मैना को अपने सैन्यदल मे ले गया और बारह वर्ष मे जिन जिन वस्तुओ की उपलब्धि हुई थी उन्हे दिखायी।

श्रीपाल ने अपना एक दूत उज्जयिनी के राजा के पास उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिये भेजा तथा "कधि कुहाडी कंबल ओढ कर" भेट करने के लिए कहा। पहिले तो राजा ने दूत को भला बुरा कहा लेकिन दूत ने जब समझाया तो राजा ने बात मानली और हाथी पर बैठ वह श्रीपाल से मिलने आया। दोनो जब परस्पर मिले तो चारो ओर अतीव आनन्द छा गया। नगर मे विभिन्न उत्सव मनाये गये तथा श्रीपाल का राजा एव नागरिको की ओर से विविध भेट देकर सम्मान किया गया। श्रीपाल ने उज्जयिनी मे कुछ समय व्यतीत किया।

अन्त उसने अपने देश लौटने का निश्चय किमा। अपने पूर्ण सैन्यबल के साथ वह चम्पा के लिये रवाना हुआ और नगर के समीप आकर डेरा डाल दिया। श्रीपाल ने अपना एक दूत वीर दमन राजा के पास भेजा और पुरानी बातो की याद दिलाते हुये अधीनता स्वीकार करने के लिये आदेश दिया। वीरदमन ने दूत की की बात स्वीकार नही की और युद्ध के लिए दूत को ललकारा। दोनो की सेनाओ ने युद्ध के लिये प्रयाण किया।

हो भाटि मानियो रणसंग्राम, आयो कोडी भड कै ठाम।
बात पाछिवी सहु कही,
.... हो सिंधूडा वाजिया निसाण।
सूर किरणि सूझै नहीं, हो उडी खेह लागी असमान ॥२५७॥
हो घोड़ा भूमि खणै सुरताल, हो जाणिकि उलटिउ मेघ अकाल
रथ हस्ती बहु साखती हो दहु पक्ष की सेना चली।
सुभग संजोग संभालिया हो अणी दुहु राजा की मिली।

लिये यही निश्चय किया गया कि दोनो राजाओ मे ही परस्पर मे युद्ध हो जावे और उसमे जो विजयी हो वही राजा बने । श्रीपाल एव वीरदमन मे परस्पर युद्ध हुआ । श्रीपाल ने सहज मे ही उसे पराजित कर दिया ।

श्रीपाल ने जीतने पर भी अपने वृद्ध काका से राज्य करने का अनुरोध किया । वीरदमन ने श्रीपाल के इस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया और सयम धारण करने का निश्चय किया । श्रीपाल ने लम्बे समय तक देश का शासन किया और प्रजा को सब प्रकार से सुखी रखा । एक बार नगर के बाहर श्रुतसागर मुनि का आगमन हुआ । श्रीपाल ने भक्तिपूर्वक वन्दना की और अपने जीवन मे आने वाली विविध घटनाओ के कारणो के बारे मे मुनिराज से जानना चाहा । श्रुतसागर ने विस्तार पूर्वक श्रीपाल को उसके पूर्व भव मे किये हुये अच्छे बुरे कार्यों के बारे मे बतलाया ।

श्रीपाल फिर सुख से राज्य करने लगा । प्रतिदिन देवदर्शन, पूजन, सामायिक एव स्वाध्याय उसके दैनिक जीवन के अग बन गये । एक दिन जब वह वन क्रीड़ा के लिये गया तो मार्ग मे कीचड मे फसे हाथी को देख कर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने दिगम्बरी दीक्षा धारण करली । उसके साथ मैनासुन्दरी सहित अन्य स्त्रियो ने भी आर्यिका दीक्षा स्वीकार कर ली । अन्त मे श्रीपाल ने कर्म बन्धन को काट कर मोक्ष प्राप्त किया तथा मैनासुन्दरी सहित अन्य रानियो को अपने-अपने तप के अनुसार स्वर्ग की प्राप्ति हुई । कवि ने इस प्रकार २९६ छन्दो में श्रीपाल एव मैनासुन्दरी के जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला है । उसने अन्त के ५ छन्दो मे अपना परिचय दिया है जो निम्न प्रकार है —

हो मूलसंघ मुनि प्रगटो जाणि, कीरत्ति अनंत सील को खाणि ।
तासु तणौ सिष्य जाणिज्यो, हो ब्रह्म रायमल्ल दिढ करि चित्त ।
भाउ भेद जाणै नहीं हो तहि दिट्ठो सिरीपाल चरित्त ।।२९४।।

हो सोलहसै तीसौ सुभ वर्ष, हो मास असाढ भण्यौ करि हर्ष ।
तिथि तेरसि सित सोभनी, हो अनुराधा नक्षत्र शुभ सार ।
करण जोग दीसे भला, हो सोभन वार शनिश्चरवार ।।२९५।।

हो रणथभ्रमर सोभै कविलास, भरिया नीर ताल चहुं पास ।
बाग विहरि वाडी घणो हो, घन कण संपति तणो निधान ।
साहि अकबर राज हो, सोभै घणा जिणेसुर थान ।।२९६।।

हो श्रावक लोक बसैं धनवंत, पूजा करै जपैं अरहंत।
दान चारि सुभ सकति स्यौ हो श्रावक व्रत पालै मन लाइ।
पोसा सामाइक सदा हो, मंत मिथ्यात न लगता जाइ ॥१९७॥

हो द्वैसे अधिका छिनवै छंद, कवियरण भण्यौ तासु मति मंद।
पद अक्षर की सुधि नहीं, हो जैसी मति दीनौ ओकास।
पंडित कोई मति हसौ, तैसी मति कीनौ परगास ॥२९८॥

रास भणौ श्रीपाल कौ ॥

इति श्रीपाल रास समाप्ता।

श्रीपाल रास राजस्थानी भाषा का काव्य है इसमे राजस्थानी शब्दों का पूरा प्रयोग हुआ है। कवि ने 'श्रीपाल' शब्द का भी 'सीरीपाल' शब्द के रूप में प्रयोग करके उसे राजस्थानी भाषा का रूप दिया है। लहुडी (१३) डाइजो (१६) जिणवर पूजरण (१७), ज्यौंणार (११३), जवाइ (११८), रांड (१३४), भावरि (१६६) जैसे शब्दो को रास काव्य में भरमार है। यही नही जुगतिस्यौं, चल्यौं, मिल्यौ, सुण्या, वाण्या, नैंणा, रैणमंजूसा, जिणकौ, भणौं जैसे ठेठ राजस्थानी शब्द कवि को अत्यधिक प्रिय रहे हैं। संवत् १६३० मे यह काव्य रणथम्भौर मे लिखा गया था।

अकवर के शासन मे होने के कारण उस समय वहां फारसी, अरवी जैसी भाषाओ का जोर अवश्य होगा। लेकिन इस काव्य मे उनके एक भी शब्द का प्रयोग नहीं होना कवि की अपनी भाषा मे काव्य लिखने की कट्टरता जान पडती है। इतना अवश्य है कि उसने काव्य को तत्कालीन बोलचाल की भाषा मे लिखा है। कविवर का ढूंढाड प्रदेश से अधिक सम्बन्ध रहने के कारण वह यहा की सीदी सादी भापा का प्रेमी था। इसलिये रास को दुरूह शब्दों के प्रयोग से यथासम्भव दूर रखा गया है।

श्रीपाल के जीवन मे वरावर उतार चढाव आते है। कभी वह कुष्ट रोग से ग्रसित होकर अत्यधिक दुर्गन्ध युक्त देह को प्राप्त करता है तो कभी उसका रूप लावण्य ऐसा निखर जाता है कि उसकी कही उपमा नहीं मिलती। रत्नद्वीप में जाने पर उसे पूरा राजकीय सम्मान प्राप्त होता है रूप लावण्य युक्त रत्नमजूषा जैसी सुन्दर वधु प्राप्त होती है किन्तु यही वधु उसको समुद्र मे गिराने का कारण वनती है। समुद्र को वह पार करने मे सफल होता है और पुन दूसरे द्वीप में पहुच जाता है जहा उसका राजसी स्वागत ही नहीं होता किन्तु गुणमाला जैसी राजकन्या

भी वधू के रूप मे प्राप्त होती है। यहा भी विपत्ति उसका साथ नही छोडती और धवल सेठ के एक षडयन्त्र मे उसे डूम पुत्र सिद्ध होने पर सूली की सजा मिलती है लेकिन दैव योग से उस विपत्ति से भी वह वच जाता है और फिर उसे राज्य सम्पदा प्राप्त होती है। इसके पश्चात् उसकी सम्पत्ति एव ऐश्वर्य मे दिन प्रतिदिन वृद्धि होती रहती है। अन्त मे वह स्वदेश लौटता है और चम्पा का राज्य करने मे सफल होता है।

श्रीपाल का जीवन विशेषताओ से भरा पडा है। वह "वावै जिसो तीसौ लुणौ" मे पूर्ण विश्वास रखता है। सिद्धचक्र पूजा से उसको कुष्ट रोग से मुक्ति मिलती है। कवि ने उसका "गयो कोढ जिम अहि कचुली" उपमा से वर्णन किया है। प्रतिदिन देवदर्शन करना, पूजा करना, आहार दान के लिये द्वार पर खडे होना, सत्य भाषण करना, त्रस जीवो का घात नही करना, आदि उसके जीवन के अग थे। वह अत्यन्त विनयी था तथा क्षमाशील था। धवल सेठ द्वारा निरन्तर उसके साथ धोखा करने पर भी उसने राजा के वधन से मुक्त करा दिया। वीरदमन को पराजित करने पर भी उसे राज्य कार्य सम्हालने के लिये निवेदन करना उसके महान् व्यक्तित्व का परिचायक है।

काव्य का नायक श्रीपाल है। मैनासुन्दरी यद्यपि प्रधान नायिका है लेकिन विदेश गमन से लेकर वापिस स्वदेश लौटने तक वह काव्य मे उपेक्षित रहती है और नायिका का स्थान ले लेती है रत्नमजूषा एव गुणमाला। काव्य मे कोई भी प्रतिनायक नही है। यद्यपि कुछ समय के लिये धवल सेठ का व्यक्तित्व प्रतिनायक के रूप मे उभरता है लेकिन कुछ समय पश्चात् उसका नामल्लेख भी नही आता और रास के प्रारम्भिक एव अन्तिम भाग मे ओझल रहता है।

ब्रह्म रायमल्ल ने काव्य मे सामाजिक तत्वो को भी वर्णन किया है। रास मे चार वार विवाह के प्रसग आते हैं और वह उनका प्राय एकसा ही वर्णन करता है विवाह के अवसर पर गीत गाये जाते थे। लगन लिखाते थे। मडप एव वेदी की रचना होती थी। आम के पत्तो की माला वाधी जाती थी। लगन के लिये ब्राह्मण को बुलाया जाता था। विवाह अग्नि और ब्राह्मण की साक्षी से होता था। दहेज देने की प्रथा थी। दहेज मे स्वर्ण, वस्त्र, हाथी घोड़े, दासी-दास और यहा तक गाव भी दिये जाते थे। शुभ अवसरो पर जीमनवार होती थी। स्वय श्रीपाल ने दो वार अपनी साथियो को जीमण कराया था।

श्रीपाल रास मे एक दोहा छन्द को छोड कर शेष सब पद्य रास छन्द मे लिखे हुये है। यह सगीत प्रधान काव्य है जिसमे प्रत्येक छन्द के अन्त मे 'रास भणो

श्रीपाल को' यह अन्तरा आता है। तथा छन्द की प्रत्येक पक्ति मे 'हो' शब्द का प्रयोग हुआ है जो भी छन्द का सस्वर पाठ करने मे काम आता है।

भविष्यदत्त चौपई

भविष्यदत्त का जीवन जैन कवियो के लिये अत्यधिक प्रिय रहा है। प्राकृत, अपभ्र श, सँस्कृत एव हिन्दी सभी मे भविष्यदत्त के जीवन पर अनेक रचनाएं मिलती है। हिन्दी मे उपलब्ध होने वाली कृतियो मे ब्रह्म जिनदास, विद्याभूपण एव ब्रह्म रायमल्ल की कृतियाँ उल्लेखनीय है। ब्रह्म रायमल्ल की यह कृति सवत् १६३३ की रचना है जिसे उसने साँगानेर नगर मे महाराजा भगवन्तदास के शासन में सम्पूर्ण की थी। कवि ने अपनी कृति को कही पर रास, कही पर कथा और कही चौपई नाम से सम्बोधित किया है।

भविष्यदत्त चौपई कवि की महत्वपूर्ण कृति है। कथा का प्रारम्भ मगलाचरण से हुआ है। भरत क्षेत्र मे करूजागल देश और उसी मे हस्तिनापुर नगर था। तीर्थंकरो के कल्याणक होने के कारण वहा सभी समृद्ध थे। चारो ओर शान्ति एवं आनन्द व्याप्त था। उसी नगर मे धनवइ सेठ रहता था। उसका विवाह उसी नगर के दूसरे सेठ धनश्री की पुत्री कमलश्री के साथ हुआ। एक दिन उसी नगर मे एक मुनि का आगमन हुआ। धनवई सेठ ने मुनिश्री से सन्तान के बारे मे पूछा तो उन्होंने कहा कि उसके सुयोग्य पुत्र होगा जो अन्त मे मुनि दीक्षा धारण करेगा। कुछ समय पश्चात् कमलश्री ने पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्म पर विविध उत्सव किये गये तथा स्वय नगर के राजा ने आकर सेठ को बधाई दी। सेठ ने भी दिल खोल कर द्रव्य खर्च किया। बालक का नाम भविष्यदत्त रखा गया। सात वर्ष का होने पर उसे पढने बिठा दिया गया—

बालक बरस सात को भयो, पंडित आगै पढणौ दियो।
कीया महोछा जिणवरि थ्यानि, सजन जन बहु दीन्हा दान।

कुछ समय पश्चात् सेठ धनवइ को अकस्मात् कमलश्री से घृणा हो गयी और उसने तत्काल अपने घर से चले जाने को कह दिया। कमलश्री ने बहुत प्रार्थना की लेकिन सेठ ने एक भी नहीं सुनी और अन्त मे वह अपने पिता के पास गयी। कमलश्री के अचानक घर आने पर उसके माता-पिता को उसके चरित्र पर सन्देह लगा इतने मे धननइ के मन्त्री ने आकर सबका भ्रम दूर कर दिया। कमलश्री अपने पिता के घर सुखचैन से रहने लगी। धनवइ का दूसरा विवाह कमलश्री की छोटी बहिन रूपा से हो गया। विवाह बहुत ही उत्साह और आनन्द के साथ हुआ।

दोनो पति-पत्नि सुखपूर्वक रहने लगे। सरूपा के कुछ वर्षों पश्चात् पुत्र हुआ जिसका नाम वन्धुदत्त रखा गया। वह वडा हुआ और रत्नद्वीप मे व्यापार के लिये जाने तैयार हो गया। पिता की आज्ञा पाकर उसने ५०० अन्य साथियो को भी ले लिया। जव भविष्यदत्त ने अपने भाई को व्यापार के लिये जाने की बात सुनी तो उसने भी भी उसके साथ जाने की इच्छा प्रकट की और अपनी माता से आज्ञा लेकर भाई के साथ हो गया। लेकिन सरूपा ने वन्धुदत्त को कहा कि वह उसका बडा भाई हैं इसलिये सपत्ति का मालिक भी वही होगा। अत अच्छा यही है कि मार्ग मे भविष्यदत्त का काम ही तमाम कर दिया जावे।

वन्धुदत्त अपने साथियो के साथ व्यापार के लिए चला। साथ मे किराणा एवं अन्य सामग्री ली। वे समुद्र तट पर पहुचे और शुभ मुहरत देख कर जहाज से रत्नद्वीप के लिये प्रस्थान किया। वे धीरे-धीरे आगे वढने लगे। जव अनुकूल हवा होती तव ही वे आगे वढते। वहुत दिनो के पश्चात् जव उन्होंने मदन द्वीप को देखा तो अत्यधिक हर्षित होकर वहा उतर पडे और वहा की शोभा निहारने लगे। जव भविष्यदत्त फूल चुनने के लिये चला गया तो वन्धुदत्त के मन मे पाप उपजा और अपने भाई को वही छोड कर आगे चल दिया।

भवसदत फल लेवा गयो, बंधुदत्त पारी देखिग्रो।
बात विचारी माता तणी, मन मे कुमति उपजी घणी।।२०।।

भविष्यदत्त वहुत रोया चिल्लाया लेकिन वहा उसकी कौन सुनने वाला था। अन्त मे हाथ मुह धोकर एक शिला पर पच परमेष्ठी का ध्यान करने लगा। रात्रि को वही शिलातल पर सो गया। प्रात होने पर वह एक उजाड वन मे होकर नगर मे पहुच गया और जिन मन्दिर देख कर वह उसी मे चला गया और भक्तिपूर्वक भगवान की पूजा करने लगा। उसने अत्यधिक भक्ति से जिनेन्द्र की पूजा की। पूजा करने के पश्चात् वह थक कर सो गया।

इसी वीच पूर्व विदेह क्षेत्र मे यशोधर मुनि से अच्युत स्वर्ग का इन्द्र अपने पूर्व जन्म के मित्र धनमित्र के वारे मे पूछता है वह किस गति मे है। मुनिराज इन्द्र को पूरा वृतान्त सुनाते हैं और तथा कहते हैं कि इस समय वह तिलक द्वीप के नगर मे चन्द्रप्रभु मन्दिर मे है। मुनि के वचनो को सुन कर देवेन्द्र उस मन्दिर मे गया और उसे सोता हुआ देखकर मन्दिर की दीवाल पर उसने लिखा कि हे मित्र उत्तर दिशा मे पाचवें घर मे एक सुन्दर कुमारी है वह उसकी प्रतीक्षा मे है। वह उससे विवाह करले। उस इन्द्र ने मणिभद्र को यह भी कह दिया कि वह भविष्यदत्त का समय समय पर ध्यान रखे। जव वह निद्रा से उठा और सामने लिखे हुए अक्षर

पढे तो वह उसी के अनुसार पाचवे मकान मे चला गया। जव उसने अत्यधिक रूपवती कन्या को देखा तो वह विस्मय करने लगा—

को याह सुर्ग अपछरा कोइ, नाग कुमारि परतग्नि होइ।
बन देवी तिष्टै इह थानि,भवसदत मनि भयो गुमान ।।५५।।

कन्या द्वारा भविष्यदत्त का वहुत सम्मान किया गया और विविध प्रकार के व्यजन भोजन के लिए तैयार किये गये और अन्त मे उस नगरी के उजडने का कारण भी उसने वतलाया और कहा कि इस नगर का राजा यशोधन था। भवदत्त उसके पिता थे जो नगर सेठ थे। माता का नाम मदनवेगा था। उसकी वडी पुत्री का नाम नागश्री एव छोटी का नाम था भविष्यानुरूपा, जो मैं हु। उसने कहा कि एक व्यतर ने सारे नगर को उजाडा। पता नही उसने उसे कैसे छोड दिया। भविष्यदत्त ने अपना वृतान्त भी भविष्यानुरूपा से निम्न प्रकार कहा—

भरत षेत्र कुर जांगल देस, हथिणापुर भूपाल नरेस।
धनपति सेठि वसौ तहि ठाम, तासु तीया कमलश्री नाम।
भविसदत हौं तहि को बाल, सुख मे जातन जाणै काल।
दूजी माल सरूपणि पुत्र, पंडित नाम दियो बंधुदत्त।
मोहण पूरि दीप नैं चल्यौ, हो पणि सानि तासु को मिल्यौ
सो पापी मति टीणो भयो, मदन दीप मुझ छाडि वि गयो
कर्म जोग पट्टण पावियो, इहि विधि तुम थानक आइयो ।।११।।

एक दूसरे का परिचय होने के पश्चात् जव भविष्यानुरूपा ने भविष्यदत्त से उसे स्त्री के रूप मे अगीगार करने के लिये कहा तो भविष्यदत्त ने विना किसी के दी हुई वस्तु को लेने मे असर्थता प्रगट की तथा कहा कि यदि वह व्यतर देव उसे सौंप देगा तो उसको स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नही होगी। कुछ समय पश्चात् वहा व्यतर देव आया और एक मनुष्य को देख कर अत्यधिक क्रोधित हो गया। लेकिन भविष्यदत्त ने उसे लडने के लिए ललकारा। अन्त मे जव उसे मालूम पडा कि वह उसी का पूर्व भव का मित्र है तो वह उसका घनिष्ठ मित्र वन गया। व्यन्तर देव ने भविष्यानुरूपा का विवाह उसके साथ कर दिया और भविष्दत्त को मदनद्वीप का राज्य सौंप कर वहा से चला गया। भविष्यदत्त एव भविष्यानुरूपा वहां पर सुख से रहने लगे।

उधर भविष्यदत्त के वियोग मे उसकी माता कमलश्री चिन्तित रहने लगी। एक दिन वह आर्यिका के पास गयी और अपने पुत्र के वारे मे जानना चाहा।

आर्यिका ने उसे श्रुत पचमी व्रत पालन का उपदेश दिया। उसने कहा कि आषाढ सुदी पचमी को प्रथम वार इस व्रत को ग्रहण करके कार्तिक, फागुन या आषाढ की पहली शुक्ल पचमी को व्रत का प्रारम्भ करके उस दिन उपवास करना चाहिये तथा षष्ठी के दिन एक वार अहार करना चाहिये तथा जिनेन्द्र देव की पूजा करनी चाहिये। इन दिनो में अत्यधिक सयम पूर्वक जीवन विताना चाहिये। यह व्रत पाच वर्ष एवं पांच महिने तक होता है। उसके पश्चात् उद्यापन करना चाहिये। यदि उद्यापन करने की स्थिति नही हो तो दुगने समय तक इस व्रत का पालन करना चाहिये। कमलश्री ने श्रुत पंचमी के व्रत को अगीकार कर लिया और उसका उद्यापन भी कर दिया इसके पश्चात् भी जब उसका पुत्र नही आया तो वह आर्यिका उसे मुनि श्री के पास ले गयी जो मन्दिर मे विराजे हुए थे। वे मुनि अवधिज्ञानी थे। इसलिये कमल श्री के पूछने पर मुनि महाराज ने कहा कि उसका पुत्र अभी जीवित है। वह द्वीपान्तर मे सुख से रह रहा है। यहा आने पर वह आधे राज्य का स्वामी होगा। कमलश्री फिर भविष्यदत्त के आने कें दिन गिननें लगी।

एक दिन भविष्यरूपा ने भविष्यदत्त से अपनी ससुराल के वारे मे फिर पूछा। तत्काल भविष्यदत्त को अपने माता के दुखो का स्मरण आ गया। वह पछताने लगा और शीघ्र ही हस्तिनापुर जाने की तैयारी करने लगा। वे वहुत से मोती माणिक आदि लेकर उसी गुफा मे होकर समुद्र तट पर आ गये और हस्तीनापुर जाने वाले जहाज की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ दिनो पश्चात् वहा वन्धुदत्त का जहाज भी आ गया वन्धुदत्त का वहुत बुरा हाल था। उसके पास न खाने को था और न पहिनने को। सर्व प्रथम यह भविष्यदत्त को पहिचान भी नही सका। लेकिन फिर दोनो भाई गले मिले। वन्धुदत्त ने अपने वडे भाई से क्षमा मांगी। भविष्यदत्त ने सवका यथोचित सम्मान किया और ज्योही वह जहाज पर वैठ कर चलने को हुआ भविष्यानुरूपा को नागशय्या एव नागमुद्रिका की याद आ गयी। भविष्यदत्त जब नागमुद्रिका लेने को गया, वन्धुदत्त ने जहाज चलवा दिया। भविष्यदत्त फिर अकेला रह गया। भविष्यदत्त खूब रोया चिल्लाया और अन्त मे मूर्छित होकर गिर पडा। कुछ देर वाद उसे होश आया तो वह उठ कर फिर तिलकद्वीप मे चला गया। वहा भी वह अपने सूने मकान को देख कर रोने लगा। अन्त मे चन्द्रप्रभु जिनालय जाकर भगवान की पूजा करने लगा।

इधर वन्धुदत्त का मन वासना मे भर गया और वह भविष्यानुरूपा से मनोकामना पूरी करने के लिये कहने लगा। किन्तु वह अपने शील पर दृढ रह कर उसे परमार्थ का उपदेश देने लगी। जहाज अन्त मे तट पर आ गया। और व हस्तिनापुर पहुच गये। वन्धुदत्त के पहुचने पर माता पिता हर्षित हुये। लेकिन

जव कमलश्री ने भविष्यदत्त के बारे मे पूछा तो किसी ने कोई उत्तर नही दिया। वह फिर आर्यिका के पास गयी और उसने उससे 'भविष्यदत्त एक माह मे आ जावेगा' यह वात कही।

वन्धुदत्त ने आकर भविष्यदत्त की अपार सम्पत्ति को अपनी वतला दी। और सवको मान सम्मान कर अपना वना लिया। भविष्यानुरूपा के लिये कह दिया कि यह अपने तिलक द्वीप के राजा द्वारा भेंट मे दी गई है। वह अभी कुआरी है। राजा को सव तरह से झूठ वोल कर अपना वना लिया और अपने विवाह की तैयारी करने लगा। उधर भविष्यदत्त चन्द्रप्रभु भगवान की भक्ति अर्चना करने लगा। वहा एक देव विमान पर आया और भविष्यदत्त से सव वृतान्त जानने के पश्चात् उसको विमान पर विठला कर हस्तिनापुर ले आया। भविष्यदत्त अपनी माता कमलश्री के पास गया और उसकी वन्दना की। वह सव परिजनो से मिला और पिता को साथ लेकर राजा से भेंट की तथा भेंट मे वहुत सा सामान दिया। भविष्यदत्त ने राजा से सव वृत्तात कहा। वन्धुदत्त द्वारा किये गये दुर्व्यवहार की चर्चा की। भविष्यानुरूपा ने वन्धुदत्त द्वारा अपनी पत्नी वताये जाने का विरोध किया। राजसभा मे राजा से एव सभासदो से सव वीती वातो को वताया। राजा ने वास्तविक वात को समझ कर वन्धुदत्त को मारना चाहा लेकिन भविष्यदत्त ने राजा को ऐसा करने से रोका। वन्धुदत्त हस्तिनापुर से निकाल दिया गया।

वन्धुदत्त पोदनपुर पहुचा और वहा राजा से कहा कि भविष्यदत्त के पास सिंघल देश की पद्मिनी है। वह अतीव लावण्यवती है। वह राजा के भोगने योग्य है वणिक पुत्र के नही। पोदनपुर का राजा विशाल सेना लेकर हस्तिनापुर आया और अपना दूत भेज कर राजा से पद्मिनी को देने के लिये कहा तथा आज्ञा के उल्लघन पर नगर को नष्ट कर दिया जावेगा तथा राज्य पर अधिकार कर लिया जावेगा ऐसा कहा।

हो पठयो पोदनपुर धणी, तही की सेना न गिणी।
भूपति बहुत भरै तसु दंड, भुजै राज निसंक अखंड।
तुमनै लुहु दीन्हो उपदेश, सुखस्यो भुजौ चाहो देस।
भवसदन्त कै जो पद्मिणी, सो तुम मोकलि ज्यो तक्षणी।

भविष्यदत्त स्वय ने शत्रु राजा का चैलेन्ज स्वीकार किया तथा सेना लेकर लडने के लिये आगे बढा। दोनो सेनाओ मे घमासान युद्ध हुआ और अन्त मे भविष्यदत्त ने पोदनपुर के राजा को वाध लिया और हस्तिनापुर ले आया।

भविष्यदत्त की वीरता से राजा प्रभावित हो गया और अपनी कन्या का भी उससे विवाह कर दिया।

जैन धर्म निहचौ करै, चालै मारग न्याय।
तसु सेवा सुरपति करै अति सुर्ग जाइ ।।

भविष्यदत्त को राज्य सुख भोगते हुये कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये। कुछ समय पश्चात् माता के कहने से भविष्यदत्त ने पचमी व्रत ले लिया। भविष्यानुरूपा को दोहला हुआ और उसने तिलकद्वीप जाकर चैन्द्रप्रभु चत्यालय के दर्शनार्थ जाने की इच्छा व्यक्त की। उसी समय मनोवेग नाम का विद्याधर वहा आ गया और वह भविष्यदत्त को विमान मे वैठाकर तिलकद्वीप पहुचा दिया। उन्होने चारण मुनि के दर्शन कर श्रावक धर्म को भलीभाति सुना तथा चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र की भक्तिपूर्वक पूजा की। मुनिश्री ने स्वर्ग नरक का भी वर्णन किया। भविष्यानुरूपा के चार पुत्र सुप्रभ, स्वर्णप्रभ, सोमप्रभ, रूपप्रभ तथा दो पुत्री उत्पन्न हुई।

वहुत समय पश्चात् हस्तिनापुर मे विमलबुद्धि नामक मुनि का आगमन हुआ। भविष्यदत्त ने सपरिवार उनकी वन्दना की। मुनि ने विस्तारपूर्वक तत्वो का विवेचन किया। अन्त मे भविष्यदत्त ससार से विरक्त होकर सपरिवार मुनि से सयम व्रत धारण कर लिया तथा अपने पुत्र को राजगद्दी सौंप कर मुनि दीक्षा धारण करली और पहिले स्वर्ग मे तथा फिर चौथे भव मे निर्वाण प्राप्त किया।

भविष्यदत्त चौपई कवि की वडी रचनाओ मे से है। यद्यपि काव्य मे प्रमुख रूप मे कथा का ही निर्वाह हुआ है लेकिन कवि ने वीच वीच मे घटनाओ का विस्तृत वर्णन करके उन्हे काव्यात्मक रूप देने का प्रयास किया है। काव्य की भाषा एकदम सरल और वोलचाल की है। उसे हम राजस्थानी के अधिक निकट पाते हैं।

कवि ने भविष्यदत्त चौपई का निर्माण ढू ढाड प्रदेश के प्राचीन नगर सागानेर में किया था। रचना समाप्ति की निश्चित तिथि सवत् १६३३ कार्तिक सुदी चतुदर्शी थी। सागानेर आमेर के शासक राजा भगवतदास के अधीन था तथा वे अपने परिवार के साथ सुखचैन से राज्य करते थे।[1]

---

१ देस ढू ढाहड शोभा घणी, पूजै तहा अली मन तणी।
निर्मल तलै नदी बहुफिरि, सुवस वसै वहु सागानेरी ।।१४।।
चहु दिसि वण्या भला वाजार, भरे पाटोला मोती हार।
भवन उत्तग जिणेसुर तणा, सोभै चदवा तोरण घणा।

भविष्यदत्त चौपई राजस्थानी भाषा की रचना है। इस कृति मे वस्तुवंध, चौपई एव दोहा छन्द प्रमुख हैं।

कवि ने भविष्यदत्त की वृहत् कथा को न सक्षिप्त रूप मे लिखी है और न विस्तार से। लेकिन इतना अवश्य है कि कुछ स्थानो को छोड कर वह उसमे काव्य चमत्कार उत्पन्न नही कर सका और सामान्य रूप से अपने पात्रो का निरूपण करता गया।

८ परमहंस चौपई

प्रस्तुत कृति ब्रह्म रायमल्ल की अन्तिम कृति है। यह एक रूपक काव्य है जिसमे परमहस आत्मा नायक है। रचना के प्रारम्भ मे २५ पद्यो मे जीव के स्वरूप का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् काव्य प्रारम्भ होता है।

परमहंस की चेतना स्त्री है तथा उसके चार पुत्र है जिसके नाम है सुख, सत्ता वोध और चेतन। एक वार माया परमहस के पास गयी और उसकी स्त्री वनने के लिये निवेदन किया। माया ने मीठी-मीठी बात करके परमहस को राजी कर लिया और वह उसकी पटरानी वन गयी।

परमहंस तव कियो विचार, माया कु कर अंगीकार।
पटराणी राणी कर भाव, परमहंस कै मन अतीचाव।

माया ने घर मे प्रवेश करते ही पांचों इन्द्रियो पर अपना अधिकार कर लिया। वे अपने पति परमहंस के वातो की अवहेलना करने लगी। पापी मन ने अपने पिता को वाघ कर वन्दी-गृह मे डाल दिया।

मन पापी जु पाप चितयो, पिता वांधि तब बंदि महि दयो।

इसके पश्चात् मन राजा राज्य करने लगे। राजकुमार मन ने दो नारियो के साथ विवाह कर लिया। उनके नाम थे प्रवृत्ति एव निवृत्ति। दोनो ने वन्दी

राजा राज करै भगवतदास, राजकवर सेवे वहु तास।
परजा लोग सुखी सुखवास, दुखी दलीद्री पुरवै आस॥

सोलाहसै तेतीसै सार, कातिक सुदि चौदसि सनिवार।
स्वाति नक्षत्र सिद्धि सुभ जोग, पीडा दुख न व्यापै रोग।

खाने मे पडे हुए परमहस के दुख देखे। लेकिन वे उसे छुटकारा नही दिला सकी। मन की एक स्त्री प्रवृति ने मोह पुत्र को जन्म दिया जो जगत मे चारो ओर निडर होकर फिरने लगा।

सो मोह सगलो संसार, धन कुटुम्ब माड्यो पसार।
गति चार मे फिराव सोई, घाल जाल न निकसै कोई ।।४७।।

मन की दूसरी स्त्री निवृत्ति थी। उसने 'विवेक' नाम के पुत्र को जन्म दिया। विवेक अपनी नीति के अनुसार काम करने लगा।

सब जीवन कु दे उपदेश, जिह थे नास रोग क्लेस।
कह विवेक सु वात विचार, सुलह इंछा सुख ससार।

मन राजा अपने पिता परमहस को छोड कर माया के साथ रहने लगा। एक दिन माया ने मन से कह कर विवेक को भी वन्दी गृह मे डाल दिया क्योकि उससे भी माया को डर लगने लग गया था। निवृत्ति ने अपने श्वसुर परमहस को सारी स्थिति समझायी और विवेक को छुडाने के लिये जोर देने लगी। परमहस ने अपनी असमर्थता प्रकट की।

परमहंस जपै सुन बहु, एह परपंच माया का सहु।
निसचै परन छ चेतना, तिह कै पास जाहु तंखीना ।।६२।।

निवृत्ति रानी चेतना के पास गई और उससे विवेक पुत्र छोडने की प्रार्थना करने लगी। प्रवृत्ति रानी ने इसका विरोध किया और मन राजा से निम्न प्रकार निवेदन करने लगी।

मोह पुत्र थारो वर वीर, मात पिता को सेवक धीर।
स्वामी देई मोह दे राज, सीरो सब तुम्हारो काज।

मन भी प्रवृत्ति रानी के वहकावे मे आ गया और उसने मोह को अपना उत्तराधिकारी घोपित कर दिया। मोह ने अपनी नगरी वसाई और निम्न साथियो के साथ राज्य करने लगा —

पुरी अज्ञान कोट चहु पास, त्रिसना खाई सोत्र तास।
च्यारू गति दरवाजा बण्या, दीसै तहां विषै मन घणां ।।७२।।

मिथ्या दरसन मत्री तास, सेवक आठ करम को वास।
क्रोध मान डभ परचंड, लोभ सहत तिहा निवस पंच ।।७३।।

पंद्र प्रमाद मंत्र तसु तणा, तिहंसुं मोह कर रंग घना ।
रात दिवस ते सेवा करै मोह तनी चहु रख्या करै ।।७४।।

सातो विसन सुभ्र गती राज, जान नहीं काज अकाज ।
निगुणा संधि सभा असमान, सोभ दुरगति सिंघासन थांन ।।७५।।

चवर ढल रित विग्ररत वीसाल, छिद्र परोहित पठउ कुस्याल ।
कुड कपट नग्र कोटवाल, पाखंडी पोल्या रखवाल ।।७६।।

नगर मे सभी व्यसनो की चौकडी जमने लगी । सभी तरह के अनैतिक कार्य होने लगे । दूसरी ओर कुमति ने चेतना राजा से निवृत्ति के पुत्र विवेक को छोड़ने का आग्रह किया । लेकिन वहां उसकी दाल नही गली । तब वह मन के पास गयी और निम्न प्रकार परिचय दिया ।

वोली कुमती जोडीया हाथ, वीनती सुनो हमारी नाथ ।
सुरग तणी हु देवांगना, तेरा सुजस सुन्या हम घणां ।।८७।।

मेरा मन वहु उपनो भाव, भली बात देखन को चाव ।।
छोड़ देव आई तुम थांन, तुम देखत सुख पाके जान ।।८८।।

मन राजा को कुमति की वातें वहुत रुचि कर लगी और उसे अपनी पटरानी वना ली । कुमति ने सर्व प्रथम मन से विवेक को छोडने का आग्रह किया । मन ने तत्काल उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और विवेक को वन्वन मुक्त कर दिया ।

कांमी पुरुष ज कोई होई, कांमनी कह्यो न मेटै कोई ।
तिह को छांदो धावै घनो, ईह शुभ काह कांमी नर तनो ।।९५।।

विवेक वधन से मुक्त होकर चेतना माता के पास गया और उसके पांव छुए । विवेक को देख कर चारो ओर हर्ष छा गया । एक दिन चेतना ने निवृत्ति से कहा कि मोह पापी है दुष्ट स्वभाव का है तथा उसका स्वभाव ही दूसरे को पीडा देना है इसलिये मोह के देश को ही छोड कर चला जाना चाहिये । निवृत्ति और विवेक तत्काल वहा से चल दिये । जव वे आधी दूर ही गये तो उन्हे हिंसा देश दिखायी दिया जिसमे सभी तरह के खोटे बुरे कार्य होते थे । कवि ने उसका निम्न प्रकार वर्णन किया है—

दीसै तह रुद्र व्योहार, उपरा उपरी मारै मार ।
हासि निंद्या तिहां अती ही होइ, मारै कोई सराहै लोई ।।१०१।।

चयां रहत परजा परमांन, बाट बटाउ न लह ठाय।
कर विसास मारे तसु जोग, हिंसा देस बसै जो लोग ॥१०२॥

बोलै जको झूठ असमान, तिह सु त्यागो तुम सुनि जान।
अधिउ झूठ एक बोलै वाच, जिह थें टोकर मार सांच ॥१०३॥

उसमे सभी तरह की बुराइया थी। हिंसा झूठ चोरी करने वालो की प्रशंसा होती थी। या तो वहा कसाई थे या फिर अत्यधिक विपन्न। नगर को देख कर दोनो को अत्यधिक वेदना हुई।

निवृत्ति एव विवेक फिर वढे। इसके पश्चात् वे 'मिथ्यात' नामक देश मे पहुचे। वहां सव उल्टी मान्यता वाले लोग थे। अन्ध विश्वास और मिथ्या मान्यताओ मे वे फसे हुए थे।

रागसहत सो मानै देव, तारन समरथ तरन सुएव।
कामनी संग सदा हो रह, तिह नै सुद्ध दैवता कह ॥११२॥

....

पीपल देव पूज बहु भाई, तिहनै पापी काटन जाई।
लेई काठ ते वालन जोग, महा मूढ मिथ्याती लोग ॥१२१॥

गंगा तीरथ कह सहु कोई, तिहकै सनांन मुकति पद होई।
तिह में अशुचि सोच ते करै, मूढ लोग देव विस्तरै ॥१२२॥

पूज व्रख अंवला तनो, सुख संपत स्वामि दे घनो।
महादेव कह बंदना जाय, तिह नै पापी तुडिर खाय ॥१२३॥

कवि ने उस समय मे व्याप्त लोक मूढताओ पर विस्तार से प्रकाश डाला है। जिन देवी देवताओ के आगे वलिदान होता था, उसकी भी कवि ने गहरी निन्दा की है तथा जोगियो की भस्मी मे विश्वास करने वालो की कवि मजाक उडायी हैं। वे मद्य एव मास का भोजन करने वाले गुंसाई जनो को भी मिथ्यात्वी कहते है—

निवृत्ति और विवेक 'मिथ्यात' नगर की दयनीय स्थिति देख कर अत्यधिक दुखी हुये और वे दोनो आगे वढे। वे जिन शासन के देश पहुचे और उसकी सुन्दरता से प्रसन्न होकर उसमे प्रवेश किया। जिन शासन नगर के निवासियो के सम्वन्ध मे निम्न प्रकार वर्णन किया है।

तिहां भलो दीसै संजोग, पानी छांण्या पीव सहु लोग।
मुनीवर बहु पालै आचार, पाप पुन्य को कर विचार ॥१३२॥

दया वृत तिहा कर नीवास, आत्म चिंता मन को वास ।
संजम फूल ते लगते घना, तिह का सुख भुंजै भव्यईना ।।१३३।।

सुभ भाव कोईल वोलंत, जिन वाणी तिहां दाख फलंत ।
सरस वचन वोलै गुन जान, निपज नागवेल को पान ।।१३३।।

पान फूल तीहा वहु महकाई, मुनी ध्यान मधु वरत अथाई ।
उद्यान सरोवर अधिक गहीर, तिह को थाग लह मुनि धीर ।।१३४।।

जिन शासन नगर के राजा का नाम विमल वुध था । एक दिन जब वह वन क्रीड़ा के लिये गया तो उसने निवृत्ति एवं विवेक दोनो को देख लिया । दोनो को उसने वडा सम्मान दिया और फिर उन्हे अपने घर ले गया । वह दोनो का भोजन आदि से सम्मान किया । इसके पश्चात् राजा ने निवृत्ति से उसके पुत्र विवेक की वडी भारी प्रशसा की और कहा कि सुमति के साथ विवेक का विवाह हो जाना चाहिये । निवृत्ति ने विवेक के विवाह का निम्न शब्दो मे उत्तर दिया—

भन निवृत्य सुनो हो राव, जे छै इसो तुम्हारो भाव ।
इक सोनो इक हीरा जड्यो, कहो विचार न कौन बापरो ।।१४४।।

दोनो के विवाह की तैय्यारी होने लगी—

चौरी मडप रच्यो विसाल, सोभै तोरन मौत्यां माल ।
छापे वस्त्र पटवंर सार चंदन थंभ सुगंध सुचार ।।१४६।।

गावै त्रिया करै वहु कोड, वर कन्या को बांध्यो मोड ।।
लगन महुरत बहुत उछाह, विवेक सुमति को भयो विवाह ।।१४७।।

निवृत्ति सुमति वधू को पाकर अत्यधिक प्रसन्न हुई । खूब दान दिया । एक दिन उसने विमलवुध से जाने की आज्ञा चाही । विमलवुध ने कहा कि वे प्रवचन नगर मे जावे और वहा सुख चैन से जीवन व्यतीत करे ।

तुम प्रवचन नग्र म चलो, होसी सही तुम्हारो भलो ।
वंदो जाय चरन अरहंत, तिहठै सुख सु वसो अनंत ।।१५१।।

तिहां विवेक वडाई लह, भलो पुरुष सहु कोई कह ।
कीरत वहुत होत तुम तनो, सुख सपती तीहां मिलती घनी ।।१५२।।

विमलवुध की वात मान कर निवृत्ति विवेक एव सुमति तीनो प्रवचन नगर के लिये रवाना हो गये और कितने ही दिन चलने के पश्चात् वे तीनो वहा पहुचे ।

प्रवचन नगर वहुत विशाल था। दया धर्म वहां निवास करते थे। सव जीवो को अपने समान समझा जाता था। अनाचार को स्वप्न मे भी नही जानते थे। तथा सर्वदा व्रत शील सयम की पालना होती थी। प्रवचन नगर को वर्णन कवि के शब्दो मे देखिये—

तिहां अरिहंत देव को वास, इंद्र एक सो सेव तास।
वाजा साढा बारा कोड, सुर नर खेचर नम कर जोड़ ॥१५६॥

मारगनाव लोक संचरै, करम बंध कोई नवी करै ॥
उपरां उपरी वेरन कास, जिम सिघालो सिघावास ॥१५७॥

उस नगर मे कोट थे, सरोवर थे, जिनमे कमल खिले हुये थे। चारो ओर दरवाजे थे तथा तोरण द्वार थे। वही समोसरन था। तीर्थंकर के दर्शन से ही पुण्य वव होता था। तीनो नगर के अन्दर गये और उन्होने चारो ओर कलश लगे हुये देखे। जिन मन्दिर के दर्शन किये। उनके आनन्द की कोई सीमा नही रही। वही जिनेन्द्र का समोसरन था। चारो ओर अपार शान्ति थी। ईर्ष्या, कषाय एव द्वेष का कही नाम भी नही था। निवृत्ति विवेक एव सुमति के साथ समवसरन मे गये तथा तीन प्रदक्षिणा देकर वहा वैठ गये। जिनेन्द्र की आशीर्वादात्मक दिव्यध्वनि निम्न प्रकार खिरी—

रहो ईहां तुम निर्भय थान, भुजो बहु सुख तनां निधान।
मन मे चिंता मति कोई करो, ईहा थानक को दुष्टन हरो ॥२२५॥

इस प्रकार विवेक ने 'पाप नगर' का वृत्तान्त सुनाया। जहां मोह राजा राज्य कर रहा है वहा का वुरा हाल है—

मिथ्याती वहु करै कुकर्म, जानै नहीं जिनेश्वर धर्म,।
बहुत जाति पाखंडी फिरै, मूढ लोक तसु देवा करे ॥२३०॥

झूंठ बोलतां संकन करै, धन कै काज सगा परहरै।
जै तो महा दुष्ट आचार, तो सहु मोह राव परिवार ॥२३३॥

विवेक ने अपने आने का पूरा वृतात कहा—

वीमल बोध की साभली बात, तुम थानक आया जिन तात।
कीयो पाछलो सहु परगास, दीठो जिनवर पुगी आस ॥

इधर मोह को पुत्र लाभ हुआ जो चौरासी लाख जीवो का शत्रु था। वह जिनेन्द्र की वात नही मानता था। उसने वहुत से तपस्वियो के तप का खडन कर

दिया यहा तक कि ब्रह्मा, विष्णु एव इन्द्र को भी नही छोडा। वह देश मिथ्यात देश है जहा जैन धर्म नही है किन्तु वहा एकान्त मत का प्रचार है।[1]

दूसरी ओर सम्यक्त्व नगर मे देव शास्त्र गुरु मे पूरी भक्ति थी तथा वहा सम्यग्दर्शन के आठ अगो की पालना होती थी। तीर्थंकर ने विवेक की बहुत प्रशसा की और उसे पुण्य नगरी का राज्य दे दिया। पुण्य नगरी मे प्रतिदिन भगवान की पूजा होती थी, चारो प्रकार के दान दिये जाते थे तथा शीलव्रत की पालना होती थी। विवेक सदलबल पुण्य नगर मे निवास करने चले।

तिर्थंकर जाण्यौ गुणसार, कीन्हो विदा विवेक कुमार।
दरसन ज्ञान चरन तप सार, चहुं विधि सेन्या चली अपार ।।२७०।।

उपसम गज गढ़ चल्यो कुमार, तास छत्र सिर सो भवपार।
तास निसान बाज बहु भांति, सम दम सजन साथ चढोत ।।२७१।।

पुण्य नगर को विवेक ने देखा। तीन गुप्तिया जिस नगर का कोट थी, पाच समितिया ही मन्दिर थी तथा नियम रूपी कलश जिसके शिखरो पर सुशोभित था। द्वार पर आनन्द का तोरण था तथा कीर्ति ही जिसकी ध्वजा थी जो चारो ओर उछल रही थी। चार सघ ही भावना के समान थे।

पुण्य नगरी मे विवेक सुख से राज्य करने लगा। चारो ओर सुख शाति थी जो मुक्ति चोर एव अन्तराय थे वे सब विवेक से दूर रह गये। मुक्ति का सबके लिये द्वार खुल गया—

विवेक राजा निकंट करै, जिनकौ आग्या मन मे धरै।
सहत कुटंब विवेक भोवाल, सुख मे जातन जान काल ।।२८३।।

इसके पश्चात् दूसरा अध्याय प्रारम्भ होता है। कवि ने इस अध्याय को निम्न प्रकार आरम्भ किया है—

दोहा

ब्रह्म राइमल बंदिया कह्यो सास्त्र गुरु सार।
वो र कथा आगै भई, तिह को सुनो विचार ।।२८४।।

---

१ राज कर राजा मिथ्यात, जान नही जैनी की बात।
मत एकात तास उबरै, बोध महाभड अति हो करै ।।२५४।।

दूसरी ओर पाप नगरी मे एक दिन मोह राजा ने अपने मत्री को अपने पास बुलाया और कहा कि निवृत्ति और विवेक के सकुशल भागने से हृदय मे गहरी चोट है। विवेक हमारा वैरी है इसलिये ऐसा कोई घात करो जिससे विवेक कुमार की मृत्यु हो जावे। मोह के चार दूत चारो दिशाओ मे विवेक की तलाश मे निकल पड़े लेकिन उनको जरा भी सफलता नही मिली। एक दिन मार्ग मे एक सरल स्वभावी यात्री मिल गया। उससे पूछने पर विवेक की पुण्य नगर की जानकारी मिल गयी। दूत ने सर्व प्रथम एक मायावी दिगम्बर साधु का भेष बनाया पिच्छी कमण्डल हाथ मे लेकर नगर मे चल पडा। भोजन के लिए वह नगर मे फिरने लगा, और इस बहाने नगर का भेद भी लेने लगा। लेकिन नगर के ज्ञानी कोटवाल को जब सन्देह हुआ तो उसने निम्न प्रश्न उपस्थित किये गये—

ग्यान सुभट चारू बुझिया, भेष दिगम्बर कदि थे लीया।
आया तुहे चोर व्योहार, दीखै नहीं शुद्ध आचार ॥३६३॥

इन प्रश्नो को सुन कर वह डर गया और तत्काल भाग गया—

वचन सुनत तब ही खल-भल्या, तत खिन नग्र मांझ थे चल्या।
भागा दुष्ट इम पाखंड, हत्या कुड कपट परचंड ॥३६४॥

लेकिन डभी जो वही पुण्य नगर मे रह गया था कुछ दिनो बाद पाप नगर मे आ गया। वहा आकर उन्होने मोह से पुण्य नगर के पूरे समाचार सुनाये—

दोहा

श्रावक मुनि बहु चितवै, महामंत्र नवकार।
बिंब प्रतिष्ठा जिन भवन, खरचै द्रव्य अपार ॥३३५॥

उधर पाप नगर का जिस प्रकार डभ ने वर्णन किया वह निम्न प्रकार है—

भनै डंभ सुनि मोह जी, देस तुम्हारे बात।
द्रव्य पराये लूट जे, कर विसास सुघात ॥३४३॥

बेटी बेच र द्रव्य ले, सब छत्तीसो पोन।
लोभ सरब परजा कर, चित न राखै जान ॥३४३॥

कूड कपट चालै घणो, घर न करै संताप।
अशुध किराणां विणज जे, जिह थें उपजै पाप ॥३४४॥

विवेक ने जिनेन्द्र के पास जाकर सयम स्त्री से विवाह करने का विचार

किया। विवेक की रानी सुमति थी। उसके सबसे वडे कुमार का नाम वैराग्य था। सयम दूसरा कुमार था। विचार तीसरा कुमार था। सम्यक्त्व सेनापति था जो सभा की चतुरता जानता था। 'उपसम' उसका सेवक था। वारह व्रत उसकी सेना थी। गुरु का उपदेश उसका छत्र था तथा सत्य ही उसका सिहासन था। सप्त तत्व उसके राज्य के ऐश्वर्य थे। इन सवके साथ विवेक पुण्य नगर मे राज्य करता था। राज्य करते हुये उसे वहुत समय हो गया और समय का पता भी नहीं चला। मोह ने यह सव सुना तो उसको वडा आश्चर्य हुआ और उसका शरीर पसीनो से भीग गया।

मोह ने विशाल सेना के साथ विवेक पर आक्रमण कर दिया। सर्व प्रथम उसने अपने पुत्र 'मदनसुमार' को सेनापति वना कर युद्ध मे भेजा। मदनकुमार के साथ वसत भी अपने साथियो के साथ युद्ध भूमि मे जा डटा। उसकी स्त्री वनमाला भी साथ थी। मदनकुमार के साथ मे मान, माया और लोभ भी अपने पूरे दल के साथ उसकी सहायतार्थ चले। पाचो इन्द्रियो ने भी उसका साथ दिया। मदन कुमार के आगे-आगे पद्मिनी हस्तिनी चित्रनी और सखिनी—चारो स्त्रिया चल रही थी। जिनके हाथो मे कुसुमवाण थे। इन चारो स्त्रियो की विशेषताएं निम्न प्रकार थी—

निवसै छुरीका अति खरी, तीर वहती धार।
कटारी कोमल वचन, करूं शत्रु को सिघार ॥३८६॥

हाव भाव तरगस भरे, नैन कटाषित वाल।
अभ्यंतर छेदे तुरत, कामी लजै न जान ॥३८७॥

नेवर वांनी घाल पग, डारी न जो तास।
रूप महावलि तिह तनो, करै शत्रु को नास ॥३८८॥

मदन कुमार ने सर्व प्रथम ब्रह्म देश की विजय की। यहा ब्रह्मा राज्य करते थे और ब्राह्मण उसके परिजन थे। मदनकुमार ने ब्रह्मा को ध्यान से डिगाने के लिए रम्भा को भेजा। दोनो मे खूव लडाई किन्तु अन्त मे ब्रह्मा जी हार गये और गायत्री एव सावित्री ये दोनो स्त्रिया देकर वह आगे वढा। आगे विष्णु नगर मिला जहा भसवान विष्णु राज्य करते थे। इन्होने वडे वडे धुरन्धर योद्धाओ को जीत लिया था। मदनकुमार ने विष्णु के पास कामिनियो की फौज भेजी जो वहा जाकर विभिन्न प्रकार के हाव भाव करने लगी। अन्त मे उनकी विजय हुई और सोलह हजार गोपियो को वहा छोड कर मदन कुमार आगे वढे।

मदनकुमार वैंकुठ नगर आये। वहा भगवान शिव का राज्य था। जिन्होने तीसरे नेत्र से कामदेव को भस्म कर दिया था। मदन कुमार ने सुन्दर स्त्रियो को भीलनी का रूप वना कर भेजा। यहा भी मदन कुमार की विजय हुई। वे शिव को गगा और पार्वती देकर आगे वढे।

अव मदन कुमार ने विवेक पर चढाई कर दी। सर्व प्रथम उसने सात व्यसनो को युद्ध मे भेजा। इसके पश्चात् १२ अविरत लडने लगे। इनका सामना १२ प्रकार व्रतो ने किया। इनसे इन्द्रियो की सेना भाग गयी। सम्यग्यान के आगे मिथ्यात्व भाग गया तथा समता भाव ने राग द्वेष पर विजय प्राप्त की। मदनकुमार ने आर्त्त और रौद्र—ध्यान को विवेक के गढ मे भेजा लेकिन विवेक के पास तीन गुप्तियो का अनन्त वल था। मदन ने अपने सभी साथियो को बुला लिया कितने ही दिनो तक युद्ध होता रहा लेकिन मदन की एक भी नही चली। अन्त मे मदन ने विवेक से मोह को राजा मानने तथा सुख पूर्वक राज्य करने के लिये कहा। विवेक ने मदन को वापिस चले जाने की सलाह दी और कहा कि वह तो निर्ग्रन्थ स्वामी की सेवा करता है। फिर भी उसने आधा राज्य देना स्वीकार कर लिया—

पंचम गुनठामक हम ठाम, असजम संजम मति को नाम।
मानो वचन विवेक हो तणी, मदन कंवर सुख पायो घनो ॥४६३॥

छोडियो तिहा असजम राव, लीयो डंड बहु भयो उछाह।
पुत्र त्रीया संजम परिवार, ए बहु मोह राख विस्तार ॥४६४॥

संसारी सुख मान घणो, ते सहु भाव असजम तनो।
दान पुण्य तप सील विमान, और विवेक सुनो गुनमाल ॥४६५॥

जिनवर भवन करावो सार, जिनवर व्यव तनो आधार।
जात प्रतिष्ठा सिद्धात वखान, गुन विवेक साभलो जांन ॥४६६॥

दोहा

मोह भाव कर खरच जे, कीजे घर का काज।
सरव डड ह मोह को, परिग्रह परियन साज ॥४६७॥

सप्त षेत्र घन विविसिजे, कीजे पर उपगार।
डंड कहते जिन तनो, जान विवेक कुमार ॥४६८॥

मदनकुमार की इस विजय से पाप नगर मे प्रसन्नता छा गयी और घर घर मे उत्सव होने लगे।

कवि ने इसके पश्चात् विवेक एव मोह के स्वभाव का विस्तृत वर्णन किया है। अन्त मे विवेक ने वैराग्य धारण कर लिया और और सयम रूपी स्त्री के साथ रहने लगे। एक दिन फिर मोह मदन राजा का वहा दूत आया और कहने लगा कि या तो वह मोह का डड स्वीकार करे या फिर पुण्य नगर को छोड़ दे। यदि दोनो मे से एक भी कार्य स्वीकार नही है तो फिर देह त्यागने के लिए तैयार हो जावे। विवेक के मन्त्री ने मोह के दूत मे खूब वाद-विवाद हुआ।

एक बार फिर मोह ने विवेक पर आक्रमण किया लेकिन उसने अपने सभी बुराइयो पर विजय प्राप्त की और अन्त मे जब मोह ने विवेक पर आक्रमण किया तो चारित्र ने वैराग्य की तलवार से उसका डट कर सामना किया और उसे भगाने पर मजबूर किया। विवेक की तपस्या मे और भी अनेक उपद्रव किये गये लेकिन विवेक एक-एक गुणस्थान चढते गये और अन्त मे १४ वें गुणस्थान मे पहुच गये तथा सिद्ध पद प्राप्त किया। कवि ने अन्त मे विवेक के मार्ग पर चलने के लिये सबको निमन्त्रण दिया है—

विवेक सहत्त धर्म जो करै, असी पदवी तिह न कुरै।
जो या कथा सुनै दे कान, सो नर लहे सासतो थान ॥६३८॥

परम हंस गुन मन में आन, सो वह लह सुख की खान ।
परमहंस अति निर्मल देव, मन वच काय नमते एव ॥६३९॥

ग्रन्थ के अन्त मे कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

मूलसंघ जुग तारन हार, सरव गछ गरवो आचार।
सकलकीर्त्ति मुनिवर गुनवंत, ता समाही गुन लही न अंत ॥६४०॥

तिह अमृत गाव अति अंग, रतन कीरत मुणि गुणां अभंग।
अनन्तकीर्ति तास सिष्य जान, बोलै मुख थे अमृत वान ॥६४१॥

तास सिष्य जिन चरणा लीन, ब्रह्म राइमल बुधि को हीन।
भाव भेद तिहां थोडौ लह्यौ, परमहंस की चौपई कह्यौ ॥६४२॥

परमहस चौपई का रचना काल सवत् १६३६ जेठ बुदी १३ शनिवार है।

सोलासै छतीस वखान ज्येष्ठ सांवली तेरस जांन।
सोभै वार सनीसरवार, ग्रह नषत्र योग शुभ सार ॥६४४॥

इस काव्य का रचना स्थान तक्षकगढ (टोडारायसिंह) है जो उस समय

धन-धान्य सहित था तथा जहा श्रावको की अच्छी वस्ती थी। वहा पार्श्वनाथ का मन्दिर था जिसका निर्माण सवत् १५३५ मे खडेण्लवाल जातीय छावडा गोत्र के सगही चाहड ने कराया था। कवि ने उसी मन्दिर मे बैठ कर ग्रन्थ का निर्माण किया था। तक्षकगढ मे अनेक वावडिया एव वाग और कुवे थे। चारो ओर वाजार थे। जिसमे वस्त्र एव मोतियो के हार विकते थे। वहा के सभी जिन मन्दिर ऊ चे थे जिनके शिखरो पर ध्वजाए फहराती थी। नगर मे श्रावको की घनी वस्ती थी जो सभी धनाढ्य थे। वे प्रतिदिन पूजा करते एव अरिहत भगवान का ध्यान करते थे। उनमे सबमे मित्रता थी तथा एक दूसरे मे इर्ष्या भाव नही था।[1]

प्रतिपरिचय

प्रस्तुत प्रति दौसा (राजस्थान) के तेरापथी मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे मे उपलब्ध है। इसमे ३९ पत्र है तथा इसे सवत् १८४४ कार्तिक सुदि ९ शनिवार को सारोवा ग्राम मे प० दयाचन्द ने लिखी थी। यह ब्रह्म सिवसागर के पठनार्थ लिखी गयी थी।[2]

---

१ देश भलो तिह् नागर भाव, तक्षिकगढ अति वस्यौ विशाल।
सोभै वाडी वाग सुचग, कूप वावडी निर्मल भग ॥६४६॥

चह् दिसि वन्या अधिक वाजार, भर्‌या पटवर मोती हार।
जिन चैत्याला वहुत उत्त ग, चदवा तोरण धुजा सुचंग ॥६४७॥

श्रावक लोक वसै धनवत, पूजा करै जपै अरिअंत।
उपरा उपरी वैर न कास, जिम अह् मदिर सुरग निवास ॥६४८॥

राजा कर राजा जगनाथ, दान देत नवो खेचै हाथ।
पदरासै पैंतीसा सार, पारस नाह् मन्दिर विस्तार ॥६४९॥

खण्डेलवाल छावडा गोत, चाहडै सगही वहु प्रयवेत।
दान पुण्य साला अतिसार, खरचै वहुत द्रव्य अपार ॥६५०॥

२ इति श्री परमहस चौपई ब्रह्म राईमल कृत सपूर्ण। सुम भवतु कल्यानमस्तु। पौथी ब्रह्म जी सीवसागरजी पठनार्थं, लिखित पंडित दयाचन्द सारोला मध्य सवत् १८४४ वर्षे कार्तिक स्याम तिथी ९ सनीसरवारे मध्याह्न वेलाया॥

६ निर्दोष सप्तमी व्रत कथा

ब्रह्म रायमल की यह कथा प्रधान कृति है जिसमे उसने निर्दोष सप्तमी व्रत की कथा का वर्णन किया है। व्रतो के महात्म्य एव उनके प्रचार का ही इस कथा को लिखने का एक मात्र उद्देश्य है।

वाराणसी नगर मे सेठ लक्ष्मीदास एव सेठानी लक्ष्मीमति रहते थे। वे प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान की पूजा किया करते थे। इसी नगर मे एक और वणिक् था। जिसकी स्त्री का नाम नन्दिनी था। मुरारी उनका पुत्र था। कुछ समय मे मुरारी खांसी के रोग ले पीड़ित होकर मर गया। पुत्र वियोग से वे दोनो दुखी रहने लगे। एक दिन सेठानी का नन्दिनी के घर आना हुआ। उसने नन्दिनी से उसके द्वारा प्रात काल गाया जाने वाला गीत के सम्वन्ध मे जानकारी चाही तो उसने पुत्र वियोग की वात कही। लक्ष्मीमति ने नन्दिनी से कहा कि पुत्र वियोग से इतना दुख करना व्यर्थ है। उसने कहा कि क्या उसे निम्न कार्यो के करने से दु-ख होता है —

लिखमीमति बोली संखिनी, दुख नाम कीयो नंदनी
कै दुख पुत्र पुत्र विवाह, कै घरि जामण पुत्र उछाह।
कै दुख घरि आया पाहुणो, कै दुख जिन पूजा वंदना।
कै दुख संग विनौ व्यौहार, कै दुख भोजन मिष्ट अहार।
कै दुख मुनिवर दीजै दान, कै दुख चोवा चंदन पान।
कै दुख भलौ वस्त्र आभरण, कै दुख रत्नरूप सो वरण
कै दुख की जै जिणवर जात, कै दुख कही धर्म की बात।
कै दुख सदा हरिष आनन्द, कै दुख सुणीजे शास्त्र जिणद।
क दुख वरत उद्यापन होइ, अवर दुख न छो जाणौ कोई।

उक्त दु ख के कारणो को सुन कर नन्दिनी वडी क्रोधित हुई और उसने कहा कि एक दिन वह उसे दु ख को दिखावेगी।

नन्दिनी के एक दिन मन मे पाप उपजा और उसने एक काला सर्प घडे मे डाल कर तथा उसका मुख पीले कपडे से ढक कर सेविका के हाथ सेठानी के यहा भेज दिया। और कहला दिया कि यह दु ख की खान है उसे वह लें ले। सेठानी ने कलश को हसी खुशी ले लिया और दासी को ससम्मान विदा कर दिया। सेठानी ने जव कलश को खोल देखा तो उसके पुण्य के प्रभाव से वह सर्प भी सुन्दर हार वन गया। वह उसे पहिन कर जिन पूजा को चल दी। मार्ग मे उनकी भेंट रानी से

हुई। रानी उसमे गले के हार को देख कर कुढ गयी और ऐसा ही हार अपने लिये भी चाहने लगी। महलो मे जाकर वह खटवा की पाटी लेकर सो गई।

राजा को जब रानी की बात मालूम हुई तो उसने तत्काल सेठ सेठानी को महल मे बुलवाया तथा वहा आने पर सेठाणी का हार देने के लिये कहा। सेठ ने रानी के गले मे से हार उतार कर राजा के सामने रख दिया। लेकिन वह राजा के छूने पर सर्प वन गया और सेठ के छूने पर वापिस हार हो गया। चारो ओर सेठ सेठानी के पुण्य की चर्चा होने लगी। कुछ समय पश्चात् वे मुनि के पास गये और निम्न प्रकार प्रश्न पूछा—

वोलै राव जोडिया हाथ, प्रश्न एक बुझै मुनिनाथ।
लिछमी मति गला को हार, हम छीवंत होय सर्प विकार।
चित्त हमारै संसौ घणो, कहो विरतंत हार छूह तणो।

मुनि ने कहा कि लक्ष्मीमति ने पूर्व जन्म मे अत्यधिक पुण्य किया था और निर्दोष सप्तषी व्रत का पालन किया था। भादवा सुदि सप्तमी के दिन उपवास रखने से अत्यधिक पुण्य प्राप्त होता है। सात वर्ष तक व्रत करने के वाद उनका उद्यापन करना चाहिये और यदि उद्यापन नही कर सके तो उतने ही वर्ष तक व्रत करना चाहिये।

पूरी कथा कृति ५६ पद्यो मे पूर्ण होती है। अन्तिम छन्द मे कवि ने अपने नाम का उल्लेख निम्न प्रकार किया है—

नर नारी जो नीव्रख करै, सौ संसारा थोडौ फिरै।
जिन पुराण मही इस सुण्या, जहि विधि ब्रह्म रायमल्ल भण्या।[1]

१० पंच परम गुरु जयमाल

यह एक लघु रचना है जिसमे २१ पद्य है। यह स्तुतिपरक रचना है जिसमे पूजा, दान, दसलक्षण धर्म एव सोलहकारण व्रत आदि के माहत्म्य का वर्णन किया गया है। रचना की भाषा राजस्थानी है। उसका आदि अन्त निम्न प्रकार है—

आदि भाग—**पंचा परम गुरु वंदिस्यां, सारद प्रणमौ पायेजी।**
आठ द्रवि पूजा रचौ, सदगुरु तनौ पसायोजी ।।पंचा।।१।।

हो जिणवर पूजा नित करौ, सावग सुभ कुल पाये जी।
आरंभ पारंभ सोइ घर तणा, ते सौइ पाप विलाए जी ।।पचा।।२।।

अन्तिम भाग—हो स्रावग को कुल पाइजे, लहिजे द्रव्य अपारोजी ।
नां खरचौ नां तप कीयौ, जनम गुमायौ सारोजी ।।२०।।

हाथ जोडी विनती करै, परम निरंजन देवोजी ।
रायमल ब्रंभ यो भणै, मांगौ तुम पद सेवजी ।।२१।।

इति पचपरम गुरु की जैमाल समापत । मिति चैत सुदी ८ सवत् १८२६ ।

उक्त कृति दि जैन मन्दिर पार्श्वनाथ जयपुर के शास्त्र भण्डार के ११ सख्या वाले गुटके मे सग्रहीत है ।

११ जिन लाडूगीत

वह एक रुपक गीत है जिसमे निर्वाण प्राप्ति के लिये लाडू को रूपक वना कर मानव को प्रेरणा दी गयी है । गीत मे आठ मुल गुणो को दुग्ध, छाछ को सम्यक्त्व, सप्त व्यसनो को धूलि, उपशम सम्यत्व के जल से धोकर लाडू वनाने की विधि वतलाई है । पानीगालन को घृत, दिन मे भोजन करने को खाड, अपने शरीर को चुल्हा एव आत्मा को कडाही, ध्यान रूपी आइनै पर जलाना चाहिये । जीव और पुद्गल भिन्न है इसका चिन्तन करना चाहिये । इस प्रकार चारित्र रुपी काडु वहुत सुन्दर तैय्यार होगा जिसको खाने से सुख मिलेगा ।

पंच परम गुरु वंदिस्यां जिण लाडू हो
सारद प्रणमुं पाय जिणेसर लाडू हो ।।१।।
गुण गावउं श्रावक तणा । जिणे । क्रिया त्रेपन सार ।।जिणे।।
आठ मूल गुण गो हूयां ।।जिणे।।
समकित छात पछांरि ।।जिणे।।
सात व्यसन रज दूरि करि ।।जिणे।।
उपसम पाणी धोइ ।।जिणेसर लाडू हो ।।३।।
दुइ प्रकारि तप घर टला, जिणेसर लाडु हो ।
करुणा वीस सहारि जिणेसर लाडू हो ।।४।।
वार वरत सुभ छांणणा जिणेसर लाडु हो ।।५।।
सोडी प्रतिमा प्यार ।।जि।।पांणी गालण घृत करि ।।जि।।६।।
दिन भोजन करि खांड, ।।जि।।निज शरीर चुल्हड करे ।।जिण।।७।।
आतम करउ कडाहि ।।जि।। ईंधन च्यारि कषाइ करउ ।।जि।।८।।
ध्यान आगनि परिजाल ।।जि।। सुभ विवेक चाटू करउ ।।९।।
जीवर पुद्गल भिन्न ।।जि।। दंसण गुण करि काठडउ ।।१०।।
ग्यान गरांमि री लुंग ।।जि।। चारित लाडू अति भलउ ।।११।।

खांति मुकति सुख मिठु ।।जि०।। लाडू इरिण परि सोधियो ।।१३।।
जिम पामउ निरवांरण ।।जि०।। सांभरि नयरि सुहामरणो ।।१४।।
भव्य महाजन लोग, क्रिया भरणी श्रावकतरणी ।।१५।।
पालउ सब सुख होइ, ब्रह्म राइमल इम भरणउ ।।१६।।
धर्म्म जिरणेसर सरण जिरणेसर लाडू हो ।।१७।।

उक्त रचना 'साभर' मे रची गयी थी। साभर मे कवि ने जेष्ठ जिनवर कथा को सवत् १६३० मे निवद्ध की थी। इसलिये यह रचना भी उसी समय की मालूम देती है।

१२ चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न

जैन पुराण साहित्य मे स्वप्नो का अत्यधिक महत्व माना गया है। तीर्थंकर के गर्भ मे आने के पूर्व उनकी माता को सोलह स्वप्न आते हैं और इन स्वप्नो के अनुसार ही उसे तीर्थंकर पुत्र होने का भान होता है। भरत सम्राट के स्वप्नो का भी पुराणो मे खूब वर्णन मिलता है। प्रस्तुत कृति मे सम्राट चन्द्रगुप्त को आने वाले सोलह स्वप्नो का वर्णन किया है। चन्द्रगुप्त हमारे देश के सम्राट थे तथा जैन धर्मानुयायी थे। सम्राट को जब स्वप्न आये तो उन्होंने अपने गुरु भद्रवाहु से उनका फल जानना चाहा। उस समय भद्रवाहु ने जो उनका संक्षिप्त फल वतलाया उसी का कविवर रायमल्ल ने प्रस्तुत कृति मे वर्णन किया है।

१ टूटी हुई डाली	क्षत्रिय जाति को दीक्षा मे विश्वास नही रहेगा।
२, अस्त होता हुआ सूर्य	द्वादशांग श्रुत का ह्रास होगा तथा उसे जानने वाले कम रह जावेंगे।
३ उगते हुए चन्द्रमा मे अनेक छेद	जिन शासन अनेक भागो मे वट जावेगा।
४ वारह फरण वाला सर्प	वारह वर्ष का दुष्काल पड़ेगा साधु अपने आचार से विमुख होगे।
५ देव विमान गिरता हुआ	भविष्य मे चारण ऋद्धिधारी मुनि नही होगे।
६ कूडे मे कमल उगता हुआ	सयम धर्म केवल वैश्य जाति मे रहेगा। ब्राह्मण और क्षत्रिय भ्रष्ट हो जावेंगे।

७ नाचते हुए भूत	नीच जाति के देवो मे भाव होगे तथा जैन धर्म का ह्रास होगा।
८-९ सूखा हुआ सरोवर तथा दक्षिण दिशा की ओर जल	जहा-जहा तीर्थंकरो के कल्याणक हुए हैं वहा वहा इने गिने जैनधर्मावलम्वी रहेगे। जैन धर्म दक्षिण मे रहेगा।
१० चमकते हुए कीट	भविष्य मे जैन धर्म कम हो जावेगा तथा अधिकाश लोग मिथ्या धर्मों का से वन करते रहेगे।
११ सोने के वर्तन मे दूध पीता हुआ कुत्ता।	ऊची जाति मे लक्ष्मी नही होगी लेकिन नीच जाति के लोग लक्ष्मी का उपभोग करेंगे।
१२ हाथी पर वैठा हुआ वन्दर	नीच जाति के हाथ मे शासन होगा तथा क्षात्रिय उसकी सेवा करेंगे।
१३ सीमा को लाघता हुआ समुद्र	राजा न्याय का मार्ग छोड देगा तथा प्रजा को लूटकर खायेगा।
१४ रथो मे वैलो के स्थान पर घोड़े	युवा दीक्षा लेंगे तथा वृद्ध माया मे फंसे रहेगे।
१५ धूल से ढकी हुई रत्नों की राशि	पचम काल मे साधुओ मे परस्पर मे विरोध रहेगा।
१६ जूझते हुए काले हाथी	पंचम काल मे दिन प्रतिदिन कष्ट वढेंगे तथा समय पर वृष्टि नही होगी।

स्वप्नो का फल जान कर सम्राट चन्द्रगुप्त को जगत से वैराग्य हो गया और चैत्र सुदी ११ को अपने पुत्र को राज्य भार सौंप कर मुनि दीक्षा धारण कर ली।

रचना काल—कृति मे न रचनाकाल दिया हुआ है और न रचना का स्थान। केवल कवि ने अपने नाम का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

जिण पुराण माहि इम सुणी, ताहि विधि ब्रह्म रायमल भणी ॥२५॥

कृति मे २५ पद्य हैं उनकी यह प्रारम्भिक रचना लगती है। राजस्थानी शैली की इसमें प्रमुखता है।[1]

---

१ आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर, गुटका सख्या ४, पत्र सख्या ८४ से ८६ सवत् १७२४ लिखित प० लिखमीदास।

१३. जम्बू स्वामी चौपई

ब्रह्म रायमल्ल का यह विना सवत् वाला प्रवन्ध काव्य है। इसमे भगवान् महावीर के पश्चात् होने वाले अन्तिम केवली जम्बू स्वामी के जीवन का वर्णन किया गया है। जम्बू कुमार एक श्रेष्ठि के पुत्र थे जिन्होने अपनी नव विवाहित आठ पत्नियो को छोड़ कर जिन दीक्षा धारण करली थी और अन्त मे घोर तपस्या के पश्चात् निर्वाण प्राप्त किया था। जम्बू स्वामी का जीवन जैन कवियो के लिये पर्याप्त आकर्षक रहा है इसलिये सभी भाषाओ मे इनके जीवन पर आधारित काव्य मिलते हैं।

प्रस्तुत कृति की एक मात्र पाण्डुलिपि जयपुर के दि जैन मन्दिर सघीजी के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे सग्रहीत है[1]। लेखक ने जव सन् १९५८-५९ मे इस मन्दिर के शास्त्रो की सूची वनायी थी तव उक्त रचना को देख कर उसका परिचय लिखा था। उस समय गुटके से विशेष नोटस् नही लिये जा सके लेकिन वर्तमान में वह गुटका अपने स्थान पर काफी खोज करने के पश्चात् भी उपलब्ध नही हो सका। इसी खोज मे ग्रथ प्रकाशन का कार्य भी कुछ समय के लिये वन्द रखा गया लेकिन उसे ढूढने मे सफलता नही मिल सकी। इसीलिये यहा कृति के नामोल्लेख के अतिरिक्त विस्तृत परिचय नही दिया जा सका। भविष्य मे प्रस्तुत कृति या तो इसी भण्डार मे अथवा अन्यत्र किसी भण्डार मे उपलब्ध हो गयी तो उसका विस्तृत परिचय देने का प्रयास किया जावेगा।

१४ चिन्तामणि जयमाल

यह स्तवन प्रधान कृति है जिसकी एक प्रति जयपुर के दि जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार के गुटके मे सग्रहीत है।[2] भरतपुर के पचायती जैन मन्दिर मे भी इसकी एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है।[3]

---

१ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रथ सूची चतुर्थ भाग पृष्ठ सख्या ७१०

२ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रथ सूची चतुर्थ भाग पृष्ठ सख्या

३ „ पचम भाग „ १०५७

१५ नेमिनिर्वाण

यह भी लघुकृति है जिसमे २२ वे तीर्थंकर नेमिनाथ का स्तवन मात्र हैं। उसकी एक प्रति अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत हैं।

मूल्यांकन—इस प्रकार महाकवि ब्रह्म रायमल्ल ने हिन्दी जगत् को १५ कृतिया भेंट करके साहित्य सेवा का एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। राजस्थान के ऐसे शास्त्र भण्डारों मे जिन्हे हम नही देख सके हैं, हो सकता है और भी कृतिया मिल जावें। श्री महावीर क्षेत्र की ओर से प्रकाशित ग्रन्थ सूचियों मे ब्रह्म रायमल्ल के नाम से कुछ रचनायें और भी दी हुई हैं लेकिन कृतियो के गहन अध्ययन के पश्चात् वे ब्रह्म रायमल्ल की नही निकली। ऐसी कृतियो मे आदित्यवार कथा[1] एव छियालीस ठाणा[2] चर्चा के नाम उल्लेखनीय हैं। महाकवि ने अपनी सभी कृतिया स्वान्त[1] सुखाय लिखी थी क्योकि अन्य जैन कवियो के समान कवि की कृतियो मे न तो किसी श्रेष्टि के आग्रह का उल्लेख है और न किसी भट्टारक के उपदेश का स्मरण किया है। ग्र थ प्रशस्तियो मे कवि ने अपने गुरु का, रचना समाप्ति काल वाले नगर का, नगर के तत्कालीन शासक का और वहा के जैन समाज, मन्दिर तथा व्यापार आदि की स्थिति का सामान्य उल्लेख किया हैं लेकिन वह अत्यधिक सक्षिप्त होने पर भी इतिहास की कडियो को जोड़ने वाला है तथा तत्कालीन सामाजिक एव आर्थिक दशा की ओर प्रकाश डालता हैं। साथ ही मे वह कवि के घुमक्कड जीवन का भी द्योतक है।

महाकवि की सभी रचनाए कुछ सामान्य अन्तर लिये हुये एकसी शैली मे लिखी गयी हैं। सात लघु रचनाओ के विषय मे तो हमे कुछ नही कहना क्योकि वे रचनायें प्राय सामान्य स्तर की है और काव्य की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण भी न्हीं है। शेष आठ रचनाए सभी वडी रचनायें हैं और वे कवि की काव्य प्रतिभा की परिचायक हैं। ये सभी रचनायें रास शैली मे लिखी गयी हैं चाहे उनके नाम के आगे रास लिखा हो अथवा चौपई एव कथा लेकिन सभी रचनाओ मे कवि ने पाठको की स्वाध्याय शक्ति का अधिक ध्यान रखा है और अपनी काव्य प्रतिभा लगाने का काम। इन सभी काव्यो को देश एव समाज मे काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई क्योकि राजस्थान के जैन ग्रथागारो मे ब्रह्म रायमल्ल के काव्यो को दो चार नही किन्तु पचासो प्रतिया मिलती है। सबसे अधिक पाडुलिपिया भविष्यदत्त चौपई,

---

१ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रथ सूची चतुर्थ भाग पृष्ठ सख्या ७१२
२ वही पृष्ठ सख्या ७६५

श्रीपालरास, एवं नेमिश्वररास की मिलती है। जिससे इनकी लोकप्रियता का पता चलता है। आठ वडी रचनाओ मे 'जम्बू-स्वामी रास' की एक पाडुलिपि जयपुर के सघीजी के मन्दिर मे संग्रहीत थी। लेखक ने सघीजी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार की ग्रथ सूची वनाते समय उक्त रचना को नोट किया थी और उसका परिचय भी दिया था लेकिन पर्याप्त प्रयास करने पर भी वह पाण्डुलिपि प्राप्त नही हो सकी। परमहस चौपई की सारे राजस्थान मे केवल दो भण्डारो मे पाडुलिपि प्राप्त हो सकी हैं। वे भण्डार है दौसा (जयपुर) एव अजमेर का भट्टारकीय भण्डार। सभी लघु रचनायें गुटको मे अन्य पाठो के साथ सग्रहीत है।

भाषा की दृष्टि से

भापा की दृष्टि मे महाकवि ब्रह्म रायमल्ल को राजस्थानी भाषा का कवि कहा जायेगा। लेकिन यह राजस्थानी ढू ढाड प्रदेश की भापा हैं मारवाड एव मेवाड भाषा की नही। इसके अतिरिक्त यह राजस्थानी काव्यगत भाषा न होकर वोलचाल की भाषा है। शब्द एव क्रियापद स्थिर न होकर वदलते रहते हैं। कवि ने रास सज्ञक, कथा सज्ञक एव चौपई सज्ञक सभी कृतियो मे इसी वोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। भाषा इतनी मधुर, स्वाभाविक एव सरल है कि थोडा भी पढा लिखा व्यक्ति कवि के काव्यो का सहजता से रसास्वादन कर कर सकता है। पद्यो के निर्माण मे स्वाभाविकता है। उसका एक उदाहरण देखिये—

हो जादी बोल्या नारद स्वामी, हो तुम तौ जी छौ आकास्यां गामी।
दीप अढाई संचरौ जी, हो पूरव पश्चिम केवल ज्ञानी।
चोथो काल सदा रहेजी, हो तहको हमस्यौं कहिज्यौ बातो ॥११०॥[1]

इसी तरह एक स्थान पर 'हो हमने जी सीख देण तू लागी' राजस्थानी भापा पाठ का सुन्दर उदारण है[2]। कवि ने शब्दो एव कियापदो को राजस्थानी वोलचाल की भाषा मेपरिवर्तित करके उनका काव्यो मे प्रयोग किया है। ऐसे क्रियापदो मे जाणिज्यौ (श्रीपाल रास/७१) आणिस्यौ (श्रीपाल रास/७३) ल्यायो (प्रद्युम्न रास/६८) ल्याया (नेमीश्वर रास/२३) आइयो (श्रीपाल २०६) सुण्या (श्रीपाल/२१०) जैसे पचासो क्रियायें है। कवि ने इसी तरह राजस्थानी शब्दो का प्रयोग

---

१ प्रद्युम्नरास पद्य सख्या १०
२ वही पद्य सख्या १६

बहुलता से किया है जिनके कारण काव्यो मे सरसता आ गयी है। कुछ शब्द निम्न प्रकार हैं—

हिन्दी शब्द	राजस्थानी शब्द
उज्जयिनी	उजेणी[3]
दहेज	डाइजो[4]
जिनालय	जिणालै[5]
श्रावक	सरावक[6]
स्नान	सनान[7]
पुष्प	पहुप[8]
पीछे	पछै[9]
स्त्री, पत्नी	तीया[10]
यौवन	जोबन[11]
जीमनवार	ज्यौणार[12]
जामाता	जवाइ[13]
विधवा	राड[14]

---

३ हो तिह मैं मालव देश विसाल, उजेणी नग्री भली ।।श्रीपाल।।६।।
४ हो दीयो डाइजो अधिकु सुचार ।।श्रीपाल रास।।४०
५ गड जिणालै जगनाथ वही/४२
६ हो धर्म सरावक जती कौ सुणौ वही/४६
७ करे सनान लए भरि नीर ,, /५०
८ चंदन पहुप लगाए अग ,, /५३
९ पछै आप भोजन करै ,, /६०
१० हो तिया सहित राजा सिरीपाल श्रीपालरास/७०
११. नाथि तिया सुम जोबन वाल ,, ११२
१२. सिरीपाल दीनी ज्यौणार ,, ११३
१३ राज जवाइ इहु सिरिपाल ,, ११८
१४. हो देस्यौ रांड तणो व्यवहारो ,, १३४

वणिक	वाण्या[15]
ज्योतिषि	जोतिगी[16]
सास	सासु[17]
प्रद्युम्न	परदवण[18]
पृथ्वी	पीरथी[19]
स्वर्ग	सुर्ग[20]
अप्सरा	अपछरा[21]
बहिन	बहण[22]
चुपके	छानै[23]
दुर्योधन	दरजोधन[24]
युद्ध	ज्भुज्भ

करण कारक मे 'से' के स्थान 'स्यौ' का प्रयोग किया गया है तथा हमस्यौ, कलत्रस्यौ कतस्यौ, बहुस्यौ, गुरुस्यौ आदि का प्रयोग कवि को अधिक प्रिय रहा है। सख्या वाचक शब्दो मे पहलौ[1], दूजा[2], तीजा[3], चौथा[4] जैसे शब्द प्रयोग मे आये हैं।

कवि ने अपने काव्यो मे कुछ ठेठ राजस्थानी शब्दो का प्रयोग किया है जिससे काव्य रचना मे एव शब्दो के चयन मे स्वाभाविकता आयी है। कुछ शब्द निम्न प्रकार है—

१ सवासिणी[5]—राजस्थान मे इस शब्द का दूल्हा दुल्हिन की विवाहित बहिनें

---

१५ जो सुण्या वचन जे वाण्या कह्या	श्रीपालरास	१४६
१६ हो लीयो राइ जोतिगी बुलाइ	,,	१६४
१७ हो सु दरि वात सासुस्यौं कही	,,	२२६
१८ रास भणौ परदवण को जी	प्रद्युम्न रास	१
१९ नारद पीरथी सहु फिरीजी	,,	
२०–२१ सुर्ग अपछरा सारिखी जी	,,	२१
२२ हो रुपि वहण जै होइ कवारी	,,	३२
२३ हो दरजोधन घरि लेख पठायो	,,	६०
२४ विद्या ज्भुज्भ कियो घणो जी	,,	१३२

के लिये प्रयोग किया जाता है। सवासिणी का विशेष सम्मान होता है तथा उसे दुल्हिन की विशेष सम्हाल करनी पडती है।

२ कुकरो[6]—यह शब्द कुत्ते के लिये प्रयुक्त होता है। गावों मे कुत्ते को आज भी कूकरा ही कहा जाता है।

३. छाने[7]—जो कार्य दूसरो के द्वारा बिना देखे किया जाता है उसे छाने-छाने काम करना कहा जाता है।

४. राड[8]—विधवा स्त्री/राजस्थान मे किसी महिला को रांड कहना गाली देने के बराबर है।

५. ढोकना—नमस्कार करना[9]

६. लुगाई—स्त्री/महिला[10]

७ ज्यौणार—सामूहिक भोजन[11]

८ वीलाई—बिल्ली[12]

महाकवि ब्रह्म रायमल्ल के काव्यो को हम निम्न भागो मे विभाजित कर सकते हैं —

१ पौराणिक

२ ऐतिहासिक

३. आध्यात्मिक

४ सामाजिक

५ लघु काव्य

---

१ हो पहलौ जी राजा अवीक वृष्टि प्रद्युम्नरास ६

२ हो दूजा जी पराउ जिण की वाणो ,, २

३ हो तीजा जी पराउ गुरु निरगथो ,, ३

४ चौथो काल सदा रहेजी.......। ,, १०

५ गावै हो गीत सवासिणी, नाचै जी अप्छरा करिवि सिंगार ।।नेमीश्वररास।।१४।।

६ कुकरो कान ते झाडिया अहो गई जी वीलाई ।।नेमी।।६०

७ हो राणी भणै राउ डर मानै, हो विद्या तीनि लेहु द्यौ छाने ।।प्रद्युम्नरास।।११६

८ राजा मन मे चिंतवै जी, हो देखौ राडि तणा व्यौहारो ।।१२२, प्रद्युम्नरास।।

९ चरण माता का ढोकिया जी

१० हो तौलग भामा नारि पठाई, हो गावै गीत द्वारिका लुगाई ।।प्रद्युम्न।।१५

११ हो सति भामा घरि गयो कुमारो, भानुकुमार व्याह ज्यौणारो ।।प्रद्युम्न।।१४४

१२ अहो गई जी विलाई मारग काटि ।। नेमीश्वर रास ।।६०।।

पौराणिक—कवि के पौराणिक काव्यो मे श्रीपालरास, नेमीश्वररास, हनुमतकथा, प्रद्युम्नरास एव सुदर्शनरास के नाम लिये जा सकते हैं। इन सभी काव्यो के नायक पौराणिक है और जिनकी कथा वस्तु का आधार महापुराण, पद्मपुराण और हरिवशपुराण जैसे पुराण हैं लेकिन स्वय कवि ने अपने काव्यो मे कथा का आधार नही बतलाया है। इसका प्रमुख कारण इन कथाओ को लोकप्रियता का होना है। कवि ने कही कथा का सक्षिप्तीकरण कर दिया है तो कही कथा को विस्तृत रूप देकर उसमे काव्यात्मक चमत्कार पैदा करना चाहा है। यद्यपि इन काव्यो मे कथा वर्णन कवि का मुख्य ध्येय रहा है लेकिन अपने काव्यो को लोकप्रिय बनाने के लिये उनमे भक्तिरस, शृ गाररस, एव वीररस का पुट दिया है और उससे सभी काव्य आकर्षक बन गये हैं। नेमिनाथ २२ वें तीर्थंकर है वे तो निर्वाण प्राप्त करते ही हैं किन्तु श्रीपाल, हनुमान, प्रद्युम्न एव सुदर्शन सभी नायक जीवन के अन्त मे वैराग्य धारण कर तथा घोर तपस्या करके निर्वाण प्राप्त करते हैं। इन सभी के जीवन मे अनेक बाधाए आती हैं। श्रीपाल और प्रद्युम्न को तो जीवन मे अनेक विपत्तियो का सामना करना पडता है लेकिन उनकी जिनेन्द्रभक्ति मे प्रबल आस्था होने के कारण उन्हे सभी विपत्तियो से मुक्ति मिलती हैं। सुदर्शन को तो सूली पर चढाने के लिये ले जाया जाता है लेकिन उसे भी अपने पूर्वोपार्जित कर्मो एव जिनेन्द्र भक्ति के कारण चमत्कारिक रीति से सूली के स्थान पर सिंहासन मिलता है। यद्यपि इनकी कथा का आधार पुराण है लेकिन काव्य मे सभी लौकिक एव सामाजिक तत्व विद्यमान है।

ऐतिहासिक—जम्बू स्वामी भगवान महावीर की परम्परा मे होने वाले अन्तिम केवली हैं जिन्हे इस युग मे निर्वाण की प्राप्ति हुई थी। मगध प्रदेश की राजधानी राजगृह के एक श्रेष्ठी के यहा जम्बू कुमार का जन्म हुआ। बचपन मे ही सधर्मा स्वामी के उपदेश से प्रभावित होकर विरक्त हो गये। अपने कुटुम्बियो के आग्रह पर उन्होने विवाह तो किया लेकिन विवाह के कुछ ही समय पश्चात् उन्होंने मुनि दीक्षा ले ली और ४० वर्ष तक देश के विभिन्न भागो मे विहार करने के पश्चात् चौरासी मथुरा से निर्वाण प्राप्त किया। कवि ने अपने इस रास काव्य मे तत्कालीन ऐतिहासिक तथ्यो का उल्लेख नही किया है।

आध्यात्मिक—परमहस चौपई कवि का सबसे उत्कृष्ट रूपक काव्य है जिसके परमहस नायक हैं तथा चेतना नायिका है। अन्य पात्रो मे माया, मन, प्रवृत्ति एव निवृत्ति, विवेक एव ज्ञानावरणादि अष्ट कर्म हैं। कवि ने अत्यधिक व्यवस्थित रूप से अपने पात्रो को प्रस्तुत किया है। काव्य का प्रमुख उद्देश्य मानव को असत् को

हटा कर सत् की ओर ले जाना है। यही नही मिथ्यात्व के दोषो को बतलाना भी कवि का उद्देश्य रहा है। पाप नगरी एव पुण्य नगरी के भेद को कवि ने बहुत ही स्पष्ट शब्दो मे प्रस्तुत किया है।

सामाजिक

राजा महाराजाओ अथवा तीर्थंकरो को काव्य का नायक बना कर उनके गुणानुवाद के अतिरिक्त सामान्य मानव के जीवन को लेकर काव्य रचना करना जैन कवियो की विशेषता रही है। ये वर्ग विहीन काव्य रचना मे विश्वास रखते है तथा किसी भी जाति एव वर्ग मे पैदा होने पर भी यह मानव जीवन के उच्चतम ध्येय को प्राप्त कर सकता है इसका दिग्दर्शन कराना जैन कवियो को अभीष्ट रहा है। वैसे तो प्रायः सभी काव्यो मे समाज के वातावरण, रीति-रिवाज एव परम्पराओ का वर्णन रहता है लेकिन कुछ काव्यो मे उक्त बातो का विस्तृत वर्णन मिलता है। भविष्यदत्त चौपई, जम्बूस्वामी चौपई जैसे काव्य इस शैली की प्रमुख कृतियां हैं। कवि ने इन काव्यो मे तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का जो स्पष्ट वर्णन किया है उससे यह काव्य अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर सके है। सामाजिक काव्यो के अतिरिक्त इनको हम जन सामान्य के काव्य भी वह मानते है। जैन कवि प्रत्येक आत्मा मे परमात्मा का रूप देखते हैं और प्रत्येक आत्मा से इसी परमात्मा पद को प्राप्त करने का आह्वान करते हैं।

विविध

ब्रह्म रायमल्ल ने प्रबन्ध काव्यो के अतिरिक्त कुछ लघु कृतिया भी निबद्ध की थी। ऐसी रचनाओ का विपय एक ही तरह का न होकर विविध है। निर्दोष सप्तमी कथा मे सप्तमी व्रत के महात्म्य का वर्णन है तो चिन्तामणी जयमाल स्तुति परक है। चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न घटना परक है तो पच गुरु की जयमाल पूजा सज्ञक रचना है। कवि ने अपनी लघु रचनाओ को विविध आख्यानो से निबद्ध किया है इसलिए सभी ६ लघु कृतियो को हम इस श्रेणी की रचनाओ मे रख सकते है।

भक्ति परक अध्ययन

महाकवि ब्रह्म रायमल्ल का युग भक्तिकाल का चरमोत्कर्ष युग माना जाता है। सूरदास, मीरा, तुलसीदास जैसे भक्त कवि ब्रह्म रायमल्ल के समकालीन कवि थे। सभी भक्त कवि उस युग मे अपनी लेखनी एव वाणी से जन-जन को राम एव कृष्ण भक्ति मे डूबो रहे थे तथा सगुण भक्ति धारा मे आप्लावित करके देश मे एक नया वातावरण बना रहे थे। उन भक्त कवियो ने उस युग मे ऐसा सबल एव

विस्तृत प्रवाह सचालित किया कि उसकी लपेट मे न केवल वैष्णव एव जैन ही आये किन्तु देश मे रहने वाले मुसलमान एव अन्य जातियो के सदस्य भी उसी राग मे अलाप लगाने लगे। जैन कवियो ने जिनेन्द्र भक्ति की ओर जिन भक्तो को आकृष्ट किया तथा वे अपनी कृतियो मे जिन भक्ति की सार्थकता को सिद्ध करने मे लगे रहे। ब्रह्म रायमल्ल के अतिरिक्त भट्टारक रतनकीर्त्ति भट्टारक कुमुदचन्द्र जैसे सतो ने भी जिन भक्ति को धार्मिक क्रियाओ मे सर्वोच्च स्थान दिया। १७ वी शताब्दी के पश्चात् जितने भी जैन कवि हुये सभी ने किसी न किसी रूप मे भगवान के गुणानुवाद करने पर बल दिया तथा भक्ति रस से ओत प्रोत पदो की रचना की।

ब्रह्म रायमल्ल पूरे भक्त कवि थे। जिनेन्द्र भगवान की पूजा, स्तवन एव गुणानुवाद करने मे उनकी पूर्ण श्रद्धा थी। जिन भक्ति को प्रदर्शित करने के एक मात्र साधन काव्य रचना मे उनका अटूट विश्वास था। उन्होने अपने काव्यो को तीर्थंकरो की स्तुति एव वन्दना से आरम्भ किया है। यही नही अपने आपको अपढ अयाण कह-कर जिन भक्ति के प्रसाद को ही काव्य रचना मे सहायक बतलाया है। ब्रह्म रायमल्ल कहते हैं कि न तो उन्होने पुराण पढे हैं और न वे तर्क शास्त्र एव व्याकरण पढ सके है। बुद्धि भी अल्प है इसलिए वह उनके गुणो का वर्णन कैसे कर सकता है।[1]

कवि ने श्रीपालरास मे सिद्धचक्र पूजा के माहात्म्य का विशद वर्णन किया है। जिन पूजा को पुण्य की खान स्वीकार किया है।[2] सिद्ध चक्र की पूजा करने से कभी रोग नहीं होता है। पूजा से शोक स्वयमेव विलीन हो जाता है।[3] सिद्ध चक्र को आठ दिन तक भक्ति एव श्रद्धा पूर्वक जो पूजा करता है उसको श्रीपाल के समान ही उत्तम फल की प्राप्ति होती है।

श्रीपाल जब बारह वर्ष की विदेश यात्रा पर जाने लगा तो मैना सुन्दरी ने उसे अरिहन्त भगवान का स्मरण करने का ही परामर्श दिया था,

---

१. स्वामी गुणह तुम्हारा तणौ विस्तार, स्वर नर फणि नवि पावै हो पार।
ते किम जाय मैं वर्णया, स्वामी हौ मुरिख अति अपढ अयाण।
ना मैं हो दीठा जी ग्रथ पुराण, तर्क व्याकर्ण मै ना भण्या।
स्वामी थोडी जी बुधि किम करो बखाण।।

२ जिणवर पूज पुण्य की खानि ।।श्रीपालरास।।५५।।

३ सिद्ध चक्र पूजा करी, हो रोग सोग नवि व्यापै काल ।।५७।।

हो सुन्दरि सीख देइ सुणि कंत, नाम राखि जे मनि अरहंत।
सत्य वचन अरहत का, हो गुरु वंदिज्यो महा निरंगव।
सिद्ध चक्र व्रत सेविज्यो हो सजम गीत चालिज्यी पंथ ।।रास।।७५।।

श्रीपालरास जिन पूजा एव भक्ति के सुफल का एक सुन्दर काव्य है।[1] काव्य मे कवि ने सम्यक्त्व की महिमा का विस्तृत वर्णन किया है तथा सम्यक्त्व को ही वैभव एव ऐश्वर्य मिलने मे मूल कारण वतलाया है।[2]

सुदर्शन रास मे मगलाचरण के रूप जो चौवीस तीर्थंकरो को वन्दना की गई है वह भक्तिरस से ओतप्रोत है। सेठ सुदर्शन को सूली से सिंहासन मिलना सेठ द्वारा भगवान की पूजा भक्ति आदि का स्पष्ट फल है। इसी तरह भविष्यदत्त चौपई मे भी आरम्भ मे सभी तीर्थंकरो का स्मरण किया है। मदनद्वीप मे भविष्यदत्त को जिन मन्दिर क्या मिला मानो चिन्तामणि रत्न ही मिल गया। भविष्यदत्त ने पहिले पूर्ण मनोयोग ने जिनेंद्र स्तवन किया और फिर अपने कष्टो को दूर करने की प्रार्थना की।

जै जै स्वामी जग आधार, भव ससार उतारै पार
तुम छौ सरणा साधार, मुझ संसार उतारै पार
भूला पथ दिखावण हार, तुम छौ मुकती तणा दातार ।।१६।।

जिनेन्द्र भगवान की जो अष्ट द्रव्य से पूजा करता है उसके जन्म जन्मान्तर के दु ख स्वयमेव दूर हो जाते हैं[3]। पुष्पो के साथ पूजा करने से श्रावक जन्म का वास्तविक फल प्राप्त होता है[4]। इसी प्रकार कवि ने सभी आठ द्रव्यो के वारे मे कहा है।

भविष्यदत्त जब मदन द्वीप मे अकेला रह जाता है तो जिनेन्द्र स्तवन करके ही दुखो को भूल जाता है[3]। भविष्यदत्त की स्त्री जब गर्भवती हो जाती है तो उसके

---

१ हो आठ दिवस करि पूजा रली, गयो कोढ जिम अहि कचुली।
कामदेव काया भइ हो अग रक्ष राजा सिरीपाल।
सिद्ध चक्र पूजा करि हो, रोग सोग न व्यापै काल ।।

२ हो समिकित सहित पुत्र तुम आथि. इह विभूति आई तुम साथि ।।

३ जाठ द्रव्य पूज्यै जिण पाइ, जन्म जन्म कौ दुख पुलाइ ।।११/४७

४ जिणवर चरण पहुप पूजिया, श्रावक जन्म तणा फल लिया ।।

तिलकपुर जाकर चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र की पूजा करने की इच्छा (दोहला) होती है[1]। हनुमत कथा मे भी प्रारम्भ मे चौवीस तीर्थकरो को स्तुति के साथ स्थान-स्थान पर जिन भक्ति की प्रशसा की गयी है। जिनेन्द्र भगवान की पूजा से शुभ कर्म का वन्ध एव अशुभ कर्म का क्षय होता है[2]। राजा महेन्द्र नदीश्वर द्वीप जाकर जिनेन्द्र भगवान से निर्वाण पथ का पथिक वनने की प्रार्थना करता है।

भगति वंदना तेरी करैं, मुकती कामणी निश्चै वरै।
नित उठि करैं तुम्हारी सेव ताकौ पूजै सुरपति देव।।५१।।
जिणवर मो परि करौ सनेह, कुगति कुशास्त्र निवारउ एह।
और न कछु मांगौ तुम्ह पास, देहु स्वामि वैकुंठह वास ५२/७४

लेकिन ब्रह्म रायमल्ल को जिन भक्ति किसी ससारिक स्वार्थ के लिये नही है। और न ही उसने अपनी भक्ति के वदले मे कुछ मागा है। जिनेन्द्र भक्ति तो पुण्योत्पादक है और पुण्य के सहारे सभी विपत्तिया स्वयमेव दूर हो जाती है। अभाव प्राप्ति मे वदल जाता है।

शृंगार परक वर्णन

जैन काव्यो का प्रमुख उद्देश्य पाठको को विरक्ति की ओर ले जाने का रहा है इसलिए हिन्दी जैन काव्यो मे प्रेम का पर्यवसान वैराग्य मे होता है यद्यपि काव्यो के नायक एव नायिका कुछ समय के लिये गार्हस्थ जीवन व्यतीत करते हैं, युद्धो मे विजय प्राप्त करते हैं, विदेश यात्राए करते हैं तथा राज्य सुख भोगते हैं लेकिन अन्त मे वे तीर्थंकर अथवा मुनि की शरण मे जाते है, उनका उपदेश सुनते हैं और अन्त मे ससार से उदासीन वन कर वैराग्य धारण कर लेते है। इसलिये जैन काव्यो का प्रमुख लक्ष्य न तो प्रेम दर्शन को अभिव्यक्त करना है और न दाम्पत्य प्रेम की महत्ता को काव्य का मुख्य विषय वनाना है। इन काव्यो मे प्रेम विवाद और कठिनाइयो का चित्रण अवश्य मिलता है लेकिन अन्त मे प्रेम की क्षणभगुरता दिखला कर वैराग्य की प्रतिष्ठा की जाती है।

---

१ सोग सवै छाडिउ तहि वार जिनवर चरण कियो जुहार।
गुणग्राम भास्या वहु भाइ, जहि थे पाप कर्म क्षो जाइ।। १८/३०

२ स्वामी मेरौ ऐसो भाउ, असौ तिलक पुर पट्टणि जाउ।
आठ भेद पूजा विस्तरो, जिणवर भवणि महीछौ करो।। २८/४८

२ कीजै पूज चरण जिनराइ, वधै धर्म अशुभ क्षो जाइ।। ३४/७२

लेकिन हिन्दी जैन काव्यो मे शृ गार परक तत्त्व अथवा वर्णन मिलता ही नही हो ऐसी बात हम नही कह सकते। जैन कवि प्रसगवश अपने काव्यो मे शृ गार का भी वर्णन करते हैं और कभी कभी उल्लेखनीय चुटकी लेते हैं। उनके काव्य सयोग वियोग शृ गार दोनो से ही युक्त होते है ब्रह्म रायमल्ल के सभी काव्यो मे शृ गार भावना का विकास देखा जा सकता है। कवि ने अपने प्रथम काव्य श्रीपालरास से लेकर अन्तिम रूपक काव्य परमहस चौपई तक किसी न किसी रूप मे शृ गाररस का वर्णन किया है और मानवीय भावनाओ को व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। इससे एक ओर काव्यो मे सजीवता आयी है तो दूसरी ओर मानव पक्ष को प्रस्तुत करने मे भी वे दूर नही रहे हे

श्रीपालरास मे धवल सेठ रैणमजूषा के रूप एव लावण्य को देख कर उसके साथ भोग भोगने की तीव्र लालसा से अपने मन्त्री से निम्न शब्दो मे विचार व्यक्त करता है —

हो रैण मजूसा सैवे क त, धवल सेठ अति पीसै दत।
नींद भूख तिरखा गइ, हो मत्री जोग्य कही सहु बात।
सुन्दरि स्यौं मेलौ करौ, हो कै हौं मरो करो अपघात ॥२२॥

धवल सेठ की दूती भी रैणमजूषा को निम्न शब्दो मे उसे समझाने लगती है—

भोग भोगउ मन तणा, हो मनुष्य जन्म ससारा आइ।
खाजे पीजे विलसीजे, हो अवर जन्म की कही न जाइ ॥३३॥

पवनजय जब अजना के सौन्दर्य के बारे मे सुनता हैं तो वह कामातुर हो जाता है और अन्न एव जल का त्याग कर बैठता है।[1] पवनजय का अजना के साथ विवाह तो हो जाता है लेकिन १२ वर्ष तक एक दूसरे से अलग रहते है। एक रात्रि को जब वह चकवा चकवी के विरहालाप को सुनता है तो उसे भी अजना का स्मरण हो आता है और वह भी विरहाकुल हो जाता है और अजना से मिलने के लिये तडफने लगता है।[2] ब्रह्म रायमल्ल ने कामातुरो का उस काव्य मे बहुत ही

---

१ पवनजय सुणि सु दरि रुप, सुर कन्या थे अधिक अनूप।
काम बाण वेधियो सरीर तजै तबोल अन्न अरु नीर ॥२॥

२ पवनजय सुनि पखणि बात, काम बाण तसु वेध्यो गात।
चिंता उपनी बहुत शरीर, रहे न चित्त एक क्षण धीर ॥४६॥

सुन्दर वर्णन किया है। कामी पुरुषो को अच्छा बुरा नही देखता। वडे वडे सुभट भी कातर दशा को प्राप्त हो जाते हैं। वह कामज्वर मे उसी तरह जलने लगता है जैसे अग्नि में घी डालने से अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। उसे अन्न-जल जहर के समान लगने हैं और अपनी प्रियतमा की कथा ही उसे अच्छी लगती है। वह कभी मूर्छित हो जाता है और कभी उसका शरीर शोक सतप्त हो जाता है। उसका मन एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता। वह अपने अगो को मरोडता रहता है। कभी वह जभाई लेता हैं तो कभी उसे नृत्य एव सगीत सुनने की इच्छा होती है।[1]

बारह मासा वर्णन

अन्य जैन कवियों के समान ब्रह्म रायमल्ल ने भी राजुल के शब्दों मे बारह मासा का वर्णन किया हैं। कवि का यह वर्णन काफी स्वाभाविक एव प्राकृतिक काम दशा के अनुकूल है। उसका वारह मासा श्रावण मास से आरम्भ होता है।

श्रावण मास—श्रावण मास मे घनघोर वर्षा होती हैं। मेघो की तीव्र गर्जना होती रहती है। मोर भी नाचने लगता है। ऐसी स्थिति मे राजुल नेमिनाथ से कहती है

पवन कुमार भणै तं क्षणी, सुनि हो मन्त्री वचह हम भणी।
चकई एक हि रात वियोग, भरै विलाप अधिक दुख सोग ॥५०॥
कहो अजना किम जीवसी, छाडे भये वर्ष द्वादसी।
अति अपराध भयो है मोहि, मुझ समान मूरिख नही कोई ॥५१॥

१ जब कामी नै व्यापै काम, जुगति अजुगति न जाणै ठाम।
चित उपजै वहुत सरीर, कातर होइ सुभट वरवीर ॥३॥
कामणि रूप सुणै जे नाम, कामी चित्त रहैं नवि ठाम।
काम बाण पीडै त क्षणा, सास उसास लेइ अति घणा ॥४॥
काम ज्वर व्यापै तसु एह, वैस्वानर जिम दाझै देह।
घडी एक चित्त थिर नहि देइ, मौडै अग जभाडी लेइ ॥५॥
जब कामी की होइ अवाज विष सम छाडै पाणी नाज।
जाकै शरीर काम को वास, कामणि कथा सुहावै तास ॥६॥
कामनि कारजि हि तणे अग, गीत नृत्य भावै तिण अग
काम वाण जौ हणै शरीर, मूर्छा आइ पडै वर वीर ॥७॥
व्यापै काम करै नर पाप, उपजै देह सोग सताप।
दुख भुजै रोवै नर जाम, जवहि आइ ऊपजै काम ॥८॥

कि उसके शरीर मे श्वास कैसे रह सकसी है इसीलिए वह भी उन्ही के पास रहेगी ।[1]

भाद्रपद मास—भाद्रपद मास मे भी खूब वर्षा होती है । नदी नालो मे खूब पानी वहता है । रात्रिया डरावनी लगती है । श्रावकगण इस मास मे व्रत एव पूजा करते हैं । ऐसे महिने मे है राजुल अकेली कैसे रह सकती है ?[2]

आसोज मास—आसोज मास मे पीछे वसरने वाला पानी वरसता है । इस मास मे पुरुष एव स्त्री के टूटे हुये स्नेह भी जुड जाते हैं । दशराहे पर पुरुष और स्त्री भक्ति भाव से दूध दही और घृत की धारा से जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते हैं । लेकिन हे स्वामिन् आप मुझे क्यो दुःख दे रहे हो ।

कार्तिक मास—कार्तिक मास पुरुप और स्त्री दोनो को उदीप्त करने वाला है । चारो ओर स्वच्छ जल भरा रहता है जो स्वादिष्ट लगता है । इस मास मे स्त्रियां अपना श्रृंगार करती है । इसी मास मे देवता भी सोकर उठ जाते है । जिनेन्द्र भगवान पूजा भी की जाती है । हे स्वामिन् हमे छोड कर क्यो दुख दे रहे हो ।

मगसिर मास–मगसिर मास मे अपने पति के साथ मे पत्नी को यात्रा करनी चाहिये । चारो प्रकार के दान देने चाहिये । रात्रिया वडी होती हैं और दिन छोटे होते हैं राजुल नेमिनाथ से कह रही है कि उसका दुख कोई नही जानता है ।

---

१ अहो सावणडौ वरसै सुपियार, गाजै हो मेघ अति घोर धार ।
असलस लावै जी मोरडा, अहो मेरी जी काया मैं रहै न सासु ।
नेमि सेथि राजल भणै, स्वामी छाडु हो नही जी तुम्हारो जी पास ।।८५

२ अहो भादवडौ वरसै असमान, जे ताहो व्रत ते ता तणौ जी थान ।
पूजा हो श्रावक जन रचौ, नदी हो नाला भरि चालै जी नीर ।
दीसै जी राति डरावणी, स्वामी तुम्ह विना कैसो हो रहे जी सरीर ।

अहो कातिग पुरिस तीया उदमाद रिमली पान पाणी घणा स्वाद ।
करौ हो सिंगार ते कामिनी, अहो उट्ठो जी देव जति तणा जोग ।
पूजा तो कीजै जी जिण तणी, स्वामी हमकु जी दुख तुम्ह तणो जी विजोग ।।८८

अहो मागिसिरा इक कीजै जी जात, तीरथ परिसि जै कत कै साथि ।
चहु विधि दान दीजै सदा, अहो राति वडी दिन वोछाजी होइ ।
नेमि सेथी राजल भणै, स्वामि मेरो हो दुख न जाणै जी कोइ ।।८९।।

पोष मास — पोष मास मे तीर्थकरो के कल्याणक होने के कारण नर नारी पूजा करते हैं। मोतियो से चौक पूरा जाता है। स्त्रियाँ अपना शृ गार करके भक्ति-भाव से जिनेन्द्र की भक्ति करती हैं। लेकिन मुझे तो विधाता ने दुःख ही दिया है।[1]

माघ मास — माघ मास मे खूब पाला पडता है। इस कारण वृक्ष और पौधे वर्फ से जल जाते है तथा नष्ट हो जाते हैं। हे स्वामिन् आपने तो मेरी चिन्ता किये बिना ही साधु-दीक्षा धारण कर ली। हे स्वामिन्! अब मुझ पर भी दया करो।[2]

फाल्गुन मास— फाल्गुण मास मे पिछली सर्दी पडती है। बिना नेमि के यह पापी जीव निकलता ही नही है, क्योकि दोनो मे इतना अधिक मोह हो गया है। तीनो लोको का सारभूत अष्टाह्निका पर्व भी इसी मास मे आता है, जब देवतागण नदीश्वर द्वीप जाते हैं।

अहो फागुणि पडै हो पछेता सीउ, नेमि विणा नीकसी पापी या जीव।
मोह हमारा तुम्ह तज्यो, अहो व्रत अष्टान्हिका त्रिभुवन सार।
दीप नंदिश्वर सुर करो, स्वामि हमस्यो जी असी करि हो कुमारी।९२।

चैत्र मास — जब चैत्र के महीने मे वसन्त ऋतु आती है तो वृद्धा स्त्री भी युवती बन कर गीत गाने लगती है। वन मे सभी पक्षी क्रीडा करते रहते हैं, क्योकि उन्हे चारो ओर सब फूल खिले हुए दिखते है। कोयल मधुर शब्द सुनाती रहती हैं इस प्रकार चैत्र मास पूरा मस्ती का महीना है। ऐसे महीने मे राजुल बिना नेमि के कैसे रह सकेगी।[3]

---

1. अहो पोस मै पोस कल्याणक होई, पूजा जी नारि रचै सहु कोई।
पूरै जी चौक मोत्या तणा, अहो करै जी सिंगार गावै नरनारि।
भावना भगति जिनवर तणी, अहो हमको जी दुःख दीन्हौ करतारि।९०।

२. अहो माघ मास घणा पडै जी तुसार, वनसपती दाझि सबै हुई छार।
चित्त हमारो थिर किम रहै, अहो तुम्ह तो जी जोग दिन्हौ वन आइ।
मेरी चिन्ता जी परहरी, स्वामि दया हो कीजै अब जादौ जी राई।९१।

३. अहो चैत आवे जब मास बसत, वूढी हो तरणी जी गावे हो गीत।
वन मे जी पख क्रीडा करे, अहो दीसै जी सब फूली वणराइ।
करौ हो सबद अति कोकिला, अहो तुम्ह विना किम रहै जादौ जी राय।९३।

वैशाख मास — वैसाख मास आने पर पुरुष और स्त्री मे विविध भाव उत्पन्न होते हैं। वन मे पक्षीगण क्रीडा करते हैं तथा स्त्रियां षट्रस व्यंजन तैयार करती हैं, लेकिन हे स्वामी ! आप तो घर-घर जाकर भिक्षा मागते हो। यह कजूसी आपने कबसे सीख ली ?[1]

जेठ मास — सबसे अधिक गर्मी जेठ मे पडती है। हे स्वामी ! घर मे शीतल भोजन है, स्वर्ण के थाल हैं तथा पत्नि भक्तिपूर्वक खिलाने को तैयार है। घर मे अपार सम्पत्ति है लेकिन पता नही आप दीन वचन कहते हुए घर-घर क्यो फिरते हैं। आप जैसे व्यक्ति को कौन भला कहेगा ?[2]

आषाढ मास — आषाढ आते ही पशु-पक्षी सब पर बना कर रहने लगते हैं तथा परदेश मे रहने वाले घर आ जाते हैं, लेकिन आपने तो अपनी जिद्द पकड ली है। आप पर मन्त्र-तन्त्र का भी कोई असर नही होता। इसलिए मेरी प्रार्थना अपने चित्त मे धारण करो।[3]

ब्रह्म रायमल्ल ने राजुल की व्यथा को बहुत ही संयत भाषा मे छन्दोबद्ध किया है। विरह-वेदना के साथ-साथ राजुल के शब्दों मे कवि ने जो अन्य धार्मिक क्रियाओ का तथा नेमिनाथ की मुनि क्रिया का उल्लेख किया है उससे राजुल के कथन मे स्वाभाविकता आ गई है। अन्त मे राजुल नेमिनाथ से यही प्रार्थना करती है कि इस जन्म मे जो कुछ भोग भोगना है उन्हे भोग ही लेना चाहिए क्योकि अगला जन्म किसने देखा है। वास्तव मे जब घर मे खाने को खूब अन्न है तो लघन करके भूखो

---

१. अहो मासि वैसाख आवै जब नाह, पुरिष तीया उपजै बहु भाउ।
वन मे हो पखि क्रीडा करैं, अहो छह रस भोजन सुदरि नारि।
भीख मागत घरि-घरि फिरै, स्वामी योहु स्याणप तुम्ह कौण विचार ।९४।

२ अहो जेठि मांसा अति तपति को काल, सीतल भोजन सोवन थाल।
करौ हो भगति अति कामिनी, अहो घर मैं जी सपदा बहुविधि होइ।
दीन वचन घरि घरि फिरै, स्वामि ता नरस्यो भलौ कहै न कोई ।९५।

३. अहो मास आसाढ आवै जब जाई, पसूहो पखि रहै सब घर छाई।
परदेसी घरा गम करैं, अहो तुम्ह नै जीदई लगाई वाय।
मत्र तंत्रानवि ऊतजी, स्वामि वात चित मै धरो जादो जी राई ।९६।

मरने से तो उल्टा पाप लगता है। इसके अतिरिक्त उस तरह मरने का भी क्या अर्थ है जिसको कोई लकडी देने वाला ही नही।[1]

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने काव्यो मे शृङ्गार रस की और भी चुटकिया ली है। रुक्मिणी जब नाग पूजा के लिए उद्यान मे गयी तो वही नाग बिंब के पीछे ही कृष्ण जी बैठे हुए थे। दोनो के नेत्र से नेत्र मिलते ही एक-दूसरे मे प्रेम हो गया।[2]

संभोग शृङ्गार

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने काव्यो मे सभोग शृङ्गार का भी अच्छा वर्णन किया है—

प्रद्युम्न की सुन्दरता पर कचनमाला मुग्ध हो जाती है और उसके साथ अपनी काम-पिपासा शान्त करना चाहती है तथा उसे महल मे बुला कर निर्लज्ज बन कर सब कुछ करने की प्रार्थना करती है—

हा भणै मयणस्यौ छोडी लाजो हो,
करि कुमार मन वांछित काजो।
हम सरि कामणि को नहीं जी।

ध्यान धरते हुए सेठ सुदर्शन को अभया रानी के महल मे ले जाया जाता है। वहां अभया रानी विनयपूर्वक सेठ से सभोग की जिस तरह इच्छा प्रकट करती है वह तो लज्जा की सीमा को ही पार करना है। अभया रानी पहले तो राग-रग करती है और फिर सुदर्शन से इच्छानुसार काम-क्रीड़ा करने के लिए कहती है।

अहो आइ जी अभया जी, बैठी हो पासि, रंग का वचन अति कहै जीवा सासि।
सफल जनम स्वामी तुम कीयो, अहो अब हम उपरी कीजे हो भाउ।
सुख मन वांछित भोगऊ, स्वामी माणस जनम को लीजे हो लाहु।१२३।

---

१. अहो अैसा जी बारह मास कुमार रिति रिति भोग कीजै अतिसार।
आवता जन्म को को गिणै, अहो घर मैं जी नाज खावानैं जी होय।
पापि लाघण करि मरी, स्वामि मुवा थे लाकडी देई न कोई।९७।
—नेमीश्वररास

२. हो सुणी वात हसि त खिणा उठिउ नेत्र नेत्रस्यो मिलि गया जी।४३।
—प्रद्युम्नरास

इसी प्रकार के और भी प्रसंग ब्रह्म रायमल्ल के काव्यो मे मिलते हैं। यद्यपि जैन हिन्दी काव्यो का प्रमुख उद्देश्य शृङ्गार रस का वर्णन करना नही रहा है और उन्होंने अपने काव्यो मे उसे विशेष महत्त्व भी नही दिया है किन्तु प्रसंगवश सयत शब्दो मे शृगार रस का वर्णन यत्र-तत्र अवश्य मिलता है।

वीर रस वर्णन

हिन्दी जैन काव्य शान्त रस प्रधान है। उनके नायक एवं नायिका युद्ध से सदैव वचने का प्रयास करते हैं। यद्यपि श्रीपाल, नेमिनाथ, राजुल, हनुमान सभी क्षत्रिय कुमार हैं तथा नेमिनाथ के अतिरिक्त वे शासन भी करते हैं लेकिन वे युद्ध-प्रिय नही होते हुए भी युद्ध से घवरा कर भागते नही है और आवश्यकता पड़ने पर युद्ध का सहारा भी लेते हैं। इन काव्यो मे ऐसे प्रसंग कितने ही स्थान पर आते हैं जहाँ कवि को युद्ध का वर्णन करना पडता है। भविष्यदत्त तो श्रेष्ठि पुत्र होने पर भी युद्ध मे विजय प्राप्त करता है।

युद्ध के सवसे अधिक प्रसग प्रद्युम्न के जीवन मे आते हैं लेकिन प्रत्येक बार ही निर्णायक युद्ध होने के पूर्व ही शान्ति हो जाती है। लेकिन उससे प्रद्युम्न के युद्ध कौशल अथवा वीरता पर कोई आच नही आती। वह अपने शत्रु को उसी प्रकार ललकारता है तथा युद्ध की तैयारी करता है। प्रद्युम्न तो अपने पिता श्रीकृष्ण जी से भी युद्ध भूमि मे ही अपनी वीरता दिखाने के पश्चात् मिलता है। प्रद्युम्न श्रीकृष्ण सहित वलराम और पांचो पाण्डवो को जिन शब्दो मे युद्ध के लिये ललकारता है वे वीर रस से ओत-प्रोत हैं—

हो अरजन कहै घनष धरा ए, हो तैंहि वैराटि छुडाई गाए।
जै वल छै तो आई ज्यो जी, हो भीम मल्ल तुम्ह बड़ा झुझारो।
रूपिणि वाहर लागि ज्यो जी, हो कै रालि घो गदा हथियारो।६९।
हो निकुल कुम्भ सोभै तुम्ह हाथे, हो कहि ज्यो वली पाडवां साथे।
अव वल देखो तुम्ह तणो जी, हो सहदेव ज्योतिग जाणै सारो।
कहि रूपिणि किम छुटी सी जी, हो इहि ज्योतिग को करहु विचारो।

प्रद्युम्न केवल शत्रु को लडाई के लिये ललकारता ही नही है किन्तु घनघोर युद्ध के लिये भी अपने आपको प्रस्तुत करता है—

विद्या दल सहु संजोईया जी, हो पहिली चोट पयादां आई।
पाछै घोडा घालीया जी, हो रूंड मुंड अति भई लडाई।७३।

हो असवारां सारैं असवारो, हो रथ सेथी रथ जुड़ैं झुझारो ।
हस्ती स्यौं हस्ती भिडैं जी, हो घणौं कहो तो होई विस्तारौं ।७४।

—प्रद्युम्नरास

श्रीपाल को भी राज्य प्राप्ति के लिए अपने ही काका वीरदमन से युद्ध का सहारा लेना पडता है । दोनो ओर से युद्ध की तैयारी होती है उसी का एक वर्णन देखिए—

हो भाटि मॉनियो रण संग्राम, आयो कोडी भड कैं ठाम ।
वात पाछिली सहु कही, हो सिंधूडा बाजिया निसाण ।
सूर किरणि सूझै नहीं हो उडी खेय लागी असमान ।५७।

हो घोडा भूमि खणैं खुरताल, हो जाणिकि उलटिउ मेघ अकाल ।
रथ हस्ती वहु साखती, हो दहूं पक्ष की सेना चली ।
सुभट सजोग संभालिया, हो अणी दुहूं राजा की मिली ।५८।

भविष्यदत्त तो श्रेष्ठि पुत्र था । लेकिन उसकी स्त्री को ही समर्पित करने के लिए पोदनपुर के राजा के दूत ने जव जोर दिया तो युद्ध के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहा । भविष्यदत्त स्वयं रणभूमि मे उतरा और युद्ध मे विजय प्राप्त की । इस युद्ध का एक वर्णन निम्न प्रकार है—

बात र बहुत भाजि दी पीठि, दंति तिणौ ले छूटौ नीठि ।
एक सुभट रण आधौ सरै, तूटौ सिर ठाडौ धड फिरै ।६२।
एक सुभट कै इहै सुभाउ, भागा जोग न घालै घाउ ।
उडै आघी अधिक असमान, भइ रणी हा गिध मसाण ।६३।

ब्रह्म रायमल्ल के काव्यो के सभी नायक वीर हैं । लेकिन क्षमा, धर्म उनके जीवन मे उतरा हुआ होता है । श्रीपाल भी समुद्री चोरो को विना दण्ड दिये ही छोड देता है जो उसके दया-भाव उदाहरण है—

हो छोड्या चोर बिनौ वहु कीयो, दया भाउ करि भोजन दीयो ।
मन वच काय क्षमा करी हो हाथ जोडि वोल्या सहु चोर ।
तुम समान उत्तम नहीं, हो हम पापी लोभी घण घोर ।६२।

प्रकृति वर्णन

जैन कवियो को प्रकृति वर्णन सदा अभीष्ट रहा है। महाकवि रल्ह ने अपने जिनदत्तचरित मे स्थान-स्थान पर वृक्ष, लता एव पुष्पो का बहुत ही उत्तम वर्णन किया है। ब्रह्म रायमल्ल ने भी अपने काव्यो मे अवसर मिलते ही प्रकृति का जो चित्रण किया है उससे काव्य की महत्ता मे तो वृद्धि हुई ही है साथ ही वह कवि के विशाल ज्ञान का भी परिचायक है। कवि ने जिन काव्यो मे प्रकृति चित्रण किया है उनमे भविष्यदत्त चौपई एव हनुमत कथा ये दो प्रमुख काव्य हैं।

विद्याधरो के देश आदितपुर के चारो ओर घना जगल था। विविध प्रकार के वृक्ष थे। नदी और सरोवर थे जिनमे कमल खिले हुए थे। कुवे और बावडिया थी जो जल से ओत-प्रोत थी। कवि ने कितने ही वृक्षो के नाम गिनाये हैं जो उस नगर की शोभा बढाते थे।

वन की सोभा अधिक विस्तार, राइ रिणमहु वाती दूचार।
बील कडह धौकै थकरीर, नीव कै वगुल जणि गहीर।४।

सालरि खैरवास काविडा, सीसौं सागवान हरडा।
कर्प्पर धामण वेर सुचंग, नींवू, जावू अर मातलिंग।५।

अमृतफल कटहल वहु केलि, मंडप चढी दाख की केली।
दार हरद आवलां पतग, चोच मोच नारिंग सुरंग।६।

धोल, सुपारी कमरख घणी, निंव जा आवां फणसंचिचिणी।
मरी विदाम लौंग अखरोट वहत जायफल फली समोट।७।
कुंजो मरवो साटी जाइ, वेलि सिहाली चपी राइ।

जुही पाडल वौलश्री कद, चंबोलीक नयर सुचकंद।८।

सिरफद फरणी कर वीर, चंदन अगर तह वाल गहीर।
केतकी केवडो वडो सुगंध, भमर वास रमहि अति अध।९।

अजना को गर्भ रहने पर उसकी सास ने घर से निकाल दिया। पिता के घर गयी लेकिन वहाँ भी उसे सहारा नही मिला। अन्त में उसने वन की राह ली। जो

अत्यधिक डरावना था। कवि ने उसका सुन्दर वर्णन किया है। कुछ पंक्तिया निम्न प्रकार हैं—

वन अति अधिक महा भैभीत, सावज सिंघ वसै परीत।
चीता रींछ स्याल शूकरी, ता वन मैं पहुती सुन्दरी।१४। ६०॥

—हनुमन्त कथा

कवि ने लका मे सीता के चारो ओर जो सुरम्य उद्यान था उसका वर्णन भी विभिन्न वृक्षो एव फल-फूलो के नाम देकर किया है—

नदन वन देख्यो व्योपाइ, फुलित फुलिति भई वनराइ।
कदली चोच आंव नारिंग, दाख छुहारी मामतु लिंग।
कमरख कटहल कैंथ अनार, लोंग बिदाम सुपारी चार।१५।

कुंजो मरवो जूही जाइ, केतकी महुवो महकाइ।
पाडल वकुल वेलि सेवती, वन सोभा दीसै बहु भंती।१६।

वन मे केवल वनस्पति ही नहीं होती वहा वन जीव भी होते हैं। महाकवि ने भविष्यदत्त चौपई मे इसी का एक वर्णन निम्न प्रकार किया है—

वन मै भीत अधिक असराल, सुवर संवर रोझनिमाल।
चीता सिंघ दहाडा घणा, बांदर रींछ महिष माकणा।१२४।

हस्ती जुथ फिरैं असराल, सारदूल अष्टापद वाल।
अजगर सर्प हरण संचरै, भवसदंत तिहि वन में फिरै।१२५।

भविष्यदत्त ने वन मे जाकर जिनेन्द्र भगवान की पूजा एव वदना की। कवि ने उस पूजा के लिए जो अष्ट मगल द्रव्यो के नाम गिनाये हैं उनमे प्राकृतिक वर्णन मे बहुत साम्यता है।

इस प्रकार और भी ब्रह्म रायमल्ल के काव्यों मे प्राकृतिक वर्णन हुआ है। जिससे काव्यो मे स्वाभाविकता एव सुन्दरता आयी है।[1]

---

१ घणो कहो तौ होइ विस्तार, जाति लाख दश वनस्पति सार।

राजनैतिक स्थिति

ब्रह्म रायमल्ल के जीवन का उत्कर्ष काल संवत् १६०१ से १६४० तक रहा। इस अवधि मे देश की राजनैतिक स्थिति मे बराबर परिवर्तन होता रहा। इन ४० वर्षो मे देहली के शासन पर एक के बाद दूसरे बादशाह होते गये। कुछ बादशाहो की तो स्वत: ही मृत्यु हो गयी और कुछ को युद्ध मे पराजित होना पडा। प्रारम्भ के १२ वर्षो मे शेरशाह सुरि एव सलीमशाह सूरि का शासन तो फिर भी स्थिर रहा लेकिन उसके पश्चात् देश मे अराजकता फैल गयी। सूरि वश का अन्त, हैमू का उदय एव अस्त, हुमायु द्वारा दिल्ली पर पुन: विजय एवं कुछ ही समय पश्चात् उसकी मृत्यु जैसी घटनाएँ घटती गयी और देश मे अराजकता के अतिरिक्त स्थायी शासन स्थापित नही हो सका। सवत् १६१३ (सन् १५५६) मे अकबर देहली के सिहासन पर बैठा लेकिन उसने भी अपने आपको मुसीवतो से घिरा पाया। चारो ओर अशाति थी। छोटे-छोटे शासन स्थापित हो रहे थे और उनमे भी परस्पर युद्ध हुआ करते थे। बादशाह अकबर ने देश मे स्थिर एव सशक्त शासन स्थापित करने मे सफलता प्राप्त की और वह दीर्घ काल तक देश के बड़े भाग पर शासन करता रहा।

राजस्थान के मेवाड़ के अतिरिक्त सभी राजाओ से अकबर ने मधुर सबध स्थापित किये। सर्वप्रथम उसने आमेर के तत्कालीन राजा भारमल्ल से मित्रता स्थापित की और उसे पांच हजारी का मनसब का पद दिया। भारमल्ल के पश्चात् राजा भगवन्तदास (१५७४–१५८६) आमेर के शासक बने। उनका भी मुगल दरबार से घनिष्ट सबध रहा। ब्रह्म रायमल्ल ने राजा भगवन्त के शासन का अपने काव्य 'भविष्यदत्त चौपई' मे उल्लेख किया है। कवि उस समय सागानेर मे थे जहा परस्पर मे पूर्ण सद्भाव एव व्यापारिक स्मृद्धि थी। वहा बहुत बडी जैन बस्ती थी। ढूंढार प्रदेश के अन्य नगरो मे भी शाति थी। जब कवि टोडारायसिह, झुझुनू, रणथम्भौर साभर एवं धोलपुर गये तो वहा भी कवि को किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नही करना पडा। कवि ने झुंझंनू के शासक के नाम का उल्लेख नही किया तथा साभर के शासक का नाम भी नही लिखा जिससे मालूम पडता है कि वे दोनो ही नगर के सामान्य शासक थे।

स्वय कवि ने अपने काव्यो मे तत्कालीन राजनैतिक स्थिति के बारे मे कोई विशेष उल्लेख तो नही किया जिससे यह तो कहा जा सकता है कि स्वय कवि को किसी विशेष अराजकता अथवा दमन का सामना नही करना पडा तथा वे जहां भी जाते रहे उन्हें शान्त एव धार्मिक वातावरण मिलता रहा।

कवि ने अपनी कृतियो मे जिन-जिन शासको का नामोल्लेख किया है वे हैं सम्राट अकबर, राजा भगवन्तदास एव राजा जगन्नाथ ।

सम्राट अकबर

देश के मध्यकालीन इतिहास मे सम्राट अकबर का नाम विशेषत उल्लेखनीय है । वह एक शक्तिशाली एव दृढ विस्तारवादी शासक था । उसने उदार नीति अपना कर हिन्दुओ का हृदय जीतने का प्रयास किया । और उसे पूर्ण सफलता भी मिली । वह सभी धर्मो का आदर करता था इसलिये उसने हिन्दुओ पर लगने वाला तीर्थ-यात्री कर एव जजिया कर समाप्त करने की घोषणा करके देश मे लोकप्रियता प्राप्त की । वह समय-समय धार्मिक सन्तो की विचार गोष्ठियाँ आमन्त्रित करता था और उनके प्रवचन सुनता था । जैनाचार्य हीरविजयसूरि, विजयसेनसूरि, भानुचन्द्र उपाध्याय भ० जिनचन्द्र एव तत्कालीन अन्य भट्टारको ने अकबर को जैन धर्म के सिद्धान्तो की ओर आकर्षित किया । जैनाचार्यो के प्रभाव से उसने पिंजडे मे बन्द पक्षियो को मुक्त कर दिया एवं शिकार खेलने पर पाबन्दी लगादी तथा स्वय ने मास खाना भी बन्द कर दिया ।[1] महाकवि बनारसीदास तो अकबर से इतने प्रभावित थे कि जब उन्होंने अकबर की मृत्यु के समाचार सुने तो वे एक दम बेहोश हो गये ।[2] ब्रह्म रायमल्ल ने श्रीपाल रास मे सवत् १६३० (सन् १५७३) के सम्राट अकबर के शासन का उल्लेख करके रणथम्भौर की सुख शान्ति का वर्णन किया है ।[3] पाण्डे जिनदास ने भी अपने जम्बूस्वामी चरित मे अकबर के सुशासन का उल्लेख किया है ।[4]

राजा भगवन्तदास

राजा भगवन्तदास आमेर के सवत् १६३१ से १६४६ तक शासक रहे । ये अकबर बादशाह के विश्वास एव कृपापात्र शासको मे से थे । राजा भगवन्तदास सवत् १६३९ से १६४६ तक पंजाब के गवर्नर रहे और लाहौर मे ही उनकी मृत्यु हो गयी । इनके १५ वर्ष के शासनकाल मे ढूंढाड प्रदेश मे जैन साहित्य एव जैन सस्कृति को शासन की ओर से अत्यधिक प्रश्रय मिला । उस समय प्रदेश मे भट्टारको का पूर्ण प्रभाव था । चम्पावती (चाटसू) मे सवत् १६३२ मे जब नरसेन कृत श्रीपालचरित की

---

१. अकबर महान, पृष्ठ सख्या २००
२. अर्ध कथानक
३ श्रीपाल रास—अन्तिम प्रशस्ति
४ प्रशस्ति सग्रह—सम्पादक डॉ० कासलीवाल, पृष्ठ सख्या २१३

पाण्डुलिपि हुई थी तो चन्द्रकीर्ति उस समय भट्टारक थे ।[1] इस ग्रन्थ की पार्श्वनाथ के मन्दिर मे प्रतिलिपि हुई थी । लिपिकार ने प्रशस्ति मे राजा भगवन्तदास एव भट्टारक चन्द्रकीर्ति दोनो का उल्लेख किया है । इसके एक वर्ष पश्चात् ही मालपुरा ग्राम मे जयमित्रहल के वर्धमान काव्य (अपभ्रंश) की प्रतिलिपि हुई थी । वहाँ श्रावको की अच्छी वस्ती थी ।[2]

ब्रह्म रायमल्ल ने जव सागानेर मे प्रवास किया तो उस समय राजा भगवन्तदास ही वहाँ के शासक थे । सागानेर उस समय व्यापार की दृष्टि से पूर्ण समृद्ध नगर था । सभी तरह का व्यापार था तथा नगर मे सुख शान्ति व्याप्त थी । निर्धन एव दुखी समाज को शासन की ओर से सहायता मिलती थी ।[3] सवत् १६३५ मे मालपुरा ग्राम मे "द्रव्य सग्रह वृत्ति" ग्रन्थ की प्रतिलिपि की गयी थी । प्रतिलिपि करने वाले साह कर्मा गगवाल ने लिखा है कि उस समय यद्यपि भगवन्तदास राजा थे लेकिन मानसिंह ही उनकी ओर से राज्य का शासन चलाते थे ।[4]

राजा जगन्नाथ राव

राजा जगन्नाथ टोडारायसिंह एव रणथम्भौर के शासक थे । ये आमेर के कछावा शासको मे से थे । वादशाह अकवर की इन पर पूर्ण कृपा थी । इन्होंने महाराणा प्रताप के विरुद्ध कितने ही युद्धो मे भाग लिया था ।

ब्रह्म रायमल्ल अपनी राजस्थान विहार के अन्तिम चरण मे सवत् १६३६ में टोडारायसिंह पहुँचा था । यही पर महाकवि ने परमहस चौपई की रचना की थी । प्रस्तुत चौपई उनकी अन्तिम रचना है । महाकवि ने टोडारायसिंह का जैसा वर्णन किया है उससे पता चलता है कि राजा जगन्नाथ वीर एवं प्रतापी शासक थे तथा दान देने मे वे जरा भी कजूसी नहीं करते थे ।[5] राजा जगन्नाथ के शासन काल में ही टोडारायसिंह नगर के आदिनाथ चैत्यालय मे पुष्पदन्त के आदिपुराण की प्रतिलिपि की गयी थी ।[6] जो भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति को भेंट देने के लिये लिखी गयी थी ।

---

१ प्रशस्ति संग्रह–पृष्ठ संख्या १७८

२. वही, पृष्ठ सख्या १७०

३. परजा लोग सुखी सुखी सुख, दुखी दलिद्री पुरवै आस ।

४ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग, पृष्ठ सख्या ३४

५ राज करै राजा जगन्नाथ, दान देत न खीचै हाथ ।

६ प्रशस्ति सग्रह–डॉ० कासलीवाल, पृष्ठ ८६

राजा जगन्नाथ के नाम का उल्लेख करने वाली राजस्थान के जैन ग्रन्थागारो मे आज भी पचासो ग्रन्थ सुरक्षित रखे हुये हैं।

सामाजिक स्थिति

सामाजिक दृष्टि से ब्रह्म रायमल्ल का समय अत्यधिक अस्थिर था देश मे मुस्लिम शासन होने तथा धार्मिक विद्वेपता को लिये हुये होने के कारण सामाज की स्थिति भी सामान्य नही थी। समाज पर भट्टारको का प्रभाव व्याप्त था और धार्मिक एव साहित्यिक क्षेत्र मे उन्ही का निर्देश चलता था। देहली के भट्टारक पट्ट पर भट्टारक धर्मचन्द्र (१५८१–१६०३) भट्टारक ललित कीर्ति एव भट्टारक चन्द्रकीर्ति विराजमान थे। महाकवि का सम्वन्ध यद्यपि भट्टारको से अधिक रहा होगा लेकिन उन्होंने अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व ही वनाये रखा।

ब्रह्म रायमल्ल के समय मे विवाह आदि अवसरो पर वडी-वडी जीमनवार होती थी। कवि ने ऐसी ही जीमनवारो का प्रद्युम्न रास, भविष्यदत्त चौपई एव श्रीपाल रास मे वर्णन किया है। जव प्रद्युम्न सत्यभामा के घर गया तो वहाँ भानुकुमार के विवाह का जीमन हो रहा था।

हो सति भामा घरि गयौ कुमारो, भानु कुमार व्याहु ज्योणारो ।। ४४ । ६३ ।

भविष्यदत्त जव वन्धुदत्त से वापिस आकर मिला तव भी मिलन की खुशी मे भविष्यदत्त ने जहाज के सभी वणिक पुत्रो को सामूहिक भोजन दिया था।

वाण्या सहित करी ज्यौणार, पान सुपारी वस्त्र अपार ।। ४४ । २६ ।

कवि ने उस समय के कुछ स्वादिष्ट व्यजनो के नाम भी गिनाये है। ये सभी स्वादिष्ट भोजन कहलाते थे और उसके खाने के पश्चात् तृप्ति हो जाती थी।

घेवर पचधारी लापसी, जहि नै जीमत अति मन खुसी।
उजल वहुत मिठाई भली, जहि ने जीमन अति निरमली ।।६३।।

खाय तोग्इ विजन भाति, मेल्या वहुत राइता जाति।
मूग मगोरा खानि दालि, भात पकस्यौ सुगधी सालि ।।६४।।

सुरहि घ्रित महा निरदोष जिमत होइ वहुत संतोष।
सिखरणि दही घोल बहु खीर, भवसदत जिमो वरवीर ।।६५।१४।।

श्रीपाल भी जब रैणमजूपा का विवाह करके अपने जहाज पर आया था तो उसने भी सभी को जिमाया था—

हे बिउहर मध्य भयो जैकार, सिरीपाल दीनी ज्यौणार ।।११३।१७।।

उस समय भी बरातें सज-धज के साथ चढती थी। बराती लोग आँखो मे कज्जल मुख मे पान, केशर चदन एव कु कम के तिलक लगाकर निकलते थे। बरात कभी-कभी एक-एक महिने तक रूकती थी।[1] दुल्हा सेहरा लगाते, गले मे मोतियों की माला पहिनते।[2] कानो और हाथो मे कुण्डल पहिनते। महाकवि ब्रह्म रायमल्ल ने श्रीपाल रास, प्रद्युम्नरास, हनुमन्त कथा, भविष्यदत्त चौपई एवं नेमीश्वररास सभी काव्यो मे एक से अधिक बार विवाह विधि का वर्णन किया है। सभी मे प्रायः एक सा वर्णन हुआ है। उसके अनुसार ब्राह्मण फेरे कराया करते थे। अग्नि, ब्राह्मण एवं समाज की साक्षी मे विवाह लग्न सम्पन्न होता था। श्रीपालरास मे इसी तरह का वर्णन निम्न प्रकार है—

हो लीयो राइ जोतिगी बुलाइ, कन्या केरो लगन लिखाइ।
मण्डप वेदी सुभ रची, हो अंब पत्र की बंधी माल ।।
कनक कलस चहुं दिसी बण्या, हो छाए निर्मल वस्त्र विसाल ।।१६४।।

हो गावै गीत तिया करि कोड, वस्त्र पटंबर वंधे मोड।
फूलमल सोभा घणी हो, चोवा चंदन वास चहोडि ।।
वेदी विप्र बुलाइयो हो, वर कन्या बैठा करि जोडि ।।१६५।।

हो भावरि सात फिरिउ चहुं वाषि, भयो विवाहु अग्नि दे साखि।
राजा दीनो डाइजो हो कन्या हस्ति कनक के काण।
देस ग्राम दीना घणा हो, विनती करि दीनो बहुमान ।।१६६।।

—श्रीपाल रास

राजघराने के विवाह के अतिरिक्त सामान्य नागरिको के यहाँ भी विवाह उसी तरह धूमधाम से सम्पन्न होते थे। दहेज देने की प्रथा उस समय भी खूब प्रचलित

---

१ हो मास एक तहा रही बरातो, भोजन भगति करी घणा जी ।।८३।।

२. अहो चढियौ जी व्याहण सिव देवि हो वाल, सोभा जी सेहुरौ मोत्या जी माल।
काना जी कुंडल जगमगै, अहो मुकट वण्यो हीरा जी लाल ।।नेमीश्वररास।।

थी। धनपति और कमलश्री के विवाह का वर्णन भी इसी प्रकार का है—

सेट्ठि वात मन में चितवई, पुत्री धनपति जोगै व दई ॥
मण्डप वेदी रच्या विसाल, तोरण बंध्या मोती माल ॥२७॥

दहु पक्ष वहु मंगलचार, कामिणि गावे गीत सुचार ।
वर कन्या कीन्हो सिंगार, चोवा चंदन वस्त्र अपार ॥२८॥

नाचै तिया करै वहु कोउ, वर कन्या के बांध्यो मोड ।
वेदी मंडप विप्र आइयो, वर कन्या हथलेवो दियो ॥

दुवै पक्ष नर बैट्ठा वासि, भयो विवाह अग्नि दे साखि ॥
पुत्री वरनै दिन्हो मान, कंचन वस्त्र मान सनमानु ॥२९॥

समाज में शिक्षा का प्रचार था। सात वर्ष के बालक को पढने भेज दिया जाता था। भविष्यदत्त चौपई मे सात वर्ष के भविष्यदत्त को पढने भेजने के लिया लिखा है।[1] जैन समाज व्यापारिक समाज था। वह राज्य सेवा मे जाने की अपेक्षा व्यापार करना अधिक पसन्द करता था। २० वर्ष से भी कम आयु के नवयुवक व्यापारी देश एव विदेश मे व्यापार के लिये निकल जाते थे। वे समूहो मे जाते। बधुदत्त एवं धवल सेठ के काफिले मे सैकडो व्यापारी नवयुवक थे।[2]

दहेज

विवाह मे कन्या पक्ष की ओर से दहेज देने की प्रथा थी। दहेज को 'डाइजा' कहा जाता था। श्रीपाल, भविष्यदत्त, पवनजय सभी को दहेज मे अपार सम्पत्ति मिली थी। दहेज मे हाथी, घोडा, स्वर्ण, वस्त्राभूषण, दास, दासी और कभी-कभी आधा राज्य भी दे दिया जाता था। लेकिन यह सब स्वत ही दिया जाता था। वर पक्ष की ओर से कोई मांग नहीं होती थी। यह अवश्य है कि उस समय भी माता-पिता को अपनी लडकी के लिये अच्छे वर प्राप्त करने की चिन्ता रहती थी। अजना

---

१. वालक सात वर्ष को भयो, पडित आगै पढणो दियो। —भविष्यदत्त चौपई।

२ अस्व हस्ती वहु डाइजो हो, वस्त्र पटंबर वहु आभर्ण ।
दासी दास दीया घणा हो, मणि माणिक्य जड्या सोवर्ण। श्रीपाल रास

के विवाह की उसके पिता को बहुत चिन्ता थी इसके लिये उसने अन्न जल और पान, भी छोड दिये थे।

चिन्ता अधिक भई सरीर, तज्या तबोल अन्न अरू नीर।
राज कुंवार देखे सब तेहि, बात विचारन आवै कोइ ।।५४।७४।

कभी-कभी वर के चयन के लिये राजा लोग अपने मन्त्रियो की सलाह लिया करते थे और उनमे से किसी एक वर के साथ राजकुमारी का विवाह कर दिया करते थे। अजना के लिये पवनजय का चयन आदित्यपुर के राजा महेन्द्र द्वारा इसी प्रकार से किया गया था।[1]

भट्टारकों का प्रभुत्व

समाज पर भट्टारको का पूर्ण प्रभाव था। उत्सव, विधान, पचकल्याणक प्रतिष्ठा समारोह, व्रतोद्यापन आदि के सम्पन्न कराने मे उनका प्रमुख योगदान रहता। इन समारोहो मे या तो वे स्वय ही सम्माननीय आध्यात्मिक सन्त के रूप मे सम्मिलित होते या फिर उन्ही के नाम से समारोह का आयोजन रहता था। भट्टारको के अतिरिक्त संघ की प्रमुख साधुओ मे मंडलाचार्य, ब्रह्मचारी आदि के नाम प्रमुख हैं। ये सभी ग्रन्थो की प्रतिलिपि करने का काम भी करते थे। सवत् १६३० अषाढ़ सुदी २ सोमवार को ब्रह्म रायमल्ल को भट्टारक सकलकीर्ति विरचित यशोधर चरित्र की पाण्डुलिपि भेंट की गयी थी। भेंटकर्त्ता थे ठाकुरसी एव उनकी धर्मपत्नी लखण।[2] राजस्थान मे भट्टारक चन्द्रकीर्ति सवत् १६२२ से १६६२ तक भट्टारक रहे। ब्रह्म रायमल्ल और भट्टारक चन्द्रकीर्ति समकालीन थे।

लेकिन व्रत उपवास एव प्रतिष्ठा विधान के अतिरिक्त समाज मे आध्यात्मिक साहित्य की भी मांग होने लगी थी। राजस्थान मे ढूंढाड प्रदेश और उसमे भी

---

१. सत्यजय मत्री इम कहै, उहि नै पुत्री दीजै नही।
राजा वात सुनी हम तणी, वर उत्तम मो जोग्य अजनी।
आदितपुर सोभै सुभमाल, कहै राज प्रहलाद भोवाल।
रानी केतमती घर भली, इन्द्र सरीसा जोडी मिली।
पवनजय तसु वडड कुमार, धर्म्मवत गुण समुद्र अपार।
काति दिवाकर सोभे देह, सोलह वरना चन्द्रमुख ।।

२ प्रशस्ति सग्रह–सम्पादक डॉ० कासलीवाल, पृष्ठ ५३

वैराठ एवं सांगानेर एव टोडारायसिंह तथा उत्तर प्रदेश में आगरा इसके प्रमुख केन्द्र थे । समयसार एव प्रवचन सार जैसे ग्रन्थो के स्वाध्याय की ओर लोगो की रूचि उत्पन्न हो रही थी । वैराठ मे पं० राजमल्ल ने समयसार पर टीका लिखने के पश्चात् ब्रह्म रायमल्ल ने परमहस चौपाई की रचना आध्यात्मिक भावना की प्रचार प्रसार की दृष्टि से की थी ।

भट्टारको के प्रोत्साहन के कारण राजस्थान मे प्रतिवर्ष कही न कहीं बिम्ब प्रतिष्ठा समारोहो का आयोजन होता रहता था । सवत् १६०१ से १६४० तक राजस्थान मे तीस से भी अधिक बिम्ब प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न हुई । इन समारोहो के दो लाभ थे । एक तो समूची समाज के कार्यकर्त्ताओ, विद्वानो, साधु सन्तो एव श्रावक-श्राविकाओ का परस्पर मिलना हो जाता था । एवं नव मन्दिरो का निर्माण कराया जाता था । यह इस बात का सकेत है कि आम जनता मे ऐसे समारोहो के प्रति कितनी रूचि एवं श्रद्धा थी । समाज मे प्रतिष्ठा कराने वालो का विशेष सम्मान होता था । इसके अतिरिक्त ग्रन्थो की प्रतिलिपि कराने की श्रावको मे अच्छी लगन थी । संवत् १६०१ से १६४० तक के लिखे हुये सैकड़ो ग्रन्थ राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारो में आज भी सग्रहीत हैं । ग्रन्थो की स्वाध्याय करने वालो, प्रतिलिपि कराने वालो अथवा स्वय करने वालो की ग्रन्थो के अन्त मे प्रशसा की जाती थी ।[1]

प्रमुख जैन जातियां

ब्रह्म रायमल्ल के समय मे ढूंढाड प्रदेश मे खण्डेलवाल एव अग्रवाल जैन जातियों की प्रमुखता थी । सागानेर, रणथम्भौर, सांभर, टोडार्यासिंह, धौलपुर जैसे नगर इन्ही जाति विशेष जैन समाज से परिपूर्ण थे । लेकिन देहली, रणथम्भौर, सांभर जैसे नगर खण्डेलवाल जैन समाज के लिये एव देहली एव झुंझुनु अग्रवाल जैन समाज के केन्द्र थे । स्वय कवि ने न तो अपनी जाति के बारे मे कुछ लिखा और न किसी जाति विशेष की प्रशसा ही की । हनुमत कथा में कवि ने श्रावको के सम्बन्ध मे जो वर्णन दिया है वह तत्कालीन समाज का द्योतक है—

श्रावक लोक वसै धनवत, पूजा करे जपै अरिहंत ।
उपरा ऊपरी वर्ण न कास, जिम अमरेंदु स्वर्ग सुखवास ।

---

१. लिहइ लिहावइ, पढइ पढावइ ।
जो मणि भावइ, सो णरू पावइ ।
बहुणिय घणहय, सासय सेपय ॥

ठांइ-ठांइ बहु कथा पुराण, ठाम-ठाम छै आही ठाण।
ठाम-ठाम दीजै बहु, दान देव सास्त्र गुर राखै माण ।।२१।।

धार्मिक तत्व

जैन काव्यो का प्रमुख उद्देश्य जीवन निर्माण का रहा है। जीवन का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना है इसलिये निर्वाण प्राप्ति मे जो साधन है उनका भी वर्णन रहना इन काव्यो की एक विशेषता रही है। जब तक मानव धार्मिक एव सैद्धान्तिक दृष्टि से समुन्नत नही होगा तब तक वह दिशा विहीन होकर इधर उधर भटकता रहेगा। यही कारण है कि अधिकाश जैन विद्वानो ने अपनी अपनी कृतियो मे फिर चाहे वह किसी भी भाषा मे निबद्ध क्यो न हो, जैन सिद्धान्त का वर्णन किया है और नायक नायिका के जीवन मे उन्हे पूर्ण रूप से उतारने का प्रयास किया है।

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने काव्यो मे सक्षिप्त अथवा विस्तार से जैन सिद्धान्तो का वर्णन किया है। श्रीपाल रास मे जैन सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन न करने पर भी श्रीपाल द्वारा मुनि दीक्षा लेने तथा घोर तपस्या करने का वर्णन मिलता है।[1] इसी तरह प्रद्युम्नरास मे भी भगवान नेमिनाथ द्वारा कैवल्य प्राप्ति का वर्णन करके द्वारिका दहन की भविष्यवाणी का उल्लेख किया गया है।[2] भविष्यदत्त कथा मे चारो गतियो (देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यञ्च)पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। काव्य मे इस वर्णन को धर्म कथा के नाम से उल्लेख किया गया है।[3] इसी काव्य मे आगे चल कर श्रावक धर्म का वर्णन किया गया है। जिसमे सप्त तत्त्व, नवपदार्थ, षट्द्रव्य, पचास्तिकाय पर सम्यक् श्रद्धा होना, ग्यारह प्रतिमा, बारह व्रत, अणुव्रत, पच समिति तीन गुप्ति, षट् आवश्यक, अठाईस मूलगुण आदि की विस्तृत चर्चा की गयी है। धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् सिद्धान्तो के वर्णन करने का प्रमुख उद्देश्य नायक के जीवन मे वैराग्य उत्पन्न करना है। भविष्यदत्त चौपई मे भविष्यदत्त निम्न प्रकार विचार करने लगा—

---

१ हो सिरिपाल मुनि तप करि घोर। तोडे कर्म्म घातिया चोर।

२. हो जिणवर बोलै केवलवाणी, हो वरस बारहै परलो जणी।
अग्नि दाझिलसी द्वारिका जी, हो दीपाइण वे लागै आगे।
नग्री लोग न ऊवरै जी, हो हलधर किस्न छूटि सो भाजै ।।८८।।

३. धर्म कथा स्वामी विस्तरी, मुनिवर की बहु कीरति करी ।।२१।।५८।।

भवसदत्त राजा मनि भई, जो उपजै सौ विणसै सही ।
सहु कुटुम्व सम्पदा सार, जैसो वीज तणौ चमकार ।।२५।।

आई कर्म गलि घालै फंद, राख न सकही इन्द्र फणीन्द्र ।
जीव वहुत ही लीला करै, वंधै कर्म सु लीया फिरै ।।२६।।

चहुं गति जीव फिरै एकलो, नीच-ऊच कुल पावै भलौ ।
सुख दुःख बांटै नाही कोइ, लावै जिसा फल भुंजै सोइ ।।२७।।

मुनि श्री के उपदेश के प्रभाव से भविष्यदत्त ने अपने पुत्र को राज्य भार देकर स्वय ने वैराग्य धारण कर लिया । भविष्यदत्त के साथ उसके परिवार के अनेक जनो ने भी सयम एव व्रत धारण किये ।

हनुमन्त कथा मे स्वय हनुमाण रावण को वहुत ही शिक्षा प्रद एव हितप्रद वाते सुनाते हैं और सीता को पुन राम को देने का परामर्श देते हैं—

पर नारी सौं संग जो करै, अपजस होइ नरक संचरै ।
सीख हमारी करो परमाणि, पठवौ तिया राम कै थान ।।५६।११६।।

रावण को हनुमान की शिक्षा अच्छी नही लगती और अपनी शक्ति एव वैभव की डीग हाकने लगता है । लेकिन हनुमान फिर रावण को समझाते हैं—

सगौ न कोई पुत्री मात, पुत्र कलन्त मित्र अरु तात ।
सगौ न कोई किसको होइ, स्वारथ आप करै सहु कोय ।।६६।१००।।

भये अनन्त चक्र भूपाल, ते पणि भया काटन की पास ।
भूप अनन्त गया व जाई, आगै जाइ वसाया गाइ ।।६७।।

इसी अवसर पर हनुमान वारह अनुप्रेक्षाओ के माध्यम से रावण को जगत् की शरीर एव धन दौलत की असारता एवं विनाशी स्वभाव पर प्रकाश डालता है । इस तरह सभी जैन काव्य अपने नायक एव नायिका के चरित्र को समुज्वल एव निर्दोष वना कर सयम अथवा गृह त्याग के पश्चात् समाप्त होते है ।

इन काव्यो मे कथा के साथ साथ भी कभी कभी गहन चर्चा की चुटकी ले ली जाती है जो जैन सिद्धान्तो पर आधारित होती है । प्रद्युम्न रास मे नारद ऋषि पाप-पुण्य के रहस्य के वारे मे जो मीठी चुटकी लेते हैं वह दिखने मे सरल लेकिन गम्भीर अर्थ लिये हुये है—

हो नारद जंपै सुणहु कुमारी, हो उपजै विणासै इति संसारी ।
दुखि सुखि जीव सदा रहै जी, हो पाप पुण्य द्वे गैल न छाडे ।
सहै परिसह तप करै जो, हो पहु चे मुकति कर्म सहु तोडे ।।८०।।

सम्यकत्त्व की महिमा सर्वोत्तम है । उसी के सहारे देव एव इन्द्र के पद को प्राप्त किया जा सकता है । अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त की जा सकती है तथा सर्वार्थसिद्धि एव निर्वाण भी प्राप्त किया जा सकता है इसलिये मानव के सम्यग्दर्शन होना महान् पुण्य का सूचक है ।

हो समकित कै वल सुर घरणेंद, समकित कैवल उपजै इन्द्र ।।
चक्कवर्ति वल भौगवै हो, समकित कै वल उपजै रिधि ।
जीव सदा सुख भौगवै हो, समकित बल सरवारथ सिद्धि ।।२३४।।

—श्रीपाल रास

अलौकिक शक्ति वर्णन

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने प्राय· सभी प्रमुख काव्यो मे अलौकिक शक्तियों का वर्णन किया है । इन शक्तियो को नायक स्वय अपने पुण्य से उपार्जित करता है । अथवा उमे पुण्यात्मा होने की वजह से दूसरो के द्वारा दे दी जाती है । क्या प्रद्युम्न और क्या भविष्यदत्त एव श्रीपाल अथवा हनुमान सभी को अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हैं और वे इन्ही के सहारे अनेक विपत्तियो पर विजय प्राप्त करते हैं । श्रीपाल रास मे अष्टान्हिका व्रताचरण से कुष्ठ रोग दूर होना, समुद्र को लांघ जाना, रैंण मजूषा की देवियो द्वारा सतीत्व की रक्षा करना आदि सभी मे अलौकिकता का आभास मिलता है । प्रद्युम्न को तो सोलह गुफाओ मे जाने पर अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती है तथा कचनमाला से तीन विद्याएँ प्राप्त होती है और वह इन्ही विद्याओ के बलबूते पर कालसंवर, सत्यभामा एव स्वयं अपने पिता श्रीकृष्ण जी को अपना पौरुष दिखलाने मे सफल होता है । युद्ध मे विद्या वल से शत्रुसेना को मृत्यु की नींद मे सुला देना तथा आपस मे मित्रता होने पर उसे पुन· जीवित कर देना एक साधारण सी वात है । इसी प्रकार भविष्यदत्त को भी ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती है और इन्ही के सहारे विमान का निर्माण करके नन्दीश्वर द्वीप की अपनी पत्नी के साथ वन्दना करने जाता है । सेठ सुदर्शन का सूली से वच जाना एवं सूली का सिंहासन वन जाना चमत्कारिक घटनाएँ है जिन्हें पढकर पाठक आश्चर्य में भर जाता है और स्वयं भी ऐसी अलौकिक शक्ति प्राप्त करने का प्रयास करने लगता है ।

प्रद्युम्न को सोलह गुफाओ से जो अनेक विधाऐ प्राप्त हुई थी ब्रह्म रायमल्ल ने उनका निम्न प्रकार वर्णन किया है—

हो कामदेव कै पुन्य प्रभाए, हो विंतर देव मिल्या सहु आए।
करी मैरा का वंदना जी, हो दीन्हा जी विद्या तणा भंडारौ।
छत्र सिंहासण पालिका जी, हो सैथी धनष खडग हथियारौ ।।१०।५८।।

हो रत्न सुवर्ण दीया बहुभाए, ही करै वीनती आगै आए।
हम सेवक तुम राजई जी, हौ सौलह गुफा भले आयौ।
विंतर देव संतोषिया जी, हो कचण माला कै मनि भायौ ।।११।।

छन्द

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने काव्यो मे सीमित किन्तु लोकप्रिय छन्दो का ही प्रयोग किया है। ये छन्द हैं दोहा, चौपई, वस्तुवन्ध एव कडवाहा। रास काव्यो मे तथा प्रमुखतः श्रीपाल रास, प्रद्युम्नरास, नेमीश्वररास मे इन्ही छन्द का प्रयोग हुआ है। नेमिश्वर रास मे स्वय ब्रह्म रायमल्ल ने कडवाहा छन्द के प्रयोग किये जाने का उल्लेख किया है—

भण्यौ जी रासौ सिवदेवी का वालकौ।
कडवाहा एक सौ अधिक पैताल।
भावजी भेद जुदा-जुदा छंद नाम इहु सब्द शुभ वर्ण।
कर जोडै कवियण कहै भव भव धर्म जिनेसुर सर्ण ।।१४५।।

भविष्यदत्त चौपई मे चौपई छन्द का प्रयोग हुआ है। केवल नाम मात्र के लिये कुछ वस्तु बध छन्द भी आया है। इसी तरह हनुमन्त कथा मे भी चौपई छन्द की ही प्रमुखता है। दूहा एव वस्तुवध छन्द का बहुत ही कम प्रयोग हो सका है। परमहस चौपई मे भी केवल चौपई छन्द मे पूरा काव्य निवद्ध किया गया है।

सुभाषित एवं लोकोक्तियां

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने समय मे प्रचलित लोकोक्तियो एव सुभाषितो का अच्छा प्रयोग किया है। इनके प्रयोग से काव्यो मे सजीवता आयी है। यही नही तत्कालीन समाज एव आचार व्यवहार का भी पता चलता है। यहाँ कुछ सुभाषितो एव लोकोक्तियो को प्रस्तुत किया जा रहा है—

१—वावै जिसौ तिसौ लुणै — श्रीपाल रास
२—काग गलै किम सोमै हार — ,,
३—गयो कोढ जिम अहि कैंचुली — ,,
४—मुवा साथि नवि मुवो कोइ — ,,
५—जीवत मांखी को गलै — ,,
६—आयौ हो नाग न पूजै हो भाई
वाहरि वावी जी पूजण जाई — प्रद्युम्नरास ।१८।।
७—छोल्लि को रालि करि करै पेट की आस ।। — नेमीश्वररास ।१२२।
८—पुण्य पाप तस जैसा ववै,
तहि का तैसा फल भोगवै ।। — भविष्यदत्त ।१३।२३।
९—सुभ अरु असुभ उपायो होइ,
तहि का तैसा फल नर भुंजै सोइ ।। — ,,
१०—जैसा कर्म उदै हो आइ, तैसो तहाँ वधि ले जाइ । — ४०।२६
११—पाप पुण्य ते साथिहि फिरै — ४२।२६
१२—हो सो सही वुरा को वुरो
१३—पोते पुण्य होइ जव घणो, होइ सफल कारिज इह तणो ।। — हनुमंत कथा
१४—दाख वेलि अर आँवै चढी, एक सिघ अर पाखर पडी ।। — ,, ६६।७५
१५—सुख दुख अर जामण मरण जिही थानकि लिख्यो होई ।
घडी महूरत एक खिण राखि न सक्कै कोइ ।। — ,, १४।८७
१६—जा दिन आवै आपदा ता दिन मीत न कोइ ।
माता पिता कुटुंव सहु ते फिरि वैरी होइ ।। — ,, २६।८६
१७—अैसो कर्म्म न कीजै कोइ, वधै पाप अधिको दुख होइ ।
जिणवर धर्म जो निंद्या करै, ससार चतुर्गति तेई फिरै ।। — ,, ५४'६३
१८—जप तप संयम पाठ महु पूजा विधि त्यौहार ।
जीव दया विण सहु अफल, ज्यौ दुरजन उपगार ।। — नेमीश्वररास ।।६७।।
१९—कामणी चरित ते गिण्या न जाइ — ।।९८।। ,,
२०—जैनी की दीक्षा खाडा की धार — ।।११६।। ,,

काव्यों के प्रमुख पात्र

जैन काव्यो के प्रमुख पात्रो मे ६३ शलाका महापुरुषो के अतिरिक्त पुण्य पुरुषो एव सामान्य पुरुष एव स्त्री भी प्रमुख पात्र के रूप मे प्रस्तुत होते हैं। नायक एव नायिकाओ के साथ ही जो दूसरे पात्र आते है वे भी राजा महाराजा, विद्याधर एव परिवार के दूसरे सदस्य भी बारी-बारी से आकर काव्य को आकर्षक बनाने मे सहयोगी बनते हैं। ब्रह्म रायमल्ल ने अपनी कृतियो मे पात्रो की सख्या मे न तो वृद्धि की है और न बिना पात्रों के कथानक को लम्बा करने का प्रयास किया गया। इन सभी पात्रो का परिचय अत्यन्त आवश्यक है जिससे उनके व्यक्तित्व की महानता को भी पाठक समझ सके और व्यर्थ की ऊहापोह से बच सकें। अब यहाँ कुछ प्रमुख पात्रो का परिचय दिया जा रहा है—

श्रीपाल रास

१. **श्रीपाल**—श्रीपाल चम्पापुर के राजा अरिदमन के पुत्र थे। ये कोटिभट कहलाते थे। कुष्ठ रोग होने पर इन्होने अपना राज्य अपने चाचा को सौप कर सातसो अन्य कुष्ठ रोगियो के साथ जाना पडा। कुष्ठ अवस्था में ही इनका मैना सुन्दरी से विवाह होने पर सिद्ध चक्र विधान के गन्धोदक से इन्हे कुष्ठ रोग से मुक्ति मिली। विदेश मे एक विद्याधर से जल तरगिनी एव शत्रु निवारिणी विद्या प्राप्त की। धवल सेठ के रुके हुये जहाजो को चलाया एव उन्हें चोरो से छुडाया। रैण मजूषा नामक राज्य कन्या से विवाह होने पर इन्हे धोखे से समुद्र मे गिरा दिया गया लेकिन लकडी के सहारे तैरते हुए एक द्वीप मे जा पहुँचे। वहाँ उसने गुणमाला कन्या से विवाह किया। धवल सेठ के भाटो द्वारा इनकी जाति भाण्ड बताने पर इन्हे सूली की सजा दी गयी लेकिन रैण मजूषा ने इनको छुडवाया। बारह वर्ष विदेश मे घूमने के पश्चात् मैना सुन्दरी सहित अनेक वर्षों तक राज्य सुख प्राप्त किया तथा अन्त मे दीक्षा प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त किया।

२. **मैना सुन्दरी** — मगध देश मे उज्जैनी के राजा की राजकुमारी थी। पिता ने कर्म की बलवत्ता का बखान करने पर क्रोधित होकर कुष्ठी श्रीपाल से विवाह कर दिया। लेकिन सिद्धचक्र विधान करके उसके गन्धोदक द्वारा पति का कुष्ठ रोग दूर करने मे सफलता प्राप्त की। कितने ही वर्षों तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् ससार से विरक्त होकर दीक्षा धारण कर सोलहवें स्वर्ग मे देव हो गयी।

३. **रैंण मजूषा** — हस द्वीप के राजा कनक केतु की पुत्री थी। महस्रकूट चैत्यालय के कपाट खोलने पर श्रीपाल से विवाह हो गया। धवल सेठ द्वारा शील भग करने के प्रयास मे वह अपने चारित्र पर दृढ रही और देवियो द्वारा उपसर्ग दूर किया गया। सैकडो वर्षों तक राज्य सपदा भोगने पर अन्त मे दीक्षा लेकर स्वर्ग प्राप्त किया।

४. **धवल सेठ**—भगुकच्छ पट्टन का बडा व्यापारी एव व्यापारिक जहाजी वेड़े का स्वामी। श्रीपाल की दूसरी स्त्री रैंणमजूपा के शील भग करने के प्रयास करने पर देवियो द्वारा धवल सेठ को प्रताडित किया गया। लेकिन राजा धनपाल के दरवार मे श्रीपाल को अपने भाटो द्वारा भाण्ड पुत्र सिद्ध करने के प्रयत्न मे फिर नीचा देखना पडा। अन्त मे अपने घृणित पापो के कारण स्वमेव मृत्यु को प्राप्त हुआ।

५. **गुणमाला** — श्रीपाल की तीसरी पत्नी एव राजा धनपाल की पुत्री। इसका विवाह सागर तैर कर आने के पश्चात् श्रीपाल से हुआ। पर्याप्त समय तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् दीक्षा लेकर स्वर्ग प्राप्त किया।

६. **वीरदमन**—श्रीपाल का चाचा। कुष्ठ रोग होने पर श्रीपाल वीरदमन को राज्य भार सौंप कर विदेश चला गया। श्रीपाल के वापस आने पर जब वीरदमन ने राज्य देने से इन्कार किया तो दोनो मे युद्ध हुआ और उसमे श्रीपाल की विजय हुई। अन्त मे वीरदमन ने दीक्षा ग्रहण की।

प्रद्युम्नरास

७. **प्रद्युम्न** — रुक्मिणी की कोख से पैदा होने वाला श्रीकृष्ण का पुत्र। जन्म के छठे दिन अपने पूर्व जन्म के शत्रु असुर ने उसे चुरा कर शिला के नीचे दबा दिया। कालसवर विद्याधर ने उसका लालन-पालन किया। यहा उसे कितनी ही अलौकिक विद्याएँ प्राप्त हुई। युवा होने पर कालसवर की स्त्री कचनमाला इस पर मोहित हो गई लेकिन प्रद्युम्न को अपने जाल मे नही फँसा सकी। इस घटना के पश्चात् कालसवर एव प्रद्युम्न मे युद्ध हुआ। युद्ध मे जीत कर नारद के साथ प्रद्युम्न द्वारिका लौट आया तथा अपनी जन्म माता को अनेक क्रीडाओ से प्रसन्न किया। काफी समय तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् अन्त मे दीक्षा धारण की और गिरनार पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया।

८ नारद—सभी क्षेत्रो एव तीर्थों मे भ्रमण करने वाले ऋषि। सत्यभामा के अभिमान को खण्डित करने के लिए श्रीकृष्ण को रुक्मिणी से विवाह करने के लिये प्रोत्साहित किया। प्रद्युम्न के अपहरण होने पर रुक्मिणी को धैर्य बँधाया। कालसवर को एव श्रीकृष्ण को प्रद्युम्न के साथ युद्ध होने पर वास्तविक तथ्यो से परिचित करा कर युद्ध को टालने मे सफलता प्राप्त की।

९. रुक्मिणी—कुण्डलपुर के भीष्म राजा की रूपलावण्य युक्त पुत्री थी। श्रीकृष्ण ने इसका हरण करके विवाह किया था। प्रद्युम्न इसका पुत्र था। राज्य सुख भोगने के पश्चात् आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर स्वर्ग प्राप्त किया।

१०. भीष्मराज—कुण्डलपुर के राजा एव रुक्मिणी के पिता।

११. शिशुपाल — पाटलीपुत्र का राजा था। पहले रुक्मिणी का विवाह इसी से निश्चित हुआ था। लेकिन श्रीकृष्ण द्वारा हर लिये जाने पर दोनो मे युद्ध हुआ और अन्त मे श्रीकृष्ण के हाथो मारा गया।

१२. कालसंवर — विद्याधर राजा था। शिला तले दबे हुये प्रद्युम्न को उठाकर उसे १६ वर्ष तक अपने यहा रखा था। प्रद्युम्न के साथ युद्ध में कालसवर पराजित हुआ।

१३. कंचनमाला—कालसवर की स्त्री थी। प्रारम्भ मे प्रद्युम्न को उसी ने पाल-पोष कर बडा किया।

१४. श्रीकृष्ण—नव नारायणो मे एक नारायण थे। रुक्मिणी को हर कर ले आये और उसके साथ विवाह कर लिया। प्रद्युम्न इन्ही का पुत्र था। तीर्थङ्कर नेमिनाथ के ये चचेरे भाई थे।

१५. सत्यभामा—श्रीकृष्ण की पत्नी।

१६ धूमकेतु—प्रद्युम्न का पूर्वजन्म का शत्रु।

नेमीश्वररास

१७, समुद्रविजय—नेमिनाथ के पिता थे। इन्होंने गिरनार पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया।

१८. **उग्रसेन**—राजुल के पिता थे।

१९. **नेमीश्वर**—२३ वे तीर्थङ्कर नेमिनाथ का ही दूसरा नाम है। ये श्री कृष्णजी के चचेरे भाई थे। जब ये विवाह के लिये तोरण द्वार पर पहुचे तो उन्होने एक ओर बहुत से पशु देखे जो बरातियो के लिए खाने के लिये वहा एकत्रित किये गये थे। नेमिनाथ करुणार्द्र होकर तोरण द्वार से वैराग्य लेने चले गये। दीर्घकाल तक तपस्या करने के पश्चात् इन्होने गिरनार से परिनिर्वाण प्राप्त किया।

२०. **राजुल**—राजा उग्रसेन की लडकी थी। नेमिनाथ ने इनके साथ विवाह न करके वैराग्य धारण कर लिया था। राजुल ने भी नेमिनाथ के सघ मे दीक्षा धारण करली और अन्त मे घोर तपस्या करके स्वर्ग प्राप्त किया।

भविष्यदत्त चौपई

२१. **धनपति सेठ**—कुरू जांगल देश के हस्तिनापुर का नगर सेठ था।

२२. **धनेश्वर सेठ**—हस्तिनापुर नगर का दूसरा धनिक श्रेष्ठि था। धनश्री उसकी पत्नी थी।

२३ **कमलश्री**—धनेश्वर सेठ की सुपुत्री एव भविष्यदत्त की माता थी। कुछ समय पश्चात् धनेश्वर सेठ ने कमलश्री का परित्याग करके उसे धनपति सेठ के यहा भेज दिया। कमलश्री धार्मिक विचारो की महिला थी। भविष्यदत्त जब विदेश चला गया तब भी वह जिन-भक्ति मे लगी रहती थी। अन्त मे आर्यिका दीक्षा लेकर घोर तप किया तथा स्त्री पर्याय से मुक्ति प्राप्त कर स्वर्ग प्राप्त किया तथा फिर दूसरे भव मे जन्म धारण करके अन्त मे निर्वाण प्राप्त किया।

२४ **सरूपा**—धनपति सेठ की द्वितीय पत्नि तथा बन्धुदत्त की माता।

२५ **भविष्यदत्त** — धनपति सेठ का पुत्र था। माता का नाम कमलश्री था। अपने छोटे भाई बन्धुदत्त के साथ विदेश मे व्यापार के लिए गया। मार्ग मे बन्धुदत्त उसे मदन द्वीप मे अकेला छोडकर आगे चला गया। भविष्यदत्त को इसी द्वीप मे अनेक विद्याएँ, अपार सपत्ति एवं लावण्यवती भविष्यानुरूपा वधु मिली। जब बन्धुदत्त का जहाज पुन इसी द्वीप मे आया तो भविष्यदत्त एव उसकी पत्नी उसके

साथ हो गये लेकिन भविष्यदत्त जब अपनी मुद्रिका वापिस लेने द्वीप मे गया तो बन्धुदत्त उसे छोड कर आगे वढ चला। भविष्यदत्त फिर अकेला रह गया। फिर एक देव उसे विमान मे बिठा कर हस्तिनापुर ले आया। यहा आने पर उसने पोदनपुर के राजा को युद्ध मे हरा दिया और इस तरह हस्तिनापुर का राज्य भी उसे मिल गया। वर्षो तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् भविष्यदत्त ने मुनि दीक्षा ले ली और अन्त मे तपस्या करके निर्वाण प्राप्त किया।

२६. भविष्यानुरूपा—भविष्यदत्त की पत्नी जो तिलक द्वीप से प्राप्त हुई थी।

२७ बन्धुदत्त[1]—भविष्यदत्त की दूसरी माता से उत्पन्न हुआ भाई। बन्धुदत्त ने भविष्यदत्त को दो बार धोखा दिया। उसे हस्तिनापुर के राजा ने देश से निर्वासित कर दिया था।

हनुमन्त कथा

२८ प्रहलाद—आदित्यपुर के शासक एव पवनजय के पिता थे।

२९. महेन्द्र—सुमेरु की पूर्व की ओर महत देश का शासक तथा अजना का पिता।

३०. पवनंजय—विद्याधर राजा प्रहलाद का पुत्र एव अजना का पति। १४ वर्ष तक अजना से दूर रहने के पश्चात् जब वह रावण की सहायतार्थ सेना सहित जा रहा था तो चकवी के विरह को देख कर उन्हे अजना की याद आ गई और वह अपने साथी के साथ उससे मिलने चल दिया। शत्रु सेना पर विजय के पश्चात् जब वह वापिस आया तो उसे अजना नही मिली अन्त मे पर्याप्त खोज के पश्चात् अजना हनुमान सहित मिली।

३१ मधुलता—अजना की सहेली एव दासी।

३२ रावण—लका का स्वामी तथा राक्षसो का अधिपति। अनेक विद्याओ का धारक। सीता का हरण करने के कारण राम के साथ युद्ध हुआ जिसमे वह लक्ष्मण द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ।

---

१. रहत तहा केई दिन गया, बधूदत्त प्रोहण आइया।
दमडौ एक न पू जी रह्यौ, पाप जोग सगलो खोइयो।२३।
फाटा वस्त्र अति बुरा हाल, दुवल अस्ति उतरी खाल।

३३. सुग्रीव—कोकिन्दापुरी का राजा एव राम का विश्वस्त सहायक ।

३४. हनुमान—अंजना का पुत्र था । सीता की खोज मे लका जाते हुये उसने जैन मुनियो को वचाया था । हनुमान राम का विश्वस्त सेवक था ।

सुदर्शनरास

६५ घाडीवाहन—अग नेश के राजा थे । रानी के वहकावे मे आकर राजा ने सेठ सुदर्शन को सूली का आदेश दिया था ।

३६ अभया—अंग देश के राजा घाडीवाहन की रानी थी । कपिला ब्राह्मणी के चक्कर मे आकर सेठ सुदर्शन से अपनी शारीरिक प्यास वुझाने की दृष्टि से उसे श्मशान मे सामायिक करते हुए उठा कर अपने महल में मगा लिया । सेठ सुदर्शन अपने चरित्र पर दृढ़ रहा । लेकिन रानी ने सेठ सुदर्शन पर शील-भग का लाछन लगा दिया । लेकिन जव शील के महात्म्य से सूली का सिहासन वन गया और रानी को मालूम हुआ तो वह अपघात करके मर गयी ।

३७ कपिला—वह ब्राह्मणी थी । सेठ सुदर्शन की सुन्दरता पर मुग्ध थी । दर्द का वहाना वनाकर सेठ सुदर्शन को अपने यहाँ वुला लिया तथा काम ज्वर का नाम लेकर सेठ को फुसलाना चाहा लेकिन सुदर्शन उसे वहुत समझा कर कपिला के चगुल से मुक्त हो गया । अन्त मे कपिला नगर छोडकर पाटलीपुत्र चली गयी ।

३८. मनोरमा—सेठ सुदर्शन की धर्म पत्नि ।

३९ सेठ सुदर्शन—सुदर्शन चम्पा नगरी का नगर सेठ था जो अपने चरित्र के लिये वह नगर भर मे प्रसिद्ध था । कपिला ब्राह्मणी एव अभया रानी दोनो के ही चगुल मे वह नही फँसा । राजा ने रानी के वहकावे मे आकर जव उसे सूली का आदेश दिया तो सुदर्शन ने सहर्ष स्वीकार कर लिवा । लेकिन उसके शील के महात्म्य से वह सूली सिंहासन वन गयी । इसके पश्चात् कितने ही वर्षो तक घर मे रहने के पश्चात् मुनि दीक्षा धारण करली और तपस्या करके निर्वाण प्राप्त किया ।

जम्बूस्वामीरास

४० जम्बूस्वामी—भगवान् महावीर के पश्चात् होने वाले अन्तिम केवली । इनके पिता का नाम श्रेष्ठि ऋषभदत्त एवं माता का नाम धारिणी था । युवावस्था मे इनका विवाह आठ कन्याओ से हो गया । लेकिन उनका मन ससार मे नही लगा ।

इसलिये एक-एक पत्नि का परित्याग करके उन्होने वैराग्य ले लिया तथा अन्त में घोर तपस्या के पश्चात् पहिले कैवल्य और फिर निर्वाण प्राप्त किया। जैन कवियो के लिये जम्बूस्वामी का जीवन बहुत प्रिय रहा है इसलिये सभी भाषाओ मे उनके जीवन से सम्बन्धित रचनाएँ मिली हैं।

काव्यो में वर्णित प्रदेश, ग्राम एवं नगर

ब्रह्म रायमल्ल ने अपने काव्यो मे अनेक प्रदेशो, नगरो, ग्रामो एव द्वीपो का का उल्लेख किया है। कुछ नगरो के सम्बन्ध मे विस्तृत वर्णन किया है और कुछ का केवल नामोल्लेख मात्र किया है फिर भी ग्राम एव नगरो के वर्णन से काव्यो मे रोचकता एव उत्सुकता आयी है। अधिकाश नगर ऐतिहासिक एव सास्कृतिक नगर हैं जिन्होने देश की सस्कृति के विकास मे भरपूर योगदान दिया है। ब्रह्म रायमल्ल ने भृगुकच्छपट्टण,[1] मालवदेश,[2] उज्जयिनी,[3] रत्नद्वीप,[4] अंगदेश,[5] चम्पापुर, दलवहण, दलवणपट्टण,[6] द्वारिका,[7] कुण्डलपुर,[8] हस्तीनागपुर,[9] पु डरीक,[10] मगधदेश,[11] अयोध्या,[12] आदितपुर,[13] वसन्तनगर,[14] लका,[15] पुण्डरीक कोंकिदा,[16] कुरूजांगलदेश,[17] पोदनपुर,[18] एव वाराणसी[19] आदि नगरो एव प्रदेशो का उल्लेख

१. श्रीपाल रास, ८०।
२. वही, ६।
३. वही, ६।
४. वही, ८३।
५ वही, ११५।
६ वही, १६३।
७. प्रद्युम्नरास, ५।
नेमीश्वररास, ८।
८. वही, २११३६।
६ भविष्यदत्त चौपई, १०–२०।
१०. प्रद्युम्नरास, ८२।
११ वही, ८६।
१२ वही, ६३।
१३-१६ हनुमत कथा।
१७ भविष्यदत्त चौपई, १०–२०।
१८. वही।
१९. निर्दोष सप्तमी कथा।

किया है तथा अपने पात्रो की जीवन घटनाओ का वर्णन किया है। कुछ नगरों का विस्तृत परिचय निम्न प्रकार है—

भृगुकच्छपट्टण

सौराष्ट्र प्रान्त के वर्तमान भडौच नगर का नाम ही प्राचीन काल मे भगुकच्छपट्टण था। यह नगर जैन साहित्य, व्यापार एव संस्कृति का प्रमुख केन्द्र माना जाता था।[1] श्रीपाल एवं धवल सेठ की प्रथम वार इसी नगर मे भेट हुई थी।[2] सेठ के जहाजी वेडे मे ५०० जहाज थे। जिनसागर सूरि ने अष्टकम् मे भृगुकच्छ को सौराष्ट्र का नगर लिखा है।[3] आचार्य चन्द्रकीर्ति ने भडोच नगर मे अपनी कितनी ही रचनाओ को समाप्त किया था।[4] इसी तरह ब्रह्म अजित ने भृगुकच्छपुर के नेमिनाथ चैत्यालय मे हनुमत्चरित्र की रचना की थी।[5] व्यवहार भाष्य मे नगर का वडा महत्त्व वतलाया है।[6] कालकाचार्य ने भी इस नगर मे विहार किया था।[7] गुणचन्द्र गणि ने प्राकृत भाषा मे सवत् ११६८ मे इसी नगर में पासणाहचरित की रचना समाप्त की थी।[8]

मालवदेश

मालवा और मालव एक ही नाम है। भारतीय साहित्यकारो एवं विशेषतः जैन साहित्यकारो के लिए मालव देश वहुत आकर्षण का देश रहा है। जैन आगम,

---

१. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ सख्या ३७३।
२. हो लघि देस वन गिरि नदी पाल।
सागर तट्ट ढाढौभयौ हो भृग, कच्छपटण सुविसाल ॥८०॥ श्रीपालरास
३ द्वीपे श्री भृगुकच्छ वृद्ध नगरे सौराष्ट्रके सर्वत. ॥२॥
४. राजस्थान के जैन संत—डा० कासलीवाल, पृ० १५७।
५ वही, पृ० १६५।
६. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० २१६।
७. वही, पृ० ४५८।
८ वही, पृ० ५४६।

पुराण एवं काव्य साहित्य में इस प्रदेश का खूब उल्लेख मिलता है। आचार्य समतभद्र ने मालवा के विद्वानो को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा था। भट्टारक ज्ञानभूषण ने मालव जन पद के श्रावको को सम्बोधित किया था।[८] श्रीपाल मालव देश का राजा था।

उज्जयिनी

उज्जयिनी नगरी सैकडों वर्षों तक मालव जन पद की राजधानी रही। जैन साहित्य एवं इतिहास मे इस नगरी का नाम सदैव ही प्रमुख रूप से लिया जाता रहा। भगवान महावीर ने इसी नगरी के अतिमुक्तक श्मशान मे रूद्र द्वारा किये गये घोर उपसर्ग पर विजय प्राप्त की थी। आगमो एवं अन्य साहित्य मे उज्जयिनी से सम्बन्धित अनेक कथाएँ मिलती हैं। श्रीपाल राजा की राजधानी उज्जयिनी ही थी। चन्द्रगुप्त के शासनकाल मे उज्जयिनी उसके राज्य का अग थी तथा इस नगरी से भद्रबाहु के शिष्य विशाखाचार्य अपने सघ के साथ प्रयाग गये थे। भट्टारकों की भी यह नगरी केन्द्र रही थी। सवत् १६६६ मे विष्णुकवि ने भविष्यदत्त चौपई की यही रचना की थी।[९]

रत्नद्वीप

श्रीपाल एवं भविष्यदत्त अपने समय मे दोनो ही वहां व्यापार के लिये गये थे। यह कोई दक्षिण दिशा का छोटा द्वीप मालूम पडता है।

अंगदेश एवं चम्पानगरी

अगदेश एक जन पद था। चम्पा नगरी इसकी राजधानी थी। यह आर्य क्षेत्र मे आता था और आर्यों के २५३ जनपदो मे इसका प्रमुख स्थान था। श्रीपाल रास मे अगदेश एव उसकी राजधानी चम्पा का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

हा सुणि कोडीभड करै बखाण, अगदेस चम्पापुरि थान।
तासु सिंघरथ राजइ, हो कुंदापहु तस तीया सुजाणि।
तासु पुत्र सिरीपाल हा हो वचन हमारा जाणि प्रमाणि ॥११२॥

---

८. राजस्थान के जैन सत—डा० कासलीवाल, पृ० ४०।

९. सवतु सोरहसैं ह्वै गई, अधिकी तापर छासठि भई।
पुरी उज्जैनी कविनि को वासु, विष्णु तहा करि रह्यो निवासु॥

सेठ सुदर्शन भी अगदेश का ही था। सुदर्शन रास मे अगदेश को धन-धान्यपूर्ण एव जिन भवनो से युक्त देश कहा है।[1]

दशपट्टण

दशपट्टण अथवा दलवणपट्टण दशपुर के ही दूसरे नाम हैं। दशपुर पहले मन्दसौर का ही दूसरा नाम था।[2] कवि राजशेखर ने दशपुर का उल्लेख पैशाची भाषा के बोलने वालो का नगर बतलाने के लिये किया है।[3] आवश्यकचूर्णि में दशपुर की उत्पत्ति का उल्लेख आया है।[4] आचार्य समन्तभद्र संभवत दशपुर मे कुछ समय तक रहे थे।

द्वारिका

यादवो की समुद्र तट पर स्थित प्रसिद्ध पौराणिक नगरी। इसी नगरी के शासक समुद्रविजय, वासुदेव एवं हलधर थे। २२ वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ की जन्म नगरी भी यही थी। कवि ने द्वारिका का वर्णन नेमीश्वररास एव प्रद्युम्नरास दोनो मे किया हैं।

अहा क्षेत्र भरथ अर जवू दीपो।
नग्र द्वाराजीमती समद समीप सोभा बाग वाडी घणा।
अहो छपन जी कोडि जादो तणो वासो।
लोगति सुखीय लीला करैं
अहा इन्द्रपुरी जिम करै हो विकास ॥८॥ नेमीश्वररास

दुर्वासा ऋषि के शाप से द्वारिका जल कर नष्ट हो गई थी।

---

१. अहा अंग देस अति भलो जी प्रधाना,
कण संपदा तणो जो निधान
जिन भवण वन सरोवर घणा
अहा चम्पा जो नग्री हो मध्य सुभ थान
मुनिवर निवसै जी अति घणा।
स्वामी जी वासुपुज्य जी पहुतो निरवाण ॥

२ पम्परामायण (७-३५)।

३. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० २९।

४. वही, पृ० २५०।

५ जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृ० १७४।

आदितपुर

सुमेरू के दक्षिण दिशा की ओर स्थित विद्याधरो का नगर था। नगर अपनी प्राकृतिक सौन्दर्य के लिये विख्यात था। पवनकुमार का पिता प्रह्लाद इसी नगर का शासक था।

बसन्त नगर

सुमेरू के पूर्व दिशा की ओर स्थित विद्याधरो का दूसरा नगर। महेन्द्र इसी का शासक था। अंजना उसकी पुत्री थी।

पु डरीक

विदेह क्षेत्र का नगर जहाँ सीमन्धर स्वामी शाश्वत विराज कर धर्मोपदेश का पान कराते रहते हैं।

लंका

भारत के दक्षिण की ओर स्थित लंका द्वीप बहु चर्चित द्वीप है। रावण यहाँ का राजा था। उसने सीता का अपहरण करके इसी द्वीप मे लाकर रखा था। हनुमंत कथा मे ब्रह्म रायमल्ल ने लका वर्णन किया है। यह द्वीप त्रिकुटाचल पर्व की तलहटी मे स्थित है।[1]

हस्तिनागपुर

हस्तिनापुर का ही दूसरा नाम है। यह नगर कुरूजांगल देश की राजधानी थी। ब्रह्म रायमल्ल ने इस नगर को स्वर्ग की नगरी के समान लिखा है और उसका निम्न प्रकार विस्तृत वर्णन किया है[2] —

उत्तम कुर जंगल को देस, भली वस्त सहु भरिउ असेस।
वस्तु मनोहर लहि जे घणी, पुजै तहां रली मन तणी।
मै हस्तनागपुर थान, सोभा जैसी सुर्ग विमान।
बाग बावडी तहां सोभा घणीं, वृक्ष जाति बहु जाई न गिणी।
मुनिवर नाथ धरै तहा ध्यान, जाणै सोनौ तिणो समान।
परिगह संगत जैवा ईस, करइ ध्यान अति महा जगीस ॥११॥

---

१ पद्मपुराण ५।१६७।   २. भविष्यदत्तचौपई।

रिद्धिवंत मुनिवर अति घणा, वृक्ष फलै सहु छह रिति तणा ।
करै घोर तप मन वच काय, उपजौ केवल मुक्ति ही जाइ ।।१२।।
क्षेत्री धान अद्वार होइ, दुष्दुकाल न जाणै कोइ ।
सोभ भली ताल पोखरी, दीसै निर्मल पानी भरी ।।१३।।
पंथी जण तस भूख पलाई, सीतल नीर वृक्ष फल खाई ।।१४।।
नग्र मांहि जिण थानक घणा, माहै विंव भला जिण तणा ।
ठ विधि पूजा श्रावक करै, गुर का वचन स हीयडै धरै ।।१५।।
दान चारि तिहुं पात्रां देइ, पात्र कुपात्र परीक्षा लेइ ।
विंव प्रतिष्ठा जात्रा सार, खरचै द्रव्य आपणै अपार ।।१६।।
ऊंचा मंदर पौल पगार, सात भूमि उपरि विसतार ।
घरि घरि रली वधावा होइ, कान पडिउ नहि सुणि जे कोइ ।।१७।।
राजा राज करै नृपाल, जैसो स्वर्ग इन्द्र चोवाल ।
पालै प्रजा चालै न्याइ, पुन्यवंत हथनापुर राइ ।।१८।।

प्रद्युम्न चरित मे दुर्योधन को हस्तिनापुर का राजा लिखा है । जैन ग्रन्थों में हस्तिनापुर को देश की १० प्रसिद्ध राजधानियो एव तीर्थों मे गिनाया है ।

महाकवि की काव्य रचना के प्रमुख नगर

ब्रह्म रायमल्ल सन्त थे इसलिए वे भ्रमण किया ही करते थे । राजस्थान उनका प्रमुख प्रदेश था जिसके विभिन्न नगरो मे उन्होंने विहार करके साहित्य-निर्माण का पवित्र कार्य सपन्न किया था । कवि ने उन नगरो का रचना के अन्त में जो परिचय दिया है वह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है तथा वह नगरो के व्यापार, प्राकृतिक सौन्दर्य एव वहा की व्यवस्था के बारे मे परिचय देने वाली है । हम यहाँ उन सभी नगरो का सामान्य परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं —

रणथम्मौर

ढूंढाड प्रदेश मे रणथम्मौर का किला वीरता एवं बलिदान का प्रतीक है । उसके नाम से शौर्य एव त्याग की कितनी ही कहानियाँ जुडी हुई हैं । 11 वी शताब्दि से यह दुर्ग शाकम्भरी के चौहान शासको के अधीन था । इसके पश्चात् रणथम्भौर ने

कितने ही उतार चढ़ाव देखे। कभी उसके तलवारो एव तोपो की खुली चुनौती का सामना किया तो कभी उसने रक्षा के लिए हजारो लाखो वीरो को अपना खून वहाते देखा। हम्मीर राजा के साथ ही रणथम्भौर का भाग्य ने पलटा खाया और कभी वह मुसलिम बादशाहो की अधीन रहा तो कभी राजपूत शासको ने उस पर अपनी पताका फहरायी। देहली के बादशाहो के लिए यह किला हमेशा ही सिरदर्द वना रहा। सम्राट अकबर ने जव इस किले पर अधिकार किया तो वहाँ कुछ शान्ति रही अन्त मे मुगल सम्राट शाह आलम ने इस किले को जयपुर के महाराजा सवाई माधोसिंह को दे दिया।

रणथम्भौर जैनधर्म एव सस्कृति का केन्द्र रहा। युद्धो एव मारकाट के मध्य भी वहाँ कभी-कभी सास्कृतिक कार्य होते रहे। 11 वी शताब्दि मे शाकम्भरी के सम्राट पृथ्वीराज (प्रथम) ने जैन मन्दिरो मे स्वर्ण कलश चढाया था।[1] सिद्धसेन सूरि ने राजस्थान के जिन पवित्र स्थानो का उल्लेख किया है उनमे रणथम्भौर का नाम भी सम्मिलित है।

राजा हम्मीर के शासन काल मे भट्टारक धर्मचन्द्र ने किले मे विशाल प्रतिष्ठा समारोह का आयोजन किया था[2] और मन्दिर मे चौवीसी की स्थापना करवायी थी। उसके शासन मे जैन धर्म का चारो ओर अच्छा प्रभाव स्थापित था। हम्मीर के पश्चात् रणथम्भौर मुसलिम शासको के आक्रमण का शिकार वनता रहा। सवत् 1608 मे प० जिनदास ने शेरपुर के शान्तिनाथ चैत्यालय मे होलीरेणुका चरित्र की रचना की थी। जिनदास रणथम्भौर के निकट नवलक्षपुर का रहने वाला था।[3] इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि रणथम्भौर मे ही साह करमा द्वारा करवायी गई थी और आचार्य ललितकीर्त्ति को भेट मे दी गई थी। इसके एक वर्ष पश्चात् सवत् 1609 मे श्रीधर

---

१. रणथभपुरे आणालेहेण जस्स सभरिदेण।
हेम धप दड मिसओ निच्च नच्चाविया कित्ती ।।३।।
—पद्मदेव कृत सद्‌गुरूपद्धति

२ सवत् माघ वदि ५ श्री मूलसघे सरस्वती गच्छे भट्टारक श्री धर्मचन्द्र जी साहमल पीलमल चादवाड भार्या भरवत सहरगढ रणथभौर श्री राजा हम्मीर।

३ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग, पृ० २१२, पचायत मन्दिर भरतपुर।

के भविष्यदत्त चरित की प्रतिलिपि की गई। भविष्यदत्तचरित अपभ्रंश की कृति है। इसी वर्ष एक और ग्रथ जिणदत्तचरिउ की प्रतिलिपि की गई। प्रस्तुत पाडुलिपि आचार्य ललितकीर्त्ति को भेंट स्वरूप दी गई। उस समय साह दुलहा वहाँ के प्रमुख श्रावक थे।

सवत् 1630 मे या इसके पूर्व ब्रह्म रायमल्ल रणथम्भौर पहुँचे थे। उस समय किले पर सम्राट अकबर का शासन था। तथा वहाँ अपेक्षाकृत शान्ति थी। इसी कारण कवि वहाँ श्रीपाल रास की रचना कर सके। ब्रह्म रायमल्ल वहाँ कितने समय तक रहे इस सम्वन्ध मे तो कोई उल्लेख नही मिलता किन्तु कवि ने किले की समृद्धि की प्रशसा की है तथा उसे घन तथा सम्पत्ति का खजाना कहा है। किले के चारो ओर पानी से भरे हुए सरोवर थे। यही नही वन उपवन उद्यान से वह युक्त था। किले मे वहुत से जिन मन्दिर थे जो अतीव शोभायमान थे।

संवत् 1644 मे भट्टारक सकलभूपण के षटकर्मोंपदेश माला की प्रतिलिपि श्रीमती पार्वती ने सम्पन्न करायी। उस समय यहाँ राव जगन्नाथ का शामन था। दुर्ग के चारो ओर शान्ति थी तथा वहाँ के निवासियो का ध्यान साहित्य प्रचार की ओर जाने लगा था। इसके पश्चात् सवत् 1659 मे श्री ऋषभदेव जी अग्रवाल के आग्रह से तत्वार्थसूत्र की प्रति की गई। इससे अग्रवाल जैन समाज मे पूर्ण प्रभाव था। राजा जगन्नाथ ने टोडा के निवासी खीमसी को अपना मन्त्री वनाया जिन्होंने किले पर एक जिन मन्दिर का निर्माण कराया था।

हरसोर

हरसोर की राजस्थान के प्राचीन नगरो मे गणना की जाती है। जो नागौर जिले मे पुष्कर से डेगाना जाने वाले वस सडक पर स्थित है। 12 वी शताव्दि मे यह नगर प्रसिद्धि पा चुका था। जिस प्रकार श्रीमाल से श्रीमाली तथा ओसिया से ओसवाल, खडेला से खण्डेलवाल जाति का निकास हुआ था उसी प्रकार हरसोर से हरसूरा जाति की उत्पत्ति हुई थी।[1] इसी तरह हर्षपुरीय गच्छ का भी इसी नगर से उत्पत्ति हुई थी।[2] हरसोर पर प्रारम्भ मे शाकम्भरी के चौहानो का शासन था। चौहानो के पश्चात् हरसोर पर मुसलमानो का अधिकार हो गया।

---

1 Ancient Cities and Town, of Rajasthan by Dr. K C Jain, Page 328

2 Ibid, Page 330.

सवत् 1628 मे ब्रह्म रायमल्ल हरसोर पहुँचे और वही पर भादवा सुदी 2 बुधवार सवत् 1628 के दिन प्रद्युम्नरास की रचना समाप्त की। कवि ने हरसोर का बहुत ही सक्षिप्त परिचय दिया है जो निम्न प्रकार है—

हो सोलहसै अठविस विचारो, हो भादव सुदि दुतीया बुधिवारो
गढ हरसौर महा भलो जी, हो देवशास्त्र गुरू राखै मानो ।।194।

17 वी शताब्दि के प्रथम चरण मे हरसोर मे श्रावकों की अच्छी वस्ती थी और वे देवशास्त्र गुरू तीनो की ही भक्ति करते थे।

जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सवत् 1662 की एक भविष्यदत्त चरित्र (श्रीधरकृत) की पाडुलिपि है जो जिसकी लिपि अजमेर मे अर्जुन जोशी द्वारा की गयी थी इसके दूसरे ओर लिखा हुआ है कि हरसोर मे राजा सावलदास के शासन काल मे खण्डेलवाल देव एव उसकी पत्नी देवलदे द्वारा ग्रन्थ को प्रतिलिपि करायी गयी थी।[1]

झुंझुनू

झु झुनु शेखावाटी प्रदेश का प्रमुख नगर है। देहली के समीप होने के कारण यहाँ दिगम्बर जैन भट्टारको का वरावर आवागमन वना रहा। 15 वी शताब्दि मे होने वाले चरित्रवर्द्धन का झु झुनु के प्रदेश ही प्रमुख कार्य क्षेत्र था।[2] नगर मे दिगम्वर एव श्वेताम्वर दोनो ही का जोर था। सवत् 1516 मे इसी नगर मे भट्टारक जिनचन्द के एवं मुनि सहस्त्रकीत्ति के शिष्य तिहुणा ने त्रैलोक्यदीपक (वामदेव) की प्रतिलिपि करके अपने गुरू जिनचन्द्र को भेंट की। ग्रन्थ की प्रतिलिपि कराने वाले थे खण्डेलवाल जाति के सेठी गोत्र वाले सघी मोठना उसकी पत्नी साहू एव उसके परिवार के अन्य सदस्यगण। पचमी व्रत के उद्यापन के उपलक्ष मे प्रस्तुत ग्रन्थ प्रतिलिपि करवाकर तत्कालीन भट्टारक जिनचन्द को भेंट स्वरूप दिया गया था।[3]

सवत् 1615 मे ब्रह्म रायमल्ल झुझुनु पहुँचे। उनका वहाँ अच्छा स्वागत किया गया और इसी नगर मे नेमीश्वररास समाप्त किया। कवि ने नगर का जो सक्षिप्त

---

१ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची, चतुर्थ भाग, पृ० १८४।
२ राजस्थान के जैन साहित्य, पृ० ६६।
३. स्वस्ति स० १५१६ वर्षे .... सद्गुरुवे प्रदत्त।

वर्णन किया है उससे पता चलता है कि नगर मे चारो ओर वन उपवन थे। श्रावको की सख्या नगर मे विशेष थी। वैसे वहाँ सभी जातियो के लोग रहते थे। नगर का राजा चौहान जाति का था जो उदार एव कुशल शासक था तथा सभी धर्मों का आदर करता था।[1]

सवत् 1815 से पूर्व महापण्डित टोडरमल सिंघाना गये जो झुंझुनु प्रदेश मे ही स्थित हैं। इससे भी पता चलता है कि उस समय तक यह प्रदेश जैन धर्मावलम्बियो का प्रमुख क्षेत्र था।

धौलपुर

धौलपुर पहिले राजस्थान की एक छोटी जाट रियासत थी। वर्तमान मे यह सवाई माधोपुर का उपजिला है। धौलपुर राजस्थान एव मध्यप्रदेश का सीमावर्त्ती प्रदेश है। वैसे धौलपुर का प्राचीन इतिहास रहा है। 8 वी शताब्दि से 17 वीं शताब्दि तक यहाँ चौहान एव तोमर राजपूतो का शासन रहा। कुछ समय के लिए सिकन्दर लोदी ने इस क्षेत्र को अपने राज्य मे मिला लिया। खानुआ की लडाई के पश्चात् यह प्रदेश मुगलो के हाथ में आ गया और उसके पश्चात् मरहठाओ ने इस पर अपना अधिकार कर लिया। सन् 1806 मे धौलपुर, बाडी, राजाखेडा तथा सरमपुरा को मिलाकर एक नयी रियासत को जन्म दिया गया उसे महाराज राना वीरतसिंह को दे दिया गया। उनके पश्चात् मत्स्य प्रदेश निर्माण तक धौलपुर राज्य का शासन उन्ही के वशजो के हाथो मे रहा।

धौलपुर जैन धर्म की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण प्रदेश रहा है। अपभ्रंश के महाकवि रइधु का धौलपुर प्रदेश से विशेष सम्बन्ध रहा था और उनका जन्म भी इसी प्रदेश मे हुआ था।[2] श्री जिनहसमूरि (स० 1524-82) ने धौलपुर मे बादशाह को चमत्कार दिखला कर 500 कैदियो को छुडवाया था।[3]

संवत् 1629 अथवा इसके पूर्व से ब्रह्म रायमल्ल स्वय धौलपुर पहुँचे और वहाँ के श्रावक श्राविकाओ को साहित्य एव सस्कृति के प्रति जागरूकता के लिए प्रेरणा दी। ब्रह्म रायमल्ल ने नगर की सुन्दरता का यद्यपि अधिक वर्णन नही किया लेकिन जो

---

१ अहो सोलाह मैं पन्द्रह रच्यौरास........................राखैजी मान ।।४२।।

२ राजस्थान का जैन साहित्य, पृ० १५५ ।

३. वही, पृ० ६७ ।

कुछ किया है उससे ज्ञात होता है कि उस समय नगर मे सभी जातियो रहती थी तथा वह वन, उपवन, मन्दिर एव मकानो की दृष्टि से नगर स्वर्ग समान मालूम होता था। कवि ने धौलपुर को धौलहरनग्र लिखा है।[1] जैनो की घनी बस्ती थी और उनकी रुचि पूजा पाठ आदि मे रहती थी।

शाकम्भरी

वर्तमान सांभर का नाम ही शाकम्भरी रहा है। शाकम्भरी का उल्लेख सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्र श के विभिन्न ग्रन्थो मे मिलता है। शाकम्भरी देवी के पीठ के रूप में वर्तमान साभर की प्राचीनता महाभारत काल तक तो चली ही जाती है· महाभारत (वनपर्व) देवी भागवती 7।28, शिवपुराण (उमासहिता) मार्कण्डेयपुराण और मूर्ति रहस्य आदि पौराणिक ग्रन्थो मे शाकम्भरी की अवतार कथाओ मे शतवार्षिकी अनावृष्ठि, चिन्ताकुल ऋषियो पर देवी का अनुग्रह, जलवृष्टि, शाकादि प्रसाद दान द्वारा धरणी के भरण पोषण आदि की कथाएँ उल्लेखनीय हैं।[2] वैंष्णाव पुराणो मे शाकम्भरी देवी के तीनो रूपो मे शताक्षि, शाकम्भरी और दुर्गा का विवेचन मिलता है। देश मे शाकम्भरी के तीन साधना पीठ है। पहला सहारनपुर मे दूसरा सीकर के पास एव तीसरा साभर मे स्थित है। यो तो साभर को शाकम्भरी का प्रसिद्ध साधना पीठ होने का गौरव प्राप्त है लेकिन इसमे स्थित प्रसिद्ध तीर्थस्थली देवदानी (देवयानी) के आधार पर भी इस नगर की परम्परा महाभारत काल तक चली जाती है।

जैन धर्म और जैन सस्कृति की दृष्टि मे शाकम्भरी प्रारम्भ से ही महत्त्वपूर्ण नगर रहा। मारवाड प्रदेश का प्रवेश द्वार होने के कारण भी इस नगर का अत्यधिक महत्त्व रहा। देहली एव आगरा से आने वाले जैनाचार्य शाकम्भरी मे होकर ही

---

१ अहो धोलहर नग्र वन देहुरा थान,
देवपुर सोभैं जी सर्ग्र समान
पौणि छत्तीस लीला करैं
अहो करैं पूजा नित जपै अरहत।

२ स्वादूनि फलमूलानि भक्षणार्थ ददौ शिवा।
शाकम्भरीति नामापि तद्दिनात् समभून्नृप ।।देवी भागवती ७।२८
आतिथ्य च कृत तेषा, शाकेन किल भारत।
तत शाकम्भरीत्येव नामा यस्या· प्रतिष्ठितम्। महाभारत वनपर्व ८४

मारवाड मे विहार करते थे। अजमेर, चित्तौड, चाकसू, नागौर एव आमेर मे होने वाले भट्टारको ने साभर को अपने विहार से खूब पावन किया था। महाकवि वीर आशाधर, घनपाल एव महेश्वरसूरि ने अपनी कृतियो मे शाकम्भरी का बड़ी श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है। हिन्दी के प्रसिद्ध जैन कवि ब्रह्म रायमल्ल ने सवत् 1625 मे ज्येष्ठ जिनवर कथा एव जिन लाडूगीत की रचना साभर में ही की थी। दोनो ही लघु रचनाएँ हैं। नरायना से जो प्राचीन प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई है ये इस प्रदेश एव उसकी राजधानी साभर मे जैन सस्कृति की विशालता पर प्रकाश डालती हैं। सवत् 1524 मे यहाँ जिनचन्द्राचार्य कृत सिद्धान्तसार सग्रह की प्रतिलिपि की गई।[१] सवत् 1750 मे यहाँ भट्टारक रत्नकीर्ति साभर पधारे और श्राविका गोगलदे ने सूक्तमुक्तावली टीका की पाडुलिपि लिखवा कर उन्हे भेंट की थी।[२] सवत् 1829 मे अजमेर के भट्टारक विजयकीर्ति के अम्नाय के हरिनारायण ने पुराणसार की प्रति करवा कर प० माणकचन्द को भेट मे दी थी। 19 वी शताब्दी मे यहाँ श्री रामलाल पहाड्या हुए जो अपने समय के अच्छे लिपिकार थे।[३]

वर्तमान मे नगर मे 4 दिगम्बर जैन मन्दिर हैं जिनमे विशाल एव प्राचीन जिन प्रतिमाएँ विराजमान है। नगर के धान मण्डी के मन्दिर को जो प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थो का संग्रह है वह यहाँ के निवासियो की साहित्यिक रुचि की ओर सकेत करने वाला है। नगर मे इस युग मे भी जैनो की अच्छी वस्ती है और वे अपने आचार व्यवहार तथा शिक्षा आदि की दृष्टि से प्रदेश मे प्रमुख माने जाते हैं।

सांगानेर

राजस्थान की राजधानी जयपुर से १३ किलोमीटर पर दक्षिण की ओर स्थित सागानेर प्रदेश के प्राचीन नगरो मे प्रमुख नगर माना जाता है। प्राचीन ग्रन्थो मे इस नगर का नाम सग्रामपुर भी मिलता है। १० वी शताब्दी के पूर्व मे ही इस नगर के कभी अपने विकास की चरम सीमा पर पहुच कर प्रसन्नता के प्रसून वरसाये तो कभी पतन की ओर दृष्टि डाल कर उसे आँसू भी वहाने पडे। १२ वी शताब्दी तक यह नगर अपने पूर्ण वैभव पर था। वहाँ विशाल मन्दिर थे। धवल एव कलापूर्ण प्रासाद थे। व्यापार एव उद्योग था। इसके साथ ही वहाँ थे—सभ्य एव

---

१ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची, पचम भाग, पृ० ८३।
२ वही, पृ० ७०६।
३ वही, पृ० २६०।

सुसंस्कृत नागरिक । साँगानेर (सग्रामपुर) के समीप ही चम्पावती (चाकसू) तक्षकगढ (टोडारायसिंह) एव आम्रगढ (आमेर) के राज्य थे जिन्हें उसकी समृद्धि एव वैभव पर ईर्ष्या थी । कालान्तर मे नगर के भाग्य ने पलटा खाया और धीरे-धीरे वह वीरान नगर-सा बन गया । जिसमे संघी जी का जैन मन्दिर एव अन्य घरो के अतिरिक्त कुछ भी नही रहा । मन्दिर के उत्तु ग शिखर ही नगर के वैभव के एक मात्र प्रतीक रह गये ।

१६ वीं शताब्दी मे आमेर के राज सिंहासन पर राजा पृथ्वीसिंह सुशोभित थे । वे वीर राजपूत थे तथा अपने राज्य की सीमाएँ बढाने के तीव्र इच्छुक थे । उनके १२ राजकुमार थे जिन्हे पृथ्वीसिंह ने आमेर मे ही एक-एक कोटडी (किले के रूप मे) बनाने की स्वीकृति दे दी । इन्ही १२ राजकुमारो मे से एक राजकुमार ने सांगा जो वीरता एवं सूझ वाले थे । महाराजा पृथ्वीसिंह के पश्चात् महाराजा रतनसिंह आमेर के शासक बने । रतनसिंह की और राजकुमार सागा की अधिक दिन तक नही बन सकी । राजकुमार सागा बीकानेर के शासक जयसिंह के पास चले गये । कुछ ही समय मे उसने वहाँ सेना एकत्रित की और शस्त्रो से पूर्ण सुसज्जित होकर आमेर की ओर चल दिया । मार्ग मे मोजमाबाद के मैदान मे ही दोनो सेनाओ मे जमकर लडाई हुई और उस युद्ध मे विजयश्री सागा के हाथ लगी । राजकुमार सागा आमेर की ओर चल पडे । मार्ग मे उसे एक उजडी हुई बस्ती दिखलाई दी । सागा जैन मन्दिर की कला एव उसकी भव्यता को देखकर प्रसन्न हो गया । मन्दिर मे विराजमान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के दर्शन किये और उजडी हुई बस्ती को पुन. बसाने का सकल्प किया । यह १६ वी शताब्दी के अन्तिम चरण की घटना है । बस्ती का नाम सांगा के नाम से सग्रामपुर के स्थान पर साँगानेर प्रसिद्ध हो गया । कुछ ही वर्षों मे वह पुन अच्छा नगर बन गया ।

सन् 1561 मे जब मुगल बादशाह अकबर अजमेर के ख्वाजा की दरगाह मे अपनी भक्ति प्रदर्शित करने गये तो आमेर के राजा भारमल्ल ने उनका स्वागत साँगानेर मे ही किया । महाराजा भगवन्तदास के शासन मे हिन्दी के प्रसिद्ध कवि ब्रह्म रायमल्ल हुए जिन्होने साँगानेर मे ही सन् 1576 मे भविष्यदत्त चौपई की रचना समाप्त की । सन् 1582 मे जैनाचार्य हीराविजय सूरि सम्राट अकबर के निमन्त्रण पर उनके दरबार मे गये थे तो वे साँगानेर होकर ही देहली गये थे । साँगानेर निवासियो ने उनका हार्दिक स्वागत किया था । इसके पश्चात् यह नगर 16 वी शताब्दि से 19 वी शताब्दि तक विद्वानो का उल्लेखनीय केन्द्र रहा

सांगानेर का उल्लेख ब्रह्म रायमल्ल ने तो किया ही है इस नगर मे खुशालचन्द काला (17 वी शताब्दि), पुण्यकीर्ति (सवत् 1660), जोधराजगोदीका (16 वी-17 वी शताब्दि) हेमराज ॥ (17 वी शताब्दि) तथा किशनसिंह जैसे विद्वान् हुए। जयपुर बसने के 50 वर्ष बाद तक यह नगर जैन साहित्यिको के लिए विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा। ब्रह्म रायमल्ल ने साँगानेर के बारे मे जो वर्णन किया है उससे पता चलता है कि उस समय यह नगर धन-धान्यपूर्ण था तथा चारो ओर पूर्ण सुख शान्ति थी। श्रावको की यहाँ बस्ती की वे सभी धन सम्पत्ति युक्त थे। सबसे अच्छी बात यह थी कि उनमे आपस मे पूर्ण मतैक्य था। नगर मे जो जैन मन्दिर थे उनके उन्नत शिखर आकाश को छूते थे। बाजार मे जवाहरात का व्यापार खूब होता था। साँगानेर ढूढाहड देश मे विशेष शोभा युक्त था। शहर के पास ही नदी बहती थी और चारो ओर पूर्ण सुख-शान्ति व्याप्त थी।

विद्वानो के केन्द्र के साथ ही सागानेर भट्टारको का केन्द्र भी था। आमेर गद्दी होने के पश्चात् भी वे बराबर सागानेर आया करते थे। अभी तक जितनी भी प्रशस्तियाँ मिली है उनमे सभी मे भट्टारको का अत्यधिक श्रद्धा के साथ नामोल्लेख किया गया है। लेकिन भट्टारको का विशेष विहार भट्टारक चन्द्रकीर्ति (संवत् 1622-62 तक) से बढा और भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति, भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति, भट्टारक जगत्कीर्ति, भट्टारक महेन्द्रकीर्ति, भट्टारक सुखेन्द्रकीर्ति आदि का विशेष आवागमन रहा। तेरहपन्थ के उदय के समय भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति वही सागानेर मे थे।[1] खुशालचन्द काला लक्ष्मीदास के शिष्य थे जो स्वय भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के प्रमुख शिष्य थे।

देस ढूंढाहड सोभा वणी, पूजै तहा आलि मण तणी।
निर्मल तलै नदी बहु फिरै, सुख सै वसे बहु सागानेरि ॥
चहुदिशि बण्या भला बाजार, भरै पटोला मोती हार।
भवन उत्तुंग जिनेश्वर तणा सोभै चदवा तोरणा घणा।
राजा राजे भगवन्तदास, राजेश्वर सेवहि बहु तास।
परजा लोग सुखी सब वसै, दुखी दलिद्री पुरवै आस।
श्रावक लोग वसै धनवन्त, पूजा करहि जपहि अरिहन्त।
उपरा ऊपरी वैर न काम, जिहि अहिमिन्द सुर्ग सुखनाम ॥

1. भट्टारक आंबेरिके नरेन्द्रकीरति नाम।
यह कुपन्थ तिनकै समै नयो चल्यो अघ धाम ॥

भट्टारको एव विद्वानो का केन्द्र होने के साथ ही यहाँ प्राचीन साहित्य का भारी संग्रह था। वड़े-वडे शास्त्र भण्डार थे। तथा उनमे प्राचीन ग्रन्थो की प्रतिलिपि करने के पूर्ण साधन थे। जयपुर के तेरहपन्थी मन्दिर (वडा), ठोलियो का मन्दिर, वधीचन्द जी का मन्दिर एव गोधो के मन्दिर मे जो शास्त्र भण्डार है वे सव पहिले सांगानेर के विभिन्न शास्त्र भण्डारो मे थे। इसके अतिरिक्त यह नगर सुधारको का भी केन्द्र था। दिगम्वर समाज के तेरहपन्थ का सवसे अधिक पोषण यही हुआ तथा इसके मुख्य नेता अमरा भौसा ने जो हिन्दी के कवि जोधराज गोदीका के पिता थे। बख्तराम साह ने अपने ग्रन्थ मिथ्यात्व खण्डन पुस्तक मे तेरहपन्थ एव अमरचन्द के बारे मे विस्तृत जानकारी दी है। जिसके अनुसार अपना भौंसा को धन का अत्यधिक गुमान था तथा वह जिनवाणी का अविनय करता था इसलिए उसको वहाँ के श्रावको ने जिन मन्दिर से निकाल दिया इसके पश्चात् उसने तेरहपथ का प्रचार किया और अपना एक नया मन्दिर बनवा लिया।[२]

---

2 जैंयुर निकटि वसैं एक ओर, सागानेरि आदि तैं ठोर।
सवे सुखी ता नगरी माहि, तिन मे श्रावक सुवस वसाहि।
वडे-वडे चैंत्यालथ जहा, व्रह्मचार इक वसैं तहा।
अमरचन्द ही ताको नाम, सोभित सकल गुननि का धाम।
ताके ढिगी मिली आवत पन्च, कथा सुनत तजि कैं परपन्च।
तिनि मैं अमरा भौसा जाति, गोदीका यह व्योंक कहाति।
धनको गरव अधिक तिन धरयौ, जिनवाणो को अविनयकरयो।
तव वालो श्रावकनि विचारि, जिन मन्दिर तैं दयो निकारि।
जव उन कीन्हो क्रोध अनत, कही चले हो नूतन पन्थ।
तव वै अध्यातमी कितेक मिलैं, द्वादश सवै येकसे मिले।
वनवो कछुयक लालच देवे, अपने मत मे आने छे छैं।
नयो देहुरो ठान्यो और, पूजा पाठ रचे वर जो।
मतरहे मेरु निडोत्तरैं शान्, मत थाधो असैं अध जाल।
लोगनि मिलि कैं मतो उपायो, तेरहपन्थ नाम ठहरायो।

उस समय सागानेर के जैन समाज की बहुत ख्याति बढ गयी थी तथा धार्मिक एवं सामाजिक मामलो को निवटाने की दृष्टि से भी वहाँ के प्रमुख श्रावको के पास आते और उनसे मार्ग दर्शन चाहा जाता। कविवर जोधराज गोदीका के कारण सागानेर को और भी प्रसिद्धि एव लोकप्रियता प्राप्त हुई। उसने लिखा है कि हजारों नगरो मे सागानेर प्रमुख नगर था।[1]

सागानेर साहित्यिक केन्द्र के अतिरिक्त व्यापारिक केन्द्र था। जयपुर बसने के पूर्व इस नगर का बहुत महत्त्व था। बाहर के विद्वान् एवं व्यापारी यहाँ आकर रहने लगते थे। हिन्दी के विद्वान् किशनसिंह (17–18 वी शताब्दि) व्यापार के लिए ही रामपुरा छोड़कर सांगानेर आकर रहने लगे थे। इसी तरह ब्रह्म रायमल्ल (16 वीं शताब्दि) ने भी यहाँ काफी समय तक रहे थे। हेमराज द्वितीय सांगानेर के थे लेकिन फिर कामा जाकर रहने लगे थे।[2]

सागानेर मे बडी भारी सख्या मे ग्रन्थो की प्रतिलिपियाँ की गई जिससे यहाँ के समाज की साहित्यिक प्रियता का पता लगता है। सवत् १६०० मे सागा के शासन मे भट्टारक वर्धमान देव कृत वराग चरित्र की प्रतिलिपि की गयी थी। उसमे सागा को 'राव' की उपाधि से सम्बोधित किया है।[1] सागानेर के पुनस्थापन के पश्चात् सवतोल्लेख वाली यह प्रथम पाण्डुलिपि है। इसी ग्रन्थ की पुन सवत् १६३१ मे प्रतिलिपि की गयी थी। उस समय नगर पर महाराजाधिराज भगवन्तसिह का राज था।[2] इसके पश्चात् आदिनाथ चैत्यालय मे सस्कृत की प्रसिद्ध पुराण कृति हरिवशपुराण की प्रतिलिपि की गयी। उस समय महाराजा मानसिह का शासन था। सवत् १७१२ मे आर्यिका चन्द्रश्री ने दिगम्बर जैन मन्दिर ठोलियो मे चातुर्मास किया। उनकी शिष्या नान्ही ने उस समय अष्टान्हिका व्रत रखा और उसके निमित्त

१　सागानेरि सुथान मे, देश ढूढाहडि सार।
　वा सम नहि को और पुर, देखे सहर हजार॥

२.　उपनौ साँगानेरि को, अब कामागढ वास।
　यहाँ हेम दोहा रचे, स्वपर बुद्धि परकास॥

१.　ग्रन्थ सूची प्रथम भाग–पृष्ठ सख्या २८४।

२　ग्रन्थ सूची तृतीय भाग–पृष्ठ सख्या ७८।

धर्म परीक्षा की प्रति करवा कर मन्दिर मे विराजमान की।[3] १८ वी एव १९ वी शताब्दी मे यहाँ ग्रन्थो की प्रतिलिपि करने का कार्य बराबर चलता रहा। जयपुर के ग्रन्थ भण्डारो से पचास से भी अधिक ऐसी पाण्डुलिपियाँ होगी जिनका लेखन कार्य इसी नगर मे हुआ था। प्रतिलिपि करने वाले पण्डितो मे प० चोखनन्द, प० सवाई-राम गोधा एव उनके शिष्य नानगराम का नाम उल्लेखनीय हैं।

साँगानेर जैन एव वैष्णव मन्दिरो की दृष्टि से भी उल्लेखनीय नगर है। यहाँ का सघी जी का जैन मन्दिर राजस्थान के प्राचीन एव कलापूर्ण मन्दिरो मे से एक मन्दिर है। इस मन्दिर का निर्माण १० वी शताब्दि मे हुआ था। मन्दिर के चौक मे जो वेदी हैं उसकी बादरवाल मे सवत् १००१ का एक लेख अकित है।[४] जिसके अनुसार मन्दिर का निर्माण सवत् १००१ के पूर्व ही होना चाहिये।

इस मन्दिर की कला की तुलना आबू के दिलवाडा के जैन मन्दिर से की जा सकती है। जिसका निर्माण इसके बाद मे हुआ था। मन्दिर का द्वार अत्यधिक कला-पूर्ण है और चौक मे दोनो ओर स्तम्भो पर किन्नर-किन्नरियाँ विविध वाध्य यन्त्रो के साथ नृत्य करती हुई प्रदर्शित की गयी हैं। उनके हाथ मे फूलो की माला है तथा वे चवर करते हुए दिखलाये गये है। दूसरे चौक मे जो वेदी है उसके तोरणद्वार एव बाँदरवाल अत्यधिक कला पूर्ण है और ऐसा लगता है जैसे कलाकार ने अपनी सम्पूर्ण कला उन्ही मे उडेल दी है। कलाकार के भाव एकदम स्पष्ट हैं और जिन्हे देखते ही दर्शक भाव विभोर हो जाता है। इसी चौक के दक्षिण की ओर गर्भ-ग्रुह मे सवत् ११८६ की श्वेत पाषाण की भगवान पार्श्वनाथ की बहुत ही मनोज्ञ प्रतिमा है जिसके दर्शन मात्र से ही दर्शक के हृदय मे अपूर्व श्रद्धा उत्पन्न होती है। मन्दिर के द्वितीय चौक के द्वार के उत्तर की ओर 'ढोलामारू' का चित्र अकित है। जिससे पता चलता है कि ११ वी शताब्दि मे भी ढोला मारु अत्यधिक लोकप्रिय था। मन्दिर के तीन शिखर सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र के प्रतीक है।

जैन मन्दिर के अतिरिक्त यहाँ का साँगा बाबा का मन्दिर भी अत्यधिक लोकप्रिय एव इतिहास प्रसिद्ध मन्दिर है। जहाँ साँगा बाबा के चित्र की पूजा की जाती है। यहाँ एक सोगेश्वर महादेव का मन्दिर है जिसका निर्माण राजकुमार सांगा

---

३. ग्रन्थ सूची पचम भाग–पृष्ठ सख्या ११६।

४ सवत् १००१ लिखित पण्डित तेजा शिष्य आचार्य पूर्णचन्द्र।

ने कराया। एक जनश्रुति के अनुमार राजा मार्गसिंह की कहानी जुडी हुई है तभी से "साँगानेर का साँगा बाबा लाये राजा मान" के नाम से दोहा भी लोकप्रिय बन गया।

साँगानेर आज भी हाथ से बने कागज एवं विशिष्ट कपडे की छपाई के लिये प्रसिद्ध है। नगर का तेजी से विकास हो रहा है और इसकी आज जनसख्या १६००० तक पहुँच गयी है।

तक्षकगढ़ (टोडारायसिंह)

टोडारायसिंह ढू ढाड प्रदेश के प्राचीन नगरो मे गिना जाता है। शिलालेखो, ग्रन्थ प्रशस्तियो एव मूर्तिलेखो मे इस नगर के टोडारायत्तन, तोडागढ, तक्षकगढ, तक्षकदुर्ग आदि नाम मिलते हैं। वर्तमान मे यह टोक जिले मे अवस्थित है तथा जयपुर से दक्षिण की ओर ६० मील है। नगर के चारो ओर परकोटा है तथा परकोटे मे कितने ही खण्डहर भवन हैं जिनसे पता चलता है कि कभी यह नगर समृद्धशाली एव राज्य की राजधानी रहा था। स्वय तक्षकगढ़ नाम ही इस बात का द्योतक है कि यह नगर नाग जाति के शासको का नगर था। मथुरा एव पद्मावती मे नाग जाति का दूसरी तीसरी शताब्दी में शासन था इसलिये यह नगर भी उसी समय बसाया गया होगा। ७वी शताब्दी मे टोडारायसिंह चाटसू के गुहिल वंशीय शासको द्वारा शासित था। १२ वी शताब्दी मे यह नगर अजमेर के चौहानो के अधीन आ गया। इसके पश्चात् टोडारायसिंह विभिन्न शासको के अधीन चलता रहा इसमे देहली, आगरा एव जयपुर के नाम उल्लेखनीय हैं। सोलकियो के शासन मे यह नगर विकास की ओर बढने लगा।

अकबर ने सोलकियो से टोडारायसिंह को जीत लिया और आमेर के राजा भारमल के छोटे भाई जगन्नाथ को यहाँ का शासन भार सम्हला दिया। जगन्नाथ राव के शासनकाल मे यहाँ बावडियो का निर्माण हुआ। स्वय महाराजा ने भी अपने नाम की बावडी बनवायी। इसलिये टोडारायसिंह बावडी, दावडी, गट्टी और पट्टी के लिये प्रदेश भर मे प्रसिद्ध हो गया।

टोडारायसिंह जैन साहित्य एवं सस्कृति की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण नगर माना जाता रहा। राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारो मे सैकडो ऐसी पाण्डुलिपियाँ

---

१. प्रशस्ति सग्रह—डा० कासलीवाल—पृष्ठ सख्या ११३।

हैं जिनकी प्रतिलिपि इसी नगर मे हुई थी और उनके आधार पर इसे जैन साहित्य एवं संस्कृति का केन्द्र माना जा सकता है। सबसे अधिक प्रतिलिपियाँ १५ वी शताब्दी से १८ वी शताब्दी तक की मिलती है। सवत् १४९७ मे यहाँ प्रवचनसार की प्रति की गयी थी। सवत् १६१२ मे राव श्रीरामचन्द्र के शासन काल मे पुष्पदन्त कृत णायकुमार चरिउ की प्रतिलिपि की गयी थी, इसी तरह सवत् १६६४ मे जब यहाँ राव जगन्नाथ का शासन था, आदिपुराण (पुष्पदन्त कृत) की पाण्डुलिपि तैयार की गयी थी।[1] सवत् १६३६ मे हिन्दी के प्रसिद्ध कवि ब्रह्म रायमल का आगमन हुआ और उन्होने अपनी आध्यात्मिक कृति परमहस चौपई की रचना समाप्त की।

१८ वी शताब्दी मे यहाँ सस्कृति के दो उच्चकोटि के विद्वान् हुये। इनमे प्रथम विद्वान् पेमराज श्रेष्ठी के पुत्र वादिराज थे जिन्होंने इसी नगर मे सवत् १७२९ मे वाग्भट्टालंकारावचूरि–कवि चन्द्रिका की रचना की थी।[3] कवि वहाँ के राजा राजसिंह के मन्त्री थे जो भीमसिंह के पुत्र थे। वादिराज के ही भाई जगन्नाथ थे। ये भी सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। जगन्नाथ भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के प्रिय शिष्य थे और उनके समय मे टोडरायसिंह मे सस्कृत ग्रन्थो का अच्छा पठन पाठन था।

यहाँ का प्रसिद्ध आदिनाथ दि जैन मन्दिर सवत् १५९५ मे मडलाचार्य धर्मचन्द्र के उपदेश से खण्डेलवाल जाति के श्रावको ने निर्माण कराया था।[4] उस समय नगर पर महाराजाधिराज सूर्यसेन के पुत्र मौदीसेन तथा उनके पुत्र पृथ्वीराज पूरणमल का शासन था। इसी मन्दिर मे आदिनाथ की जो मूलनायक प्रतिमा है उसकी प्रतिष्ठा सवत् १५१६ मे हुई थी।[5] इस मन्दिर मे सवत् ११३७ की प्राचीनतम

---

१ वही, पृष्ठ ८९

२ सोलासै छत्तीस वखान, ज्येष्ठ सावली तेरस जान।
सोभैवार सनीसरवार, ग्रह नक्षत्र योग शुभसार ॥ ६४४ ॥
देस भावो तिह नागरचाल, तक्षिकगढ अति वन्यो विसाल।
सोभै वाडी वाग सुचग, कूप वावडी निरमल अग ॥ ६४५ ॥

३ श्रीराजसिंह नृपति जैयसिंह एव श्रीतक्षकाख्य नगरी अणहिल्लतुल्या।
श्री वादिराज विवुधो ऊपर वादिराज, श्री सूत्रवृत्तिरिह नदतु चार्कचन्द्र ॥

४ आदिनाथ के मन्दिर मे वेदी के पीछे की अकित शिलालेख।

५ आदिनाथ के मन्दिर मे तिवारे मे दायी ओर वेदी का लेख।

प्रतिमा है। यहाँ पार्श्वनाथ की दो पांच फीट ऊँची प्रतिमाएँ हैं जो अत्यधिक मनोज्ञ हैं। इनमे से एक मूर्ति मन्दिर की मरम्मत करते समय प्राप्त हुई थी।

आदिनाथ के समान ही नेमिनाथ का मन्दिर भी विशाल एव प्राचीन है। इसमे नेमिनाथ स्वामी की मूलनायक प्रतिमा है जो अत्यधिक मनोहर एवं मनोज्ञ है। ग्राम मे उत्तर-पश्चिम की ओर छतरियाँ हैं वहाँ भट्टारको की निषेधिकाएँ हैं। भट्टारक प्रभाचन्द्र की निषेधिका सवत् १५०६ मे स्थापित की गयी थी। दूसरी निषेधिका सवत् १६४४ मे स्थापित की गयी थी। इन निषेधिकाओ से ज्ञात होता है कि टोडारायसिंह कभी भट्टारको की गतिविधियो का प्रमुख केन्द्र रहा था।

यही पहाड पर एक नशिया है वो कभी जैन मन्दिर था तथा आजकल सार्वजनिक स्थान बना हुआ है। मन्दिर के द्वार पर सवत् १८८० का एक लेख आज भी उपलब्ध है।

सवाई माधोपुर

रणथम्भौर दुर्ग की छत्रछाया मे बसा हुआ सवाई माधोपुर महाराजा सवाई माधोसिंह (१७००–६७) द्वारा सवत् १८१६ (१७६२) मे बसाया हुआ प्राचीन नगर है। आजकल यह नगर जिला मुख्यालय है। चारो ओर घने जगल एवं पर्वतमालाओ से घिरा हुआ सवाई माधोपुर की प्राकृतिक छटा देखत ही बनती है। नगर के पास ही घने जगल मे शेरगढ है जो पहले अच्छी बस्ती थी। वहाँ का जैन मन्दिर अपने प्राचीन वैभव की याद दिला रहे हैं।

सवाई माधोपुर जैन मन्दिरो एव शास्त्र भण्डारो की दृष्टि से कभी समृद्ध नगर रहा था। यहाँ के मन्दिरो मे प्राचीन मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित हैं मूर्तियाँ भी विशाल एव कलापूर्ण हैं जिससे पता चलता है कि कभी यह नगर जैन धर्म एव सस्कृति का बडा केन्द्र था। सवत् १८२६ मे सम्पन्न पचकल्याणक प्रतिष्ठा अपने ढग की महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठा थी तथा जिसमे हजारो की सख्या मे जैन प्रतिमाये सुदूर प्रान्तों से लायी जाकर प्रतिष्ठापित की गयी थी। इसके प्रतिष्ठापक थे दीवान सघी नन्दलाल प्रतिष्ठाकारक भट्टारक सुरेन्द्र कीर्ति थे। उस समय यहाँ पर जयपुर के महाराजा सवाई पृथ्वीसिंह जी का शासन था।

वर्तमान मे यहाँ रणथम्भौर, शेरगढ तथा चमत्कार जी के मन्दिर के अतिरिक्त ६ मन्दिर एव चैत्यालय है।

दिगम्बर जैन मन्दिर दीवान जी का विशाल मन्दिर है । मन्दिर तीन शिखरो एवं चार कोनो मे चार छत्रियो सहित है । मन्दिर मे एक भौंहरा है जिसमे मूर्तियाँ विराजमान हैं । यहाँ हस्तलिखित ग्रन्थो का भी अच्छा सग्रह है । जिसमे करीव 300 पाडुलिपियाँ होगी ।

नगर का दूसरा प्रसिद्ध मन्दिर साँवला जी का है । सावला वावा की मूर्ति मनोज एवं चमत्कारिक है । इसीलिए जव जयपुर राज्य मे वैष्णव जैन उपद्रव हुये उस समय इस मन्दिर को लूटने का प्रयास किया गया था लेकिन मूर्ति की चमत्कार से उपद्रवी कुछ भी नही कर सके । इस मन्दिर मे 13 वी–14 वी शताब्दी तक की मूर्तियाँ हैं ।

पचायती दिगम्वर जैन मन्दिर यहाँ का नवीन मन्दिर है । साम्प्रदायिक उपद्रव मे पंचायती मन्दिर को भी लूटा गया तथा नष्ट किया गया । उसके स्थान पर इस मन्दिर का निर्माण कराया गया । यह पचायती वडा मन्दिर पार्श्वनाथ जी का है इसमे हस्तलिखित ग्रन्थो का अच्छा सग्रह है । मुसावडियो के मन्दिर का निर्माण साम्प्रदायिक उपद्रव के वाद हुआ । यह नगर सेठ का मन्दिर है ।

सवाई मोधोपुर मे जैन कवि चम्पाराम हुए जिन्होने सवत् 1864 मे भद्रबाहु चरित भाषा टीका लिखी । चम्पाराम हीरालाल भाँवसा के पुत्र थे ।[1] सवत् 1825 मे यहाँ द्रव्य सग्रह की प्रतिलिपि की गयी । इसी तरह पचासो और भी प्रतियाँ मिलती है जिनकी यहाँ प्रतिलिपि हुई थी ।

देहली

गत सैकडो वर्षों से देहली को भारत का प्रमुख नगर रहने का सौभाग्य प्राप्त है । इसलिये यहाँ के नागरिको ने यदि अच्छे दिन देखे है तो उन्हे अनेक वार बुरे दिन भी देखने पडे हैं । तैमूरलग, नादिरशाह जैसे नृशस आक्रमणकारियो ने यहाँ के नागरिको पर जो अत्याचार किये थे वह मुसलिम युग मे नगर की सस्कृति एव सभ्यता को मिटाने के जो वर्वर कार्य किये थे उन्हे याद करते ही पाषाण हृदय भी द्रवित हो जाता है । लेकिन अनेक अत्याचारो, लूट, खसोट एव विनाश कार्य होने पर

1. ग्रन्थ सूची भाग–3, पृष्ठ 212

भी यहा के नागरिको ने कभी हिम्मत नही हारी और अपने साहस, सूझबूझ से संस्कृति एव धार्मिक विकास मे लगे रहे।

देहली मे जैन धर्म का प्रारम्भ से ही वर्चस्व रहा। जैनो की संख्या, साहित्य-निर्माण एव धार्मिक तथा सास्कृतिक समारोहो की दृष्टि से इसने देश का मार्गदर्शन किया है। राजपूत काल से भी अधिक सम्मान जैन श्रेष्ठियो का मुसलिम काल मे रहा। अलाउद्दीन खिलजी के समय (१२९६-१३९६) मे नगर सेठ पूर्णचन्द्र नामक श्रावक था। बादशाह की उस पर विशेष कृपा थी। सेठ पूर्णचन्द्र के आग्रह वश तत्कालीन दिगम्बर आचार्य माधवसेन देहली आये शास्त्रार्थ मे दो ब्राह्मण विद्वानो को हराया। फिरोजशाह तुगलक के समय देहली मे भट्टारक गादी की स्थापना की गई। इसके बाद से देहली भट्टारको का प्रमुख केन्द्र-स्थान बन गया। राजस्थान के विभिन्न जैन-ग्रन्थ भण्डारो मे १४वी शताब्दी मे देहली नगर मे होने वाली पाण्डुलिपियो का सग्रह मिलता है। जयपुर, उदयपुर आदि नगरो के शास्त्र भण्डारो मे १४ वी एव १५ वी शताब्दी की जो पाण्डुलिपिया उपलब्ध होती है वे अधिकाश देहली मे लिपि-बद्ध की गई थी। अपभ्र श के भी कितने ही ग्रथ देहली मे निर्मित किये गये थे। ग्रथो मे ही हुई प्रशस्तियो के आधार पर देहली के जैनो मे साहित्यिक प्रेम का पता लगता है। विबुध श्रीधर ने सवत् ११८९ को देहली मे नट्टल साहू की प्रेरणा से पासणाट-चरिउ की रचना की थी। उस समय यहा पर तोमरवशीय शासक अनगपाल का शासन था।

ब्रह्म रायमल्ल ने १६१३ मे प्राचीन ग्रन्थो की प्रतिलिपि करके अपना साहित्यिक जीवन देहली मे ही प्रारम्भ किया था। उस समय यहा भट्टारको का चरमोत्कर्ष था। चारो ओर धार्मिक, साहित्यिक एव सास्कृतिक क्षेत्र मे उन्ही का शासन चलता था। मुगल शासन मे ही देहली मे लाल मन्दिर का निर्माण हुआ जो जैनो के महान् प्रभाव का द्योतक है। ब्रिटिश युग मे भी जैनधर्मावलम्बियो ने शासन एव सास्कृतिक गतिविधियो मे अपना प्रभाव रखा। आज भी देहली का जैन समाज साहित्यिक तथा सास्कृतिक दृष्टि से अत्यधिक जागरूक माना जाता है।



भविष्यदत्त चौपई

भविष्यदत्त चौपई महाकवि की प्रमुख कृति है। इसका रचना काल सवत् १६३३ कार्तिक सुदि १४ शनिवार तथा रचना स्थान सांगानेर है। प्रस्तुत पाठ कृति का प्रारम्भिक अश है। जो तीन पाण्डुलिपियो के आधार पर तैयार किया गया है। इन पाण्डुलिपियो का परिचय निम्न प्रकार है—

क प्रति — पत्र सख्या ६६। आकार ६×७॥ इञ्च।

लिपिकाल सवत् १७१६ पौष शुक्ला प्रतिपदा।

प्राप्ति स्थान—साहित्य शोध विभाग, दि० जैन अ० क्षेत्र, श्री महावीरजी, जयपुर।

विशेष—प्रस्तुत पाण्डुलिपि एक गुटके मे सग्रहीत है जिसमे ब्रह्म रायमल्ल की दूसरी कृति हनुमत कथा का भी सग्रह है। इसके अतिरिक्त सील रासो एव दान-सील-तप-भावना की चौपई का सग्रह भी है लेकिन दोनो कृतियां ही अपूर्ण है। गुटका जीर्ण अवस्था मे है।

ख प्रति — पत्र सख्या ६८। आकार ७×७ इञ्च।

लेखन काल — सवत् १६६० भादवा वुदि शुक्रवार।

प्राप्ति स्थान — साहित्य शोध विभाग, महावीर निकेतन, जयपुर।

विशेष — प्रस्तुत पाण्डुलिपि एक गुटके मे सग्रहीत है। जिसमे प्रारम्भ के १७ पृष्ठ नही है। उसमे चौपई की पद्य सख्या अलग-अलग न देकर एक साथ दी गई है जिनकी सख्या ६१५ दी हुई है। इस पाण्डुलिपि मे ६१५ वां पद्य निम्न प्रकार

दिया हुआ है जिसमे स्वय महाकवि एव साथ में उनके गुरु का स्मरण भी किया गया है—

मगल श्री अरहत जिणिद, मगल अनन्तकीर्त्ति मुणिद।
मगल पढइ करई वखाण, मगल ब्रह्म राइमल सुजाण ॥६१५॥

पाण्डुलिपि की लेखक प्रशस्ति भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिससे पता चलता है कि यह गुटका आगरा मे बादशाह शाहजहाँ की हवेली मे लिखा गया था। उस हवेली मे जौता पाटणी रहते थे। वहाँ चन्द्रप्रभु का मन्दिर था। उस मन्दिर मे छीतर गोदीका की पाण्डुलिपि थी जिसे देखकर प्रस्तुत पाण्डुलिपि तैयार की गयी थी। ग्रन्थ प्रशस्ति महत्त्वपूर्ण है जो निम्न प्रकार है —

संवत् १६६० वर्षे भादवा वद १ सुक्रवार। पोथी लिख्यते पोथी सा. जौता पाटणी दानुका की लिखी आगरा मध्ये पतिसाही श्री साहिजहा की हवेली श्री जलाखाँ कोरची की मध्ये वास जौता पाटणी। सुभं भवतु। श्री चन्द्रप्रभ के देहुरै। सा. छीतर गोदीका की पोथी देखि लिखी।

मनधरि कथा सुणै कोई, ताहि घरि सुख सपति सुत होई।
थोडी मति किया वखाण, भवसदत पायो निर्वाण ॥१॥
प्रशातमति गंभीरं, विश्व विद्या कुलग्रहं।
भव्यौकसरण जीयात, श्रीमद् सर्वज्ञशासन ॥१॥

ग प्रति—पत्र संख्या ६६। आकार ११ × ४ इन्च।

लेखन काल—सवत् १७८४ जेठ वदि ७ सोमवार।

प्राप्ति स्थान—महावीर भवन, जयपुर।

प्रशस्ति—सवत् १७८४ का जेठ वदि ७ सोमवार। आवैरि नगरे श्री मल्लिनाथ जिनालये। साहा का देहुरामध्ये। भट्टारक जी श्री श्री श्री देवेन्द्रकीर्त्ति जी का सिषि पांडे दयाराम लिखित जाति सोनी नराणा का वासी पोथी लिखी।

प्रस्तुत पाण्डुलिपि मे प्रारम्भ मे मगलाचरण एव प्रारम्भिक मे पद्यो की सख्या अलग-अलग दी गयी है। इसके पश्चात् पद्यो की संख्या एक साथ दी हुई है।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

अथ भविष्यदत्त चौपई लिख्यते ॥

मंगलाचरण

स्वामी चंद्रप्रभ जिणनाथ । नमौं चरण धरि मस्तकि हाथ ॥
लंछिन वर्ण्यौ चद्रमा तासु । काया उज्जल अधिक उजासु ॥१॥

चौबीस तीर्थङ्कर स्तवन

आदिनाथ बंदौ जिणदेव । सुर नर फण मिलि आए सेव ।
अजितनाथ जे वदौ भाइ । दुःख दालिद्र रोग सहु जाइ ॥२॥

सभवनाथ नमौं गुणवंत । भए सिद्ध सुख लहै अनंत ।
अभिनन्दण प्रणमौं बहु भाइ । रक्षा करी जीव छह काय ॥३॥

प्रणमु सुमति सुमति दातार । भवियण भव उतारण पार ।
बदौं प्रद्मप्रभु जिणराइ । बदत असुभ कर्म छै जाइ ॥४॥

हरित वर्ण जिणदेव सुपास । बदत पुरवै भवियण आस ।
चद्रप्रभ का प्रणमौ पाइ । ऊजल वर्ण सनिर्म्मल काय ॥५॥

प्रणमौ पहुपदत जिननाथ । मुक्ति रमणिस्यौ कीन्हौ साथ ।
नमौं देव सीतल धरि ध्यान । मैणराई कौ मोडिउमान ॥६॥

जिण श्रेयास बदौं विक्षात । स्वामी करौ करम कौ घात ।
बासपुजि वदौ जगिसार । उपजै बुद्धि होइ विसतार ।६॥

नमौ विमल जिन त्रिभुवन देव । जास पसाई विमल मति एव ।
प्रणमौ जिरण चौदह अनंत । काटि कर्म पाल्यौ सिव पंथ ॥१०॥

वंदौ विधिस्यौ धर्म जिणिंद । करइ सेव नर इंद फुणिंद ।
सांति नमौ जिण मन वच काय । नाम लेत सहु पातिग जाई ॥११॥

कुंथनाथ जे वंदै कोइ । तिहि कै दुख दलिद्र न होइ ।
अरहनाथ वंदु सुध भाइ । मन वच पूजि र सिव पद जाइ ॥१२॥

मल्लि नमौ ते तहि तप कीयो । कवरि कालि तहि संजम लीयो ।
मुनिसुव्रत वंदौ धरि धीर । सोभा सांवल वर्ण सरीर ॥१३॥

इकुइसमौ वंदौ नमिनाथ । मुक्ति रमणिस्यौ कीन्हो साथ ।
नेमिनाथ वंदौ गिरिनारि । तजि काया पहुतौ सिवद्वार ॥१४॥

पारसनाथ करो वंदना । सह्या परिसा कमठ तणा ॥
वीरनाथ वंदो जगिसार । राख्यो धर्म्म तणै व्यौहार ॥१५॥

जिरण चौबीस कह्या जिरणदेव । हुवा अव छै होउसी एव ॥
तिसहु नमौ वचन मन काय । नाम लेत सहु पातिग जाइ ॥१४॥

विरहमाण तियकर वीस । मन वच काया नमौं जे सीस ।
हुवा जेता मूढ केवली । ते सहु प्रणमौ आनंद रली ॥१५॥

वहु विधि प्रणमौ सारद माय । भूलौ आखर आणै ठाइ ॥
करौ इ प्रसाद वुधि जे लहौं । भवसदंत्त को सनमघ कहौं ॥१६॥

मन वच काय नमौ गणवीर । चौदह सै त्रेपन अतिधीर ॥
दीप अढाई चारित धरै । ते सहु नमौ विधि विस्तरै ॥१७॥

देव सास्त्र गुरु वदो भाइ । वुधि होइ तम्ह तणै पसाइ ।
हौं मूरिख नवि जाणौ भेद । लहौं न अर्थ होइ वहु खेद ॥१८॥

देव सास्त्र गुरु कौ दे मान । तिहि नै उपजै वुधि निधान ॥
देव सास्त्र गुरु वुंउ लहौं । व्रत पंचमि को फल कहौं ॥१९॥

वस्तबंध

प्रथम बंद्या देव अरहंत । नाम लेत सहु पाप नासौं ।
दूजा प्रणमौ सारदा अंगि । पूर्व को अर्थ भाषै गणधर ।।

मुनिवर बंदिया मन मैं वहु आनंद ।
व्रत पंचमी प्रणमौं कमलश्री कौ नन्द ।।२०।।

विषय प्रवेश

चौपई—जंवुदीप अति करै विकास । दीप असंख्य फिरया चहुंपास ।
चंद्र सूर्य द्वै द्वै सारी जाति । आवागमन करै दिनराति ।।१।।

मेर सुदर्सन जोजन लाख । तिहिं गजदंत वण्या चहुंपासि ।
जिणवर भवण सासुता जहां । जिनका जन्म कल्याणक तहां ।।२।।

मेरु भाग सुभ दखिण दसै । भरथ खेत्र तहां उत्तम वसै ।।
चौथौ काल जठै सुभ होइ । पुरिष सिलाका उपजै लोइ ।।३।।

पोदनपुर नगर वर्णन

तिहि मै सुभ कुरु जगल देस । गढ पोदनपुर वसै असेस ।।
तहा जिणवर कल्याणक होइ । पापी दुखी न दीसै कोइ ।।४।।

मारण नाम न सुनजे जहां । खेलत सारि मारि जे तहां ।
हाथ पाई नवि छेदै कान । सुभद्र खाय ते छेदै पान ।।५।।

वंधन नाइ फूल बंधेर । बधन कोई किसहा नं देइ ।।
कामणि नैण काजल होइ । हियडै मनुक्ष न कालो होइ ।।६।।

सर्प्प परायो छिद्र जु गहै । कोई किसका छिद्र न कहै ।
गुंगौ कोइ न दीसै सुनि । पर अपवाद रहै धरि मौनि ।।७।।

चोरी चोर न दीसै जहां । घडी नीर नै चोरों जहां ।
डंरु नासको किसही न लेइ । मन वच काइ मुनि डंड देइ ।।८।।

उत्तम कुर जंगल कौ देस । भली वस्त सहु भरिउ असेस ।
वस्त मनोहर लहि जे घणी । पुजै तहां रली मन तणी ॥६॥

तह मैं हस्तनागपुर थांन । सोभा जैसी सुर्ग विमान ॥
बाग बावड़ी तहां सोभा घणी । वृक्ष जाति बहु जाई न गिणी ॥१०॥

मुनिवर नाथ धरैं तहां ध्यान । जाणं सोनों तिणौ समान ।
परिगहि संग तजै बाईस । करइ ध्यान अति महा जगीस ॥११॥

रिद्धिवंत मुनिवर अतिघणा । वृक्ष फलै सहु छहरिति तणा ॥
करै घोर तप मन वच काय । उपजै केवल मुक्ति ही जाई ॥१२॥

खेती ध्यान अठरा होई । दुप्रदु काल न जाणौ कोई ॥
सोभै भली ताल पोखरी । दीसै निर्म्मल पाणी भरी ॥१३॥

माडि कमलणी करैं विकास । जाणिक रंवि कियो प्रगास ।
पथि जण तस भूख पलाई । सीतल नीर वृख फल खाई ॥१४॥

नग्र मांहि जिण थानक घणा । माहै बिंब भला जिण तणा ।
अठ विधि पुजा श्रावक करैं । गुर का वचन हीयडै धरैं ॥१५॥

दान च्यार तिहु पात्रा देइ । पात्र कुपात्र परीक्षा लेइ ।
बिंब प्रतिष्टा जात्रा सार । खरचै द्रव्य आपणौ अपार ॥१६॥

ऊंचा मदर पौल पगार । सात भूमि उपरि विसतार ।
घरि घरि रली वधावा होइ । कानि पडि नवि सुणि जे कोइ ॥१७॥

राजा नाम राज करै भूपाल । जैसो स्वर्ग इंद्र भोवाल ।
पालै प्रजा चालै न्याई । पुन्यवत घणा पुर राइ ॥१८॥

चोर चवाड न राखे ठाम । गाइ सिंध पीवैं इक ठाम ।
नेम धरम्म गरउ आचार । पुण्य पाप कौ करै विचार ॥१६॥

राणी पुहपावती सुजाणि । गुण लावणि रूप की खानि ।
दुखी दलिद्र नैं देवैं दान । देव सास्त्र गुर राखै मांन ॥२०॥

बसै एक तहा धनिपति साहु । जैन धर्म्म उपरि बहु भाउ ।
पूजा दान करै मनलाई । आठै चौदसि अन्न न खाई ॥२१॥

पोसौ सामाइक शुभ करै । मत मिथ्यात नाम परिहरै ।।
सुभ आचार सीलस्यो रहै । पुण्य उदै सुभ भोगस्यो गहै ।।२२।।

दूजौ सेठ धनेसुर वास । बहु लखमी तणै निवास ।
सेठिनी नाम तास धनश्री । गुण लावण्य रूप बहु भरी ।।२३।।

सेठ सेठिनी भोगै भोग । पुत्री भई कर्म सजोग ।
कमलश्री सुभ ताको नाम । बाणी सबै सामोद्रक ठाम ।।२४।।

रूप कला वेवेक चातुरी । सोभै स्वर्ग तणी अपछरी ।
जोवनवंत देखी तसु तात । पुत्री बहु विचारै वात ।।२५।।

पुत्री थान देइ बहु जोइ । कुल सुभ दो (उ) वराबरि होइ ।।
घर वर खोडि देखि व्योपाई । पुत्री पिता विवाहै ताहि ।।२६।।

कमलश्री विवाह वर्णन

सेट्ठि बात मन मैं चितवई । पुत्री धनपति जोगैव दई ।
मडप वेदी रच्या विसाल । तोरण बंध्या मोती माल ।।२७।।

दहु पक्ष बहु मंगलचार । कामणि गावै गीत सुचार ।
वर कन्या कीन्हौ सिगार । चोवा चंदन वस्त अपार ।।२८।।

नाचै तिया करै वहु कोड । वर कन्या कै बांध्यो मोड ।।
बेदी मंडप विप्र आइयो । वर कन्या हथलेवो दीयो ।।२९।।

दुवै पक्ष नर वंट्ठा वाखि । भयो विवाह अग्नि दे साखि ।
पुत्री वरनै दीन्हौ मान । कंचन वस्त्र मान सनमानु ।।३०।।

जानी सजन सतोपिया । वस्त्र कनक त्याहनै वहु दीया ।।
हाथ जोडि धनपतिस्यौं कही । कमलश्री तुझ दासी दई ।।३१।।

छोडिउ मान धनेसुर कह्यो । पुत्री दई [1] तिहि हारियो ।
असौ लोक तणौ व्योहार । मोह जाल पडियो संसार ।।३२।।

---

१ जाइ ।

वागा नाद निसाण धाउ । कमलश्री घरि ल्यायो साहु ।
तिया पुरिष वहु भुजै भोग । पहली सुभ साता सजोग ॥३३॥

वस्तुबन्ध

कमलश्री सुख वहु करै, पूर्व पुन्य तस उदै आइयो ।
लखमीवत गुणनिलौ, सेठ धनपति कत पाईयो ॥
विहि का अक्षिर सिर वह्या, भयो विवाह संजोग ।
अवर कथा आगै भई ते सहु कह्या पयोग ॥३४॥

कमलश्री का गार्हस्थ जीवन

सुखस्यौं सेठु सेट्ठिनि बहु लाउ । दान पुण्य मनि अधिक उछाह ।
मुनि एकाचार्य आईयो । कमल श्री सो पडिगाहियो ॥१॥

पाई पखालि गंधोदिक लेई । ऊंचौ आसण वैसण देई ।
आठ द्रव्य तसु थाली भरी । मुनिवर चरण पुजा करी ॥२॥

मन वच काया करि बंदना । फासू अन्न दीयो तंखिणा ।
जैसी रिति तैसे आहार । जिहि आहारे मुनि तप विसतार ॥३॥

लेइ आहार दे अक्षै दान । सेट्ठनी सुख ,पायो असमान ।
दीयो सिंघासण मुनिवर जोग । हाथ जोडि वूझै तसु जोग ॥४॥

स्वामी बात एक सुणि कहौ । आजिका तणौ व्रत कब लहौ ।
मन कौ सांसौ भांनो बाप । जाइ हीया कौ सहु संताप ॥५॥

मुनिवर बात लही मन तणी । मुनि बोल्यो कमलश्री भणी ।
पुत्री मन रख्या करि धीर । थारै पुत्र होसी वरवीर ॥६॥

पुत्र तणा सुख सारा भोगसी । अति काल संजम लेईसी ।
सुण्या वचन मन हरिष्यो भयो । तखिण मुनिवर वन मै गयो ॥७॥

कमलश्री मनि आनंद भयो । मुनिवर वचन गाठि बाधियो ॥
पछिम दिस जै उगै भाण । मुनिवर झूंठ न करै वखाणि ॥८॥

सेठ्ठ एक दिन सेवै तिया, उपनौ गर्भ धनेस्वर घिया।
उपनउ सुभ डोहलो सुचग, पुजा दान महोछा रंग ॥६॥

भविष्यदत्त का जन्म

गर्भ मास नव पूरे भयो, कमलश्री बालक जाइयो।
पुत्र महोछा धनपति साह, द्रवि द्रवै वहुत उछाह ॥१०॥

महाभिषेक जिनेश्वर थान, दुखी दलिद्री जोगे दान।
सुणी वात आयो भूपाल, खरच्यौ द्रव्य देखी भूवाल ॥११॥

सजन लोग वधाई करी, गावै गीत तिया रसि भरी।
धनपति कै घरि जायो नद, हस्तनागपुर वहु आनद ॥१२॥

भावभगति पूजा मुनिराय, हाथ जोडि वूझै सुभाइ।
स्वामी बालक काढो नाम, पूजै महा मनोरथ काम ॥१३॥

वोल्यो मुनिवर कह्यौ विचारि, भविसदत इहु नाम कुमार।
पुन्यवत इहु होसी वाल, दुर्जन दुष्ट तणौ सिरिसाल ॥१४॥

वद्या मुनिवर घरि आइया, मात पिता नै वहु सुख भया।
अन्न पान रस पोखै वाल, द्वैज चद्र जिम वधै विसाल ॥१५॥

वालक वरस सात को भयो, पडित आगै पढणौ दीयो।
कीया महोछा जिणवरि थानि, सजन जन वहु दीन्हा दान ॥१६॥

गुर कौ विनौ अधिक वहु करै, मति सवुधि अधिक विसतरै।
घणा सास्त्र का जाण्या भेद, आश्रव वध कर्म को छेद ॥१७॥

कमलश्री का परित्याग

एक दिवस कर्म को भाइ, उपनौ क्रोध सेठ्ठ अकुलाइ।
कमलश्रीस्यो विनयै भाव, मेरा घर थे वेगिउ जाउ ॥१८॥

वार वार तुम से थी कहू, तुमनै दीठा सुख न लहू।
घणो कहा करिजे अलाप, पूरवलौ को आयो पाप ॥१९॥

तुम नैं देखौ जिम सर्पिणी , हे निरलज्जे निकसि तक्षणी ।
मेरी घर थे वेगी जाहु ; उपजै हीये बहुत विसदाहु ।।२०।।

कठिण वचन सुणि स्वामी तणा , कमलश्री बोली तंक्षणा ।
कौण कुकर्म मैं कीयो घणौ , जहि तम् बहुत क्रोध उपनौ ।।२१।।

स्वामी मन मै देखौ जोइ ; विण अपराध न काढै कोइ ।
नाहक पसु न घालै घाव , तुम छो माणस को परिजाउ ।।२२।।

स्वामी जा को सुखि हो सुखी , थारै दुखि हु गाढी दुखी ।
माता पिता तुम बाधि बाहु , चित्त विचार करो हो साहु ।।२३।।

धनपति सेठु कहै सुणि नार , तुम सम तिया नहि ससार ।
कोइ ग्रह मुक करो विकार , तहि थे थारो करै निसार ।।२४।।

कमलश्री ले सास उसास , कत क्रोध छाडिउ घरबास ।
नैणा नीर करै असमान , चाली मातपिता कै थानि ।।२५।।

दोहड़ा— पाप पुन्य बधन करै, तिसा उदी पै आइ ।
जे तरु माली सीचही , तिसका सो फल खाइ ।।२६।।

जीवडौ वधै सुभ असुभ, करै हरिष विसमाद ।
कुसी आलौ कीट जस्यौं, पडै मोह प्रमाद ।।२७।।

कम्मेह वंध्यो जीवडौ, माड़ौ घणौ पसार ।
मन दोडावै आपणौ, पावै नही लगार ।।२८।।

आपण कर्म वुरा करै, अर परनै दे (वे) दौस ।
वानै तिसो जिमो लुणै, हीया न कीजे सोस ।।२९।।

कमलश्री का माता-पिता के घर जाना

चोपई— कमल माता घरि गई , पौलि द्वारि ढाढी रही ।
देखि विलखी मात तस तात हीयडा मध्य विचारो वात ।।३०।।

जीमण व्याह नही कोइ काज , विण कोकी किम आइ आजि ।
कीयो कुकर्म ठाणि मति वुरी , तीह थे सेठु तजी सुदरी ।।३१।।

घर की सुदरि प्राण आधार, तहि को पुत्र महा सुकमाल।
माता पिता विचारै जोई, खिण अपराध न काढे कोई ॥३२॥

करै कुकरम सुता सुत कोइ, माता पिता नै वहु दुख होइ।
रूनी माता कै गलि लागि, हूं पिय काढी कर्म अभागि ॥३३॥

मै अपराध न कीयो कोइ, विण अपराध दियो दुख मोह।
कोई कर्म उदै आइयो, ताहि थे क्रोध कत नै भयो ॥३४॥

कहै माता कमलश्री सुणो, सुध चित्त राखो आपणो।
सासू कत दुख दे घणो, सरणाइ घर माता तणो ॥३५॥

दुखि दलिद्री नै दिहु दान, भोजन करो रहो थिरथान।
सुदरि मात पिता घरि वास, करै दुख अति सास उसास ॥३६॥

वहु सुत मत्री सेठ्ठ को जाम, आयो सेठ्ठ धनेश्वर ठाम।
पडित अधिक विवेक सुजाण, कहो पाछिला सर्व वखाण ॥३७॥

कमलश्री तुम पुत्री जाणि, सजम सील रूप की खानि।
नाहक सेठि निकालो दीयो, पूर्व असुभ उदै आइयो ॥३८॥

तुम मन माहि सक मति घरो, सुदरि का मन कीयो बुरो।
हु धनिपति यो समझाउ जाय, दिन दस पाच तुम्हारै थाय ॥३९॥

वात कहि मत्री घरि गयो, मात पिता नै वहु सुख भयो।
पुत्री नै वहु दीन्हौ मान, कनक वस्त्र सुभ सेज्या थान ॥४०॥

भविष्यदत्त का ननिहाल जाना

कवरि विदा लीन्ही गुर तणी, भवसदत आयो घर भणी।
दीठो पिता कूर वहु चित्त, क्रोध सरीर हु राता नेत्र ॥४१॥

भवसदत दिठि न पडि मात, पाडोसनिस्यौं बुझी वात।
व्योरो वात सर्व तहि भण्यो, जाणि कहीयो वज्र को हण्यो ॥४२॥

वात विचारि कवर चालियो, नाना कै घरि ठाढो भयो।
माता आगै हुवो खडो, जहा गाइ तहाँ वाछडो ॥४३॥

भेटी माता रूदन वहु करिउ , भवसदत हीयो गहि भरिउ ।
मात तणा आमु पूछेइ , सीतल वचन सबोधन देइ ।।४४।।

माता मेरी जाणौ वात , सुभ अर असुभ करम कै साथि ।
कातर भूलि चित्त मति करै , पाप र पुन्य भोगया सरै ।।४५।।

वस्तुवन्ध

कंत क्रोध कीयो घणो, कमलश्री वहु दुख पायो ।
हसि हसि कर्म जु वधिया, पूर्व पाप तसु उदै आइयो ।।

दुख सुख मनि आवै घणो, चित्त करै अभिमान ।
पुत्र सहत सारह सु दरी, रहै पिता कै थानि ।।

धनदत्त सेठ

वसै नग्र वाण्यो धनदत्त , दया दान अति कोमल चित्त ।
मत मिथ्यात सवै परिहरै , जैन धर्म को निहचो करै ।।४६।।

तिया मनोहर सील सुजाणि , गुण लावण्य रूप की खांनि ।
सकति सहति वहु विधि दे दान , देव सास्त्र गुरु राखै मान ।।४७।।

वणिक विणाणी भोगै भोग , पुत्री भई कर्म सजोग ।
पुन्यौ चंद्र वण्यौ मुख तास , नैणा सोभै कमल विकास ।।४८।।

सजन लोग देखि तस रूप , सुर कन्या थे अधिक अनूप ।
जिणवर थांन महोछा कीयो , तहि कौ नांव सरूगा दियो ।।४९।।

दूंज चद्र जिम वधै कुमारि , देखि रूप तसु चित्त विचारि ।
वर व्यौहार सुपुत्री भई , निस वासरि सहु निद्रा गई ।।५०।।

मत्री धनपति को आइयो , वणिवर धनदतस्यो वीनयो ।
पुत्री तणी करी जाचना , मान वडाई दीन्हा घणा ।।५१।।

स्वरूपा के साथ धनपति सेठ का विवाह

दुवै वरावरी कुल आचार , करो विवाहु न लावो वार ।
वात सुणी सहु मत्री तणी , धनपति जोगि दई लक्षणी ।।५२।।

लेना लेर सु मत्री गयो, धनदति वणिस्यौ विनवो।
व्याहु तणा होई मगलचार, कन्या वर नौ बनी बहुत सिगार ॥५३॥

मडप वेदी करैं विकास, कनक कलस मेल्हा चहुपासि।
वर कन्या नैं भयो सनान, चोवा चदन फोकल पान ॥५४॥

भई नफीरी नाद निसाण, वदी जन बहु करैं बखाण।
धनपति व्याहु पहुंतो जहां, कवीर सरूप थानक तहा ॥५५॥

चौरी माझि विप्र आइयो, लगन महुरत्त सुभ साधियो।
कन्या वर का जोड्या हाथ, मेल्हा पान सुपारी काथ ॥५६॥

भावारि चारि फिरायो सुभ साहु, अग्नि साखि दे भयो विवाहु।
धनदत्त देइ दाईजो घणो, हाथ छुडायो पुत्री तणौ ॥५७॥

भयो व्याहु बहु मंगलचार, दान मान जौणार सुचार।
जानी सहु संतोषिया समान, वस्त्र पटवर फोफल पान ॥५८॥

साथि सरूपा धनपति लेइ, आयो घरि दान बहु देइ।
सुख पायो बहु आनद भयो, कमलश्री नैं वीसरि गयो ॥५६॥

भोगवि भोग देव समान, भोजन वस्त्र सुपारी पान।
सुख सेथी केइ दिन गयो, गर्भ सरूपा जोगैं रह्यो ॥६०॥

बन्धुदत्त का जन्म

जब पुरा हुवा नवमास, भयो पुत्र अति करैं विकास।
वालक जन्म महोछो कीयो, बहुत दान वदी जन दीयो ॥६१॥

कीयो महोछौ जिणवर थान, देव सास्त्र गुर दीन्हौ मान।
गीत नाद अति मगलचार, वधूदत्त तसु नाम कुमार ॥६२॥

अन्न पान रस पोखैं बाल, गुण चतुराइ बहुत विसाल।
बालक पडित आगैं पढियो, गुरू को गुणाह अति पढियो ॥६३॥

साथि मित्री वधूदत्त कुमार, वन क्रीडा करि वात विचारि।
वोल्यो मित्र सेठ का नद, मित्र मनोहर मनि आनद ॥६४॥

रत्नदीप जा जे व्यापारि, द्रव्य विढजे अधिक अपार।
दान पुन्य कीजे इह लोइ, मुनिष जन्म तस सफलो होइ ॥६५॥

पिता तणी लखमी भोगवै, तहि का दोष कहो को कहैं।
लखमी पिता मात सम जाणि, सेवत लहै दुख की खानि ॥६६॥

भु जौ आपणी वढवै दाम, तहि कौ सरैं सवहि काम।
खरचैं हरत परत सुख लेइ, मान वडाइ सहु कोइ देइ ॥६७॥

उद्दिम विना न लख्मी सार, तहि थे उद्दिम करैं कुमार।
लखमी जहाँ सुद्ध व्यौहार, लखमी जहाँ सत्य आचार ॥६८॥

सति की लीखमी विदवै खाई, तिहि का घर थे कहै न जाई।
लखमी सदा सत्य को दासि, राति दिवस तिष्टै तहि पासी ॥६९॥

वात हमारी हियडै धरौ, रत्न-दीप जोगै गम करौ।
सुण्या वचन सहु मत्री तणा, मन मैं आचिरज पायो घणौ ॥७०॥

भली वात तुम्ह कहा विचारि, उद्दिम करैं मिलि चारि।
वधूदत्त मित्रीह करी वात, आए घरी पिता जाहा मात ॥७१॥

वधूदत्त पिता पै गयो, नमस्कार करि सो वोलियो।
वीनती सुणौं हमारी वात, तुमस्यौं कहा चित की वात ॥७२॥

झूठ बोलि जे विढवौ दाम, ते सहु करैं अजुगतौ काम।　८
मन मैं हरिषै मुढ गुवार, तहि कौ अपजस ज्ञानि संसार ॥७३॥

वैणिक पुत्र माडै व्यापार, खेती करसण करैं गवार ॥७४॥

बन्धुदत्त द्वारा विदेश यात्रा का प्रस्ताव

मेरा विणज करण कौ भाउ, रत्नदीप प्रोहण चडि जाउ।
आणौ द्रव्य विणज करि घणौ, दान पुन्य खरचौ आपणौ ॥७५॥

पू जी प्रोहण दीजे तात, वणिवर चालै हमारे साथि।
वडो पुत्र होइ विढवै दाम, मात पिता ले जिण का नाम ॥७६॥

पिता का परामर्श

संभलि सेठ पुत्र की वात, हरिष्यौ चित विकास्यौ गात।
हो पुत्र तुम्ह कुल आधार, थारो कहिवा को व्योहार ।।७७।।

सीत वात दुख वाहरि घणा, चोरा डरिप हरै नागणी।
नरकति पथ बराबरि कह्यौ, तहि थे थारो जुगतौ न हौ ।।७८।।

आगै सागर महा विपाद, मगरमछ भैभाँति अगाध।
हम तौ वात बडी पै सुणी, जाइ न थोडी पुन्य कोंप्रणी ।।७९।।

कष्ट कष्ट करि खेवै पार, वस्त न आणै लहै लगार।
लेइ वस्त पाछै वाहुडै, कर्म्म जोग प्रोहण खड भडै ।।८०।।

तीन्यो रति का मुख विलास, घरि वैठा सुख भुजौ तास।
सीख हमारी हियडै धरो, दान पुन्य घरि वैठा करो ।।८१।।

बन्धुदत्त का उत्तर

बधुदत हसि वोल्यो वात, वीनती एक सुणो हो तात।
वाप तणी मै लखमी सुणी, लोगा मात बरावरि गिणी ।।८२।।

अब हम ऊपरि करहु पसाउ, रत्नदीप नै मेरो भाउ।
धनपति सुणी पुत्र को स्वाद, मन माहै पायो अहलाद ।।८३।।

तेरा वचन सही परमाण, लेहु किराण वस्त निधान।
वणिक पुत्र जहाँ पंचसै भयाँ, बधुदत्त की साथे दिया ।।८४।।

राजा आगै चाली वात, बधुदत्त व्यापारा जात।
राजा वोलै मन मै जोई, वणिवर पुत्र कुलाक्रम होय ।।८५।।

बन्धुदत्त की राजा से भेंट

धनपति बधुदत्त ले गयो, राजा आगै ठाढौ भयो।
कीयो जुहार भेंट ले धरी, हाथ जोडिउ वनती करी ।।८६।।

राजा जी हम आग्या होइ, रत्नदीप चालै सहु कोइ।
राजा मन मैं कीयो विचार, कीया सेठि बधुदत्त कुमार ।।८७।।

वीडा वसत्र दीया करि भाउ, वणिवर मध्यि सारथ वाहु ।
नग्र माँझि पट है वाजियो, बधुदत्त सागरगम कीयो ॥८८॥

जहि कौ मन चालण कौ होइ, लेइ वसत्र चालै सहु कोई ।
सुणि वात मन हरिक्षो भयो, वाण्या बहुत किराणा लीयो ॥८९॥

भविष्यदत्त द्वारा माता के सामने विदेश यात्रा का प्रस्ताव

भवसदत सहु व्यौरा सुण्यौ, वेगा जाय मातास्यौ भणौ ।
हमनै दुक्रो दीजे मात, चालौं वधुदत्त का साथि ॥९०॥

मोहि दीप देखण को भाउ, साथि चालै पच सौ साहु ।
मनुषि जन्म ससारा ग्राइ, ताकी बस्तु देखिजे माई ॥९१॥

कमलश्री के विचार

पुत्र वचन सुणि कमलश्री, कहै बात सा मन मैं डरी ।
हियडै पुत्र विचारौ वात, वधुदत तुम ऐको तात ॥९२॥

दुष्ट भाउ तुम उपरि करै, वधुदत्त सग मति फिरै ।
तुमनै वैरी करि करि गिणै, यह तो वात पुत्र नवि वणै ॥९३॥

दोहड़ा— वैरी विसहर सारिखो, तिहि नीडै मत जाई ।
वैरी मारै डावदे, विसहर चपै खाई ॥९४॥

वैरी विसहर जव डसै, उषध करै महत ।
बिसहर मत्र ऊनरै, बैरी तंत न मत ॥९५॥

वैरी वट पाडो वागुस्यो, नाहर डाइणि चाड ।
ऐता होई न ग्रापणा, निश्चै करै विगाड ॥९६॥

चौपई— कमलश्री सांभली वात, भवसदत्त वोल्यो सुणि मात ।
जे कोइम्यौ करै उठाउ, तव ले वैरी घालै धाउ ॥९७॥

सुध नीति मारग व्यौहरै, तहि कौ दुरजन कायौं करै ।
जो छै साथि पचसै साहु, मुंठ सांच को करसी न्याउ ॥९८॥

होसी सही बुरा कौ बुरौ, कहू बात कौ डर मत करौ।
भलै भलाइ होसी मात, देखि दीप आवु कुसलात ॥९९॥

भविष्यदत्त द्वारा विदेश-प्रस्थान

नमसकरि माता नै करि चाल्यो, तक्षण वधुदत्त नै मिल्यो।
भासी लघु भाईस्यौं वात, हम पणि चाला तुम्हारै साथि ॥१००॥

वधुदत्त मनि आनंद भयो, भाइ तणा चरण वदियो।
अव वल हम हुते अनाथ, तुम चालता हम वहुत सुनाथ ॥१०१॥

तुम सहु लाज गाज का धणी, स्वामी खिजमत करिस्यां घणी।
तुम सहु ताडा का प्रधान, मेरै पुज्य पिता कौ थानि ॥१०२॥

बन्धुदत्त को माता द्वारा सिखाना

ऐसहु वात सुणी रूपणी, सुत नै सीख देइ पापिणी।
वडो पुत्र इहु धनपति तणौ, लैसी द्रव्य सवै आपणौ ॥१०३॥

भवसदत्त को करसी स्वास, जहिथैं होइ जीव को नास।
घणी वात को करे पसार, वैरी कौ कीजे सघार ॥१०४॥

विदेश यात्रा पर प्रस्थान

सुण्या वचन जे माता कह्यो, मन मै दुष्टाई करि रह्यो।
लीयो महुरत तिथि सुभवार, चाल्यो दीप नै वधुदत्त कुमार ॥१०५॥

दही दो वणकि चावल दीया, सुगन सर्व मन वछित भया।
पहुचावण चाल्या सहु लोग, दीयो नारेल वधुदत्त जोग ॥१०६॥

वणिवर चाल्या पंचसै साथ, सजन लोग मिल्या भरि वाथ।
मिल्यो पुत्र नै सेठ घरि गयो, अतर तर परवत वहु भयो ॥१०७॥

लघी नदी वाहाला खल, वन पर्वत दीठा असराल।
चले वहुत दिवस वर वीर, कर्म जोग पकडी जल तीर ॥१०८॥

कोइ दिन लीयो विसराम, सुखस्यौं समद तटि ठाम।
लग्न महुरत ले सुभवार, इष्टदेव की पूजा सार ॥१०९॥

दाम दिया धीवर नै घणा, खडे करे प्रोहण प्रापणा ।
धीवर मन मैं हरिष्यो भयो, वणिक वस्त प्रोहण मैं दियो ।।११०।।

मगरधुज वंद तक्षणा, सुभट वलाउलानी घणा ।
नाम पच परमेष्टी लीया, समद मध्य प्रोहण चालिया ।।१११।।

कर्म्म जोगि वाजियो कुवाउ, मोगर रालि रह्या तहि ठाम ।
सुभ सजोग वहुत दिन गयो, दुष्ट सुभाइ पवन वाजियो ।।११२।।

लीयो मुदगर वेगि उचाइ, चाल्यो पोत पवन कै भाइ ।
सवही के मन हरिक्ष्यो भयो, आगे मदनदीप देखियो ।।११३।।

मदन द्वीप मे आगमन

षड लाकडी तहाँ उत्तम नीर, वृक्ष जाति फल गहर गभीर ।
देख्यौ थानक सोभा भली, सव ही मन की पुजै रली ।।११४।।

वणिकपुत्र सव ही उतरे, मागै पाणी वासण भरे ।
मीठा फल लीया भरि पूरि, षड लाकडी वहु लीया ठूर ।।११५।।

भवसदत्त फल लेवा गयो, वधुदत्त पापी देखियो ।
वात विचारी माता तणी, मन मैं कुमति उपजी घणी ।।११६।।

लोग वुलाया वडहर तणा, वधी धुजा वेगि तंक्ष्णा ।
वणिक पुत्र तव वोल्या एव, भवसदत नै आवा देइ ।।११७।।

वोल्यो पापी नेत्र चढाई, भवसदत्त हमनै न सुहाइ ।
पापी नै नवि लेस्या साथि, परतक्ष सत्रु मारै साथि ।।११८।।

भविष्यदत्त को वन में छोड़कर आगे बढ़ना

भवसदंत्त वन मै छाडियो, पापी प्रोहण ले चालियो ।
सेठ पांचसै आमु भरै, असा काम नीच नवि करै ।।११९।।

भवसदत्त फल ले आइयो, देखउ पोत न दुख पाइयो ।
मन मै हीं सोक करै कुमान, कही विधाता भूल्यो थान ।।१२०।।

प्रोहण दूरि जात देखिया, कर उचौ करि हेला दिया।
मनि पछितावा करौ पुकार, हौ फल लेवा गयौ गवांर ॥१२१॥

भविष्यदत्त द्वारा पश्चाताप करना

झुमस्यौ माता कहै थी वात, इहि पापी को न करसी साथि।
माता वचन अण्यून्या सोई, तिहि का फल लागा मोहि ॥१२२॥

अथवा कर्म हमारा दोस, जीवडा मन मैं न करी रोस।
जेसौ कर्म उपावै कोइ, तैसो लाभ तिही नइ होइ ॥१२३॥

वन भैंभीत अधिक असराल, सुवर संवर रोझनि माल।
चीता सिंघ दहाडा घणा, वादर रीछ महिष माकणा ॥१२४॥

हस्ती जुथ फिरै असराल, सारदूल अष्टापद वाल।
अजिगर सर्प्प हरण सचरै, भवसदत तिहि वन मैं फिरै ॥१२५॥

मुरछी आई भूमि गिरि पडै, चेत उसास्व वहु तडफडै।
ऊँचा नीचा लेई उसास, सरणाइ कोइ नवि तास ॥१२६॥

झांखत झांखत करै दुख घणौ, दीठो थानक पाणी तणो।
वृख असोक सीला ठाम, भवसदत लीयो विसराम ॥१२७॥

छांणि नीर दूनै करि लीयें, हस्त पाइ मुख प्रखालियो।
नाम पच परमेष्टी लीया, अतिथ अभागि तनौ फल मेलिया ॥१२८॥

पाछै फल को कीयौ आहार, जल आचमन लीयो कुमार।
दिन गत गयो आथयो भाण, पथी सवद करै असयान ॥१२९॥

वस्तुबन्ध

भाई वन मैं छाडियो, भवमदत्त वहु दुख पाइयो।
महा अरण डरावणौ, पूर्व कर्म तसु उदै आइ ॥

पच परम गुर हीये धरि तिही लीयौ जोग अभिनाम।
वृख तले निद्रा भइ भयो भानु परगास ॥१३०॥

चौपई— गई रैंनि दिणिगर ऊगियो, जै जै कार भवसदत्त कीयो ।
हाथ पाइ मुख प्रखालियो, नाम पच परमेष्टी लीयो ॥१३१॥

ऊदिम करि चालियो कुमार, पथ पुराणौ दीठौ सार ।
मन माहै सो चिंता करै, गगनदेव विद्याधर फिरै ॥१३२॥

व्यापार जे आवै लोग, ते चढि जाइ पोत संजोग ।
भवसदत्त कीयो दृढ चित्त, चाल्यो वेगि पुराणौ पंथ ॥१३३॥

मदन द्वीप का वर्णन

आगै पर्वत देखि उतग, उपरि सोभा कोटि सुचग ।
आगै गुफा देखि इक भली, तिहि मै वाट मनोहर चली ॥१३४॥

चालत चालत आघो गयो, आगै उतिम वन देखियो ।
कुवा वावडी पुहे करताल, एक खेत्र देखि सुकमाल ॥१३५॥

फुलत फसत देखि वनराइ, भयो हरिष अति अगि न माइ ।
छत्री मडप देखी चोवगान, वैसक महा मनोहर थान ॥१३६॥

गढ आगै देख्यौ निर्वास, खाइ कोट वण्या चहुपासि ।
खोलि कपाट भीतर गयो, मानिख नग्र सुनौ देखियो ॥१३७॥

देख्या मदिर पौलि पगार, धन कण भरि तहाँ हाट बाजार ।
वस्त्र पदारथ वहुली जोई, सूनौ मनिक्ष[1] न दीसै कोइ ॥१३८॥

फिरत फिरत सो आघो गयो, राजा कै मंदिर देखियो ।
महा सिघासण सोना तणौ, छत्र चमर देख्या अति घणौ ॥१३९॥

द्रव्य तणी दीठा भंडार, वस्तकपुर आभरण अपार ।
सज्या थान मनोहर सुध, चोवा चदन वास सुगध ॥१४०॥

जिन मन्दिर

सोवन कलस सिखर सोभति, उपरि महाधूजा हलकंत ।
दीठा वहुत अन का गरा, हस्ती वाजि पाइगा खरा ॥१४१॥

---

१ मनुष्य ।

देखित मासौ आयो खडिउ, चद्रप्रभु मदिर दिठि पडिउ ।
महा सिखर वहुरत्न जडिउ, जाणि विधाता आपण घडिउ ।।१४२।।

चौरी मडप वण्या सुचग, चदवा तोरण निर्मल रग ।
सोवन थंभ सभा का थान, सोभा जैसी सुर्ग वीमान ।।१४३।।

देखी वावडी उत्तम नीर, हाथ पाइ मुख धोये नीर ।
पथ सोधना करै कुमार, पंथ हुतो मध्य उघाड्यो द्वार ।।१४४।।

जिन स्तवन एवं पूजा

जय जयकार कीयो जगनाथ, नम्या चरण धरि मस्तकि हाथ ।
दीन्ही तीनि जु परदक्षणा, गुण ग्राम भास्या जिनतणा ।।१४५।।

जै जै स्वामी जग आधार, भव ससार उतारै पार ।
तुम छो सरणाइ साधार, मुझ ससार उतारो पार ।।१४६।।

भूल्या पथ दिखावण हार, तुम छो मुकति तणा दातार ।
.... ।।१४७।।

चरण जिणेसुर पुजा करै, सुग्र अपछरा निहचै वरै ।
विनती सुणै हमारी नाथ, कुमती कुमात्र निरोधो साथ ।।१४८।।

करी वदना सरसो गयो, धोवति वसत्र सनपन कीयो ।
आगै द्रव्य एकठा कीया, चद्रप्रभ पूजा चालिया ।।१४९।।

वधा जाई जिणेस्वर देव, सनपन चरण पधारया एव ।
पाछै पुजा रचि विस्तार, सोवन झारी नीर सुचार ।।१५०।।

महागग जल माझि कपूर, सर्व ऊपध मिलै ठूरि ।
फासु निर्मल महा सुवारि, जिनपद आगै दीन्ही धार ।।१५१।।

कुकम चदन धसि वावनो, मझि कपूर मिलाये घणो ।
वास सुगधक चोली भरी, जिणवर चरण चरचा करी ।।१५२।।

गरडोराइ भोग सुवास, सोभै दुतिया चद्र उजास ।
अखित वास भमर ले गुज, जिणपद आगै कीयो पुज ।।१५३।।

चपौ जुही पाडल जाइ, वोलश्री करणौ मही काइ ।
जास सुगध भमर ले बास, जिणपद आगैं पोप सुवास ॥१५४॥

नालिकेर का कान्हाठुर, मिश्री दाख विदाम खिजुरी ।
मोवन थाल हाथि करि लीयो, जिणपद आगै नेवज दीयो ॥१५५॥

भीमसेणि कर्पूर सुवास, भई आरती वहुत उजास ।
रत्न खिचित आरती लीयो, जिण चरण आगैं फेरियो ॥१५६॥

अगर महा किसनागर सार, चंदन सुभ बावनौ तुपार ।
रत्न धोपाईणौ भरि खेईयो, जिण चॅरणं आगैं फेरियो ॥१५७॥

नालिकेरि पु गी दाडिमी, मातुर्लिग नीवू नारिगी ।
नैणा देख विगास अपार, जिण चरण आगै विसतार ॥१५८॥

जल चदन अक्षत सुभमाल, नेवज दीप धूप विसाल ।
उपरि नालिकेर मेल्हिया, जिण चरण आगे फेरिया ॥१५९॥

भवसदत करि पुजा भली । पूगी सव ही मन की रली ।
दीठौ मडप उतिम ठाम, सूतौ तहाँ लियौ विश्राम ॥१६०॥

पथ श्रम वहु निद्रा भई, सुणहु कथा जे आगैं भई ।
पूर्व विदेह सु सोभामली, जसोधर तिष्टैं केवली ॥१६१॥

सुरनर फणि तसु आया सेव, नमस्कार करि वैठा एव ।
अच्यत इद्र तहि जोड्या हाथ प्रसन एक वुझै जिननाथ ॥१६२॥

अच्युतेन्द्र द्वारा प्रश्न

पहलौ धनमित्र (मित्र) मुझ तणौं, रहै कहा सो थानक भणौ ।
केवली भणैं इद्र सुणि वात, तहिकौ कहौ मवै विरतात ॥१६३॥

केवली भगवान द्वारा उत्तर

क्षेत्र भरथ कुर जंगल देस, हस्तनागपुर वसैं असेस ।
धनपति सेठ तणौं तहा वास, भवसदत नदन छै ताम ॥१६४॥

प्रोहण चढिउ करण व्यापार, मदन दीप दीठौ अतिसार।
वैर भाव लघु भाइ कीयो, धिग्र धिग्र वै भाई को जीयो ॥१६५॥

पथ पुराणी देख्यो वाल, देस्यौ तीलकपुर महा विसाल।
चद्र प्रभ को थानक जहा, सीतल मंडप सूनो तहा ॥१६६॥

कन्या रूभावसाण परिणपी, द्वादस वृख तहा तिष्टिसी।
कामणि सपति वस्त निधान, ले पहुच सी पिता कै थानि ॥१६७॥

राजादेसी वहु मनमान, अर्द्धराज तसु कन्यादान।
अति कालि सो सजम लेइसी, तप कर सुभ थानक पहुचसी ॥१६८॥

पूर्व भव के मित्र द्वारा सहायता

सुणी वात सुरपति सुख भयो, नमस्कार करि सो चालियो।
भवसदत्त सूतो तहा गयो, देखत मन मैं वहु सुख भयो ॥१६९॥

मन मैं इन्द्र विचारै वात, सुतौ नही जगाउ भ्रात।
पडही डलो हाथि करि लीयो, अक्षर भीति लेख लेखियो ॥१७०॥

उद्दिम करि जागी हो मित, सावधान होइ कैचित्त।
वेगौं उतर दिसनै जाहु, मन्दिरि सोभा वहुत उछाहु ॥१७१॥

पच भूमि उत्त ग अवास। कन्या एक रहै तहां वास।
सा भवपाणख तसु नाम, वाणी सर्व सामोद्रीक ठाम ॥१७२॥

परणौ भोग कोतोहल करो, सका को मन मै मत करो।
पुर्व पुन्य आयो तुम तणौं, थोडो लिखौ जाणि जो घणौं ॥१७३॥

एतौ इद्र लिखयो लेख सभाष[1], माणिभद्र मे दीन्ही साख।
तिया सपदा सहित कुमार, रच्या वीमाण वहुत त्रिसतार ॥१७४॥

---

१. क मति—एतो इद्र लिखयो लेख सभाष।

कुरजगल हथणपुर नाम , छाडिउ मात पिता को ठाम ।।
माणिभद्र की वध्यो वाह , इंद्र सुरगि गयो बहुत उछाहु ।।१७५।।

निद्रा तजि कुमर जागियो, तक्षण भीत दिसौं चित गयो ।
मन मैं अचिरज पायो घणो , योहतो लेख तुरत ही तणो ।।१७६।।

भवसदत्त नौ भयो गुमान , आयो कोण पुरुष इहि थान ।
वाचै लेख बहुत निरताइ , तिम तिम मन कौ सासौ जाइ ।।१७७।।

अभिप्राय लेख को लियो , तक्षण सुदरि मन्दिर गयो ।
भूमि पचमी चढउ कुमार, आगै जड्यो देखियो द्वार ।।१७८।।

भविष्यानुरूपा में भेंट

भौसदत्त बोलियो सुजाण , खोलि कपाट रूपभोसाण ।
मन माहै वत करो विचार , हौ आयौ तेरो भरतार ।।१७९।।

सुणी वात मानियो गुमान , आयौ पुरिष कोण इहि थान ।
मन मैं चिंता उपनी धणी , सव सरीर चाली कापिणी ।।१८०।।

वन देवी कहै तसु जोग , पुत्री छोडि हीया को सोग ।
सुभ साता आइ तुम भली , तौ थे जुगति कत की मिली ।।१८१।।

कवरि वचन सुणि देवी तणा , जुगल कपाट खोलि तंक्षिण ।
भवसदत्त भितरि चालियो , साच वचन तहिस्यो ऊचारियो ।।१८२।।

सिघासण दीन्हौ सुभठाम , थामा अंतरि ठाढी जाय ।
देखि रूप मन भयो विकास , सुग्रं देव मुझ आयो पास ।।१८३।।

अथवा देव जोतिगी कोइ , अैसा रूप मनिक्ष नवि तोइ ।।
कोइहु वन देवता सुचंग , दीसै सोभा निर्मल अग ।।१८४।।

सकलप विकलप मन मैं होइ , को इहु कामदेव छै कोई ।।
भवसदत्त देखि तस रूप , सुर कन्या थे अधिक अनुप ।।१८५।।

कोइ याह सुर्ग अपछरा कोइ, नाग कुमारि परतखि होइ।
वन देवी तिष्टै इहि थान, भवसदंत मनि भये गुमान ।।१८६।।

दैवी नैण न मटकै कोइ, तहि को अंग पसेव न होइ।
नखस्यौ भूमि खणै या घणी, तहि थे याह सही मुनिक्षणी ।।१८७ ।।

भवसदंत बोलियो विचारि, वेगो देहि आचमन कुमारि।
मन मैं संका करो न कोइ, विधना लिख्यौ न मेटै कोइ ।।१८८।।

सुंदरि भणै सुणौ हो नाथ, हम तुम दरसण नौ तन[1] वात।
अैसो कुल कन्या को साज, पहली ही किम छोडौं लाज ।।१८९।।

ले अगोट आचमन दियो, भवसदत मनि हरक्षो भयो।
उपरा उपरी देइ सनमान, सुखस्यौं तिष्टै उत्तिम थान ।।१९०।।

सुंदरि मनि चिंता उपनी, कीजे भक्ति पाहुणा तणी।
भोजन विंजन महा रसाल, सनान सुगंधी वस्त्र सुकमाल ।।१९१।।

वोवति पट्ट[2] कूली की सार, जिणवर पूजा करै कुमार।
आछै आयो सुंदरि थान, पाद पखालि वहु दीनौं मान ।।१९२।।

गादी दे इकतीफा[3] तणी, सोवन चौकी सोभा घणी।
सोवन थाल कचोला दिया, निर्मल पाणी प्रखालिया ।।१९३।।

घेवर पचधारी लापसी, जहि नै जीमत अति मन खुसी।
उज्जल वहुत मिठ्ठाइ भली, जहि नै जीमत अति ननरली ।।१९४।

खाटा तोरइ विंजन भांति, मेल्या बुहुत राइता जाति।
मुग मंगोरा[4] खानी दालि भात परुस्यौ सुगधी सालि ।।१९५।।

---

१ तम क प्रति।
२ पटकुल—ख प्रति।
३ तौका क प्रति।
४ मडोरा ख प्रति।

सुरहि घ्रित महा[1] निरदोष, जिमत होइ बहुत सतोष ।
सिखरणि दही घोल बहु खीर, भवसदंत्त जिमौ वरवीर ।।१९६।।

दीयो आचमन बीडा पान, चोवा चंदन वास निधान ।
सौंङ्कि पालिकौ थानक सार, समाधान करि दीयो अहार ।।१९७।।

पाछै आपरण भोजन कीयो, उत्तिम नीर आचमन लीयो ।
फोफल पान सुगंध चढाइ, भवसदंत्त नखि वैठो जाई ।।१९८।।

वस्तुबन्ध

तिलक पटरण देखि सुविसाल, चद्रप्रभ जिन पूजा कीन्ही ।[2]
पूर्व मित्रेसुर आइयो, लिखो लेख सुभ सीख दीन्ही ।।[3]
सुभ साता आइ उदै, कन्या मिली सुजारिग ।
बहु विवेक गुरण सील दिढ, महा रूप की खानि ।।१९९।।

चौपई— कवर भणै तुम सुंदरि सुणौ, भासौ[4] मुझ संमौ मन तणौ ।।
उजड बसे नग्र कौण संजोग, बस्त बहुत नवि दीसै लोग ।।२००।।

भविष्यानुरूपा का परिचय

बोलै सुंदरि सुणौ कुमार, कहौं पाछिलो सहु व्यौहार ।।
मदन दीप जाणै सहु कोइ, इहु तिलकपुर पटण होइ ।।२०१।।

राउ जसोन नग्ररी को नाथ, दुर्जन नर को करै निपात ।
वणिवर वसै नाम भगदत, जैनिधर्म्म दिढ राखै चित्त ।।२०२।।

ताकै नागसेरणा कामणी, भगति देव गुरू श्रावक तणी ।
हौं तस पुत्री महा सरूप, नाम दियौ भौसाणह[5] रूप ।।२०३।।

---

१. क प्रति सीहा ।
२ ज प्रति कीनी ।
३. ग प्रति कीनी ।
४ क एवं ग प्रति भानौ ।
५ ख प्रति भौसानसरूप ।

असनवेग इक[1] वितर दुष्ट, दया रहित अति महा निकष्ट ।
नग्र लोग सागर मैं दीयो, पापी तणौ न कसक्यो हीयो ।।२०४।।

थारा पुन्य तणौ परभाउ, हौं राखी वितर करि भाउ ।
सहु सनवध पाछिलो जाणि, व्यतर सहित रहौ इहि थान ।।२०५।।

स्वामी हमस्यौ करो वखाण, कौंण देस पट्टण तुम थान ।
कौण नाम तुम पित्ता रु माय, कहो वात हम सरौं जाइ ।।२०६।।

भविष्यदत्त का परिचय

भवसदंत्त बोल्यो सुनि नारि, कहौं वात सहु मनि अवधारि ।
भरय खेत्र कुरजगल देस, हथणापुर भूपाल नरेस ।।२०७।।

धनपति सेठ वसै तहि ठाम, तासु तीया कमलश्री नाम ।
भवसदंत्त हौ तहि कौ बाल, सुख मैं जात न जाणै काल ।।२०८।।

दूजा मात सरूपणि पुत्त, पडित नाम दियो बंधुदत्त ।
प्रौहण पूरि दीपनै चल्यो, हो पणि साथि तासु कै मिल्यौं ।।२०९।।

सो पापी मति हीणो भयो, मदन दीप मुझ छोडिव गयो ।
कर्म जोगि पट्टण पाविियो, इहि विधि तुम थानकि आइयो ।।२१०।।

सुंदरि सुणी कवर की वात हरिखो चित्त विगास्यौ गात ।
जाण्यो सर्व नाव व्योहार, दोउ बराबर कुल आचार ।।२११।।

भविष्यानुरूपा का प्रस्ताव

बोली कामिणी सुणौ कुमार, करहु हमारे अगीकार ।
भोग विना जेइ दिन जाइ, ते दिन दइ न लेखै लाइ ।।२१२।।

मनुक्ष जनम फल कीजे सार, दीसै सहु ससार असार ।
भोगि भेद नवि जाणै कोइ, तेनर पसू बराबरि होइ ।।२१३ ।

---

1. क प्रति इव ।

सुणी बात बोलियो कुमार, सुणि कामिनि वृत को व्योहार।
दान अदत्ता लीजे कोइ, श्रावक जनम अविर्था होइ ।।२१४।।

भविष्यदत्त का उत्तर

हम जिणवर व्रत चित्तां धरा, दान अदत्ता संग न करा।
गुरू मुझ अडिग आखड़ी दइ, मन वच काया मानिव लइ ।।२१५।।

जो नर दान अदत्ता न लेइ, तहि की कीर्त्ति इन्द्र करेइ।
दान अदत्ता कीयो तिह्या संग, सत्य धोष मरि भयो भुजंग ।।२१६।।

जौं वितर तुझ देसी मोहि, भोग विलास सवै विधि होइ।
वचन हमारा जाणो सार, श्रावक तणो कह्यो आचार ।।२१७।।

असनवेग का आगमन

तौ लग असनवेगि आइयो, वहुत क्रोध आडंबर कियो।
कौण पुरुष आयो मुझ थानि, तहीं पापी को घालौ घाण ।।२१८।।

देव[1] दान सव मुझ तैं डरे, मेरा नग्र मै को न सचरै।
आवै बहुत मनिषि की गंधि, सागर त्तहि नै रालौं बंधि ।।२१९।।

भवसदंत्त उठीयो कलिकारि, आर दै दीढ कहि बात विचारि।
घणो कहा कीजे झडाल,[2] आयो सही तुहारो काल ।।२२०।।

भवसदंत्त नै वहु बल भयो, ठोकि कंध सो सनमुख भयो।
असनिवेगि देखियो कुमार, क्रोध सवै न्हाठो तहि वार ।।२२१।।

दीयो असुर अवधि अव लोइ, मेरो मित्र पूर्वलो होइ।
वितर वोलै सुणि हों मित्त, कहौं वात किम करो चित ।।२२२।।

---

१. क ख प्रति—देव दाणा-मुझवी डरे।
२ ख प्रति – जंजाल।

ह्रौं सन्यासौं तस घर मित्त, सेव हमारी करी बहुत ।
गुण तुम तणा चित्त मुझ रह्या, तुम दीठा हमि वहुत सुख लह्या ।।२२३।।

मन वछित वर मांगो धीर, ते सहु देस्यौ गहर गहीर ।
बोलो सुभट वहुत दे मान, ज्यौं हमनै दीन्हौ वरदान ।।२२४।।

कन्या रत्न देहु हम जोग, हम तुम मिल्मा कर्म संजोग ।
वितर भणे न करो विषाद, मौ तुमनै कीनो परसाद ।।२२५।।

बन्धुदत्त और भविष्यानुरूपा का विवाह

व्याहु तणी सामगरी करै, नग्र तणी वहु सोभा धरै ।
करीवि कुवेंग वहु विसयार, चौरी मडप रच्या सोभार ।।२२६।।

गावै अपघरा करि वहु कोड, वर कन्या कै वांध्यो मौड ।
साक्ष[2] विप्र वैसांदर भयो, भवसदंत्त तीया कर गहियो ।।२२७।।

चौथौ फेरौ करायौ कुमार, हाथ छुडावण कौ आचार ।
वैंतरि झारी पाणी लीयो, भवसदंत्त कै करि मेल्हीयो ।।२२८।।

कन्या नग्र दीयो सहु साज, दीनौ मदन दीप कौ राज ।
वस्त पदारथ भरित भंडार, मोती माणिक सोनौं सार ।।२२६।।

विनौ भगीत गुण भाख्या घणा, भवसदंत्त सेवग तुम तणा ।
नमसकार करि दीनो मान, वितर गयो आपणै थान ।।२३०।।

भवसदंत्त सुख सेवो घणौ, पूर्व पून्य सच्यौ आपणौं ।
तीया सहित वन क्रीडा करै, देव सासत्र गुरु निश्चै धरै ।।२३१।।

इन्द्रपुरी जिम भुजै भोग, पीडा सुख न जाणै रोग ।
भवसदत्त इहि विधि सुकमाल, सुख मैं जात न जाणै काल ।।२३२।।

---

१. क ख कीव ।

२. ख यति सास्त्र ।

बस्तुबन्ध

कमलश्री उरि उपणौ, हस्तनागपुर जन्म पाइयो ।
माता बचन बीसरियो, सत्रु साथि व्यापारि आइयो ।।
मदन दीप मै छाडियो, भाइ गयो पुलाइ[1] ।
कामनि बहु संपति लही, साता उदै सुभाइ ।।२३३।।

कमलश्री की दशा

चौपई— कमलश्री घरि बहु दुख करै, पुत्र वियोग चित्त मनि धरै।
असुर पात रालै बिलराइ, घड़ी इक मन रहै न ठाइ ।।२३४।।

पुत्र दुख माता दिन रु रात, दिवस राति सीझत ही जात ।
सहु समझावै पुर का आइ, उपरा उपरी कहै सुभाइ ।।२३५।।

नग्र कामिनी बैसे आइ, उपरा उपरी कहै सुभाइ ।
माता पुत्र विछोहो कीयो, तहि को पांप उदै आइयो ।।२३६।।

एक कामिनी कहै हसति, पूर्व न जाण्यो जिण अरहत ।
कमलश्री बहु पावै दुख, दीठा नही पुत्र का सुख ।।२३७।।

बोलै एक गालि करि देइ, बावै जिसा तिसा फल लेइ ।
मन बच काया दान न दीयो, तहि थि पुत्र विछोरा भयो ।।२३८।।

कमलश्री की बोली मात, हे पुत्री मेरी सुण बात ।
चलीवो[1] अर्जिका के ठाम, घडि च्यारि लीयो विश्राम ।।२३९।।

कमलश्री का आर्यिका के पास जाना

कमलश्री मनि हरषी भइ, मात सहित अर्जिका पै गइ ।
भाव भगति बहु वंधा पाइ बैठी अर्जिका आगै आइ ।।२४०।।

---

१ क ग प्रति—पुलाइ ।
१ चालिजो ।

कुसल समाधि बुझी व्योहार, जैसौ श्रावग जति आचार ।
कमलश्री दे मस्तकि हाथ, अर्जिका सेथो बुझै बात ।।२४१।।

माता मोहि कर्म संजोग, पाजे दुख पुत्र हि जोग ।
राति दिवस झीखत हो जाइ, चित्त एक क्षण रहे न ठाइ ।।२४२।।

बोली अर्जिका सुणौ कुमारि, दुख सुख दुवे मिश्र संसारि ।
कबही होइ सुभ संजोग, कब हो तिहि को होइ वियोग ।।२४३।।

सगर चक्रधर अति बलिचंड, सहु धरती भुजै छहखड ·
माठि सहस्र सुत तहिकै हुवा, एक बार सगला ही मुवा ।।२४४।।

कबही नर सुख लीला करै, क्बही भीख मागती फिरै ।
कबही जीवीड़ो खाड कपुर, कबही न लहै खलि को चूर ।।२४५।।

पुन्य पाप तरु जेसा बोवै, तहिका तैसा फल भोगवै ।
झुठा जीव पसारा करै, करम फिरावै तैसे फिरै ।।२४६।।

पुत्री मन मैं न करी सोग, मिलसी पुत्र कर्म सजोग ।
मन मैं दुख न कीजे कोइ, भावी[1] लिखो न मेटै कोइ ।।२४७।।

कमलश्री अर्जिकास्यो भणे, वीनती एक हमारी सुणी ।
व्रत धर्म का दिउ[2] उपदेस, मिलै पुत्र सहु जाइ कलेस ।।२४८।।

श्रुत पंचमी का व्रत

सुव्रत अर्जिका कहै विचारि, व्रत उपदेस सुणो कुमारि ।
श्रुत पचमी तणौ व्रतसार, तहिकौ कीजे अगीकार ।।२४९।।

तब कमलश्री बोली एव, व्रत पचमी को कहिए भेव ।
कौण मास दिन कहि विधि होइ, तहि को उत्तर दीजे मोहि ।।२५०।।

१. क, ग—भयी ।
२ क ग प्रति—जैनधर्म दिठ उपदेश ।

भणै अर्जिका सुदरि सुणो, कहो निथार(थ) सद्यो व्रत तणौं ।
कातिग फागुन सुभ आषाढ, सुदि पाचैं उपवास सु पाठ ।।२५१।।

चौथि ऊजाली करै सनान, धोवति पहरि जाइ जिण थान ।
जिण चौवीस न्हावण करेइ, आठ द्रव्य सुभ पूजा लेइ ।।२५२।।

देव सास्त्र गुरु पूजैं पाइ, भगति वंदना करि घरि आइ ।
पाछैं पात्रा देइ दान, मिष्ट मनोहर भोजन पान ।।२५३।।

एक भगति सुभ करैं आहार, पाछैं सवही करैं निवार ।
राति भूमि सुभ सज्या करैं, नाम जिणेसुर मन मैं धरैं ।।२५४।।

देव सास्त्र गुरु आन्या लेइ, श्रुत पाचैं उपवास करेइ ।।
होइ पचमी को परभात, पुरुष सलाखा की सुणि बात ।।२५५।।

पोसो सामाइक दिन गमैं, अर्थ पुराण मध्य मन रमैं ।
तहि दिन वैरी मित्र समानि, सोनों तिणों बराबरि जानि ।।२५६।।

करि जाग्रण गमै सुभ राति[1] करैं सनान उदै परभति ।
जिणवर न्हावण पूजा विधि करै, पाछै आइ घरि गम करैं ।।२५७।।

देइ पात्र जोगै आहार, समाधान वात व्यौहार ।
पाछै एक भगति पारणो, निर्मल मन राखै आपणो ।।२५८।।

सेत पचमी को दिन सार, पैंसठी[1] मास करै विस्तार ।
पूरैं व्रत उद्यापन करैं, महाभिषेक पूजा विस्तरैं ।।२५९।।

फल फूल नेवज चदना, अगर कपूर मनोहर घणा ।
झालर कलस भेरि कसाल, चदवा तोरण ध्वजा विसाल ।।२६०।।

जिणवर भवणि महोछा करैं, श्रुत सास्त्र पूजा विस्तरैं ।
देइ जतीनैं सास्त्र लिखाइ, पादू बधन निमल भाइ ।।२६१।।

---

१ क ग—गति ।

१ क पोसहि ख प्रति पोसवि ।

गुर चरणा करि पूजा सार, चहुं विधि सघ जोग आहार।
जिथा जोगि वस्त्र सुभ दान, चोवा चदन फोफल पान ॥२६२॥

उद्यापन की सकति न होइ, दूणौ व्रत करै सहु कोइ।
जैसी सकति तसौ विस्तार, उपध[1] सास्त्र अभै आहार ॥२६३॥

भाव सुध अहि विधि व्रत करै, सो नर मुकति कामनी सुख लहै।
पीडा दुख न व्यापै रोग, मिलै पुत्र सहु जाइ विजोग ॥२६४॥

सुणी बात अर्जिका तणी, उपनी अगि सीलाइ घणी।
नमस्कार करि बारम्बार, कीयो व्रत को अगीकार ॥२६५॥

पूजा दान सहित व्रत सार- करि उपवास वीनती च्यारि ॥
दुखी दलिद्री देहु दान, व्रत पचमी कौ वहु मान ॥२६६॥

आर्यिका को साथ लेकर मुनि के पास जाना

इहि विधि काल गमै सु दरि, पुत्र तणी वहु चिंता भणी ॥
एक दिन ले अर्जिका साथि, गइ जिणालै जाहा जगनाथ ॥२६७॥

जिणवर विंव वद्या वहु भाइ, अर्जिका सहित मुनिवर पै जाइ।
करी वदना मस्तकि हाथि, वनती एक सुणौ मुनिनाथ ॥२६८॥

कमलश्री सुत दीपां गयो, तहिकौ वहुडि न सोधौ लह्यौ।
पुत्र विजोग वहुत अकुलाइ, रात्रि दिवस मन रहै न ठाइ ॥२६९॥

स्वामी तुम्है अवधि का जाण, वचन तुम्हारा महा प्रमाण।
भवसदत्त छै कोणौं थानि, हानि[2] वृद्धि तसु करौ वखाण ॥२७०॥

मुनि का वचन

मुनिवर भणै अवधि कै भाइ, सुणौ वात मन राखौ ठाइ ॥
मदन दीप पहुतौ कुसलात, पट तिलक महा विख्यात ॥२७१॥

---

१. उखद ख प्रति।
२. क ज प्रति श्री हीनि वुद्धि।

सुकर्म जोगि तहा बालक गयो, सुंदरि एक तहा मेलौ भयो ॥
नगर सहित वहु सपति लही, सत्य वचन तुम जांणौ सही ॥२७२॥

सुखस्यौं बारा बरस तहा रहै, वस्त पदारथ वहु विधि लहै ।
रुति[1] वसत मास वैसाख, पाचैं दिवस उजालौ पाख ॥२७३॥

राति पाछिली निश्चौ जाणि, मपति कामिणि वहुत सुजाणि ।
कुसल खेम तुम मिलिसी आइ, सोक तुम्हारा मन को जाइ ॥२७४॥

मुनिवर वचन सुण्या मन लाइ, भयो हरप अति अग न माइ ।
मुनिवर अर्जिका वद्या वहु भाइ, कमलश्री पहुती निज ठाइ ॥२७५॥

वस्तुवन्ध

प्रीतम पुत्र विजोग अति, कमलश्री वहु दुख पाइयो ।
पूर्व कर्म कुमाइयो, पाछैं सुंदरि उदै आइयो ॥
वचन सुण्या मुनिवर तणा, उपनौ हरख अपार ।
भवसदत्त जहि दीप छै, तहि कौ सुणौ विचार ॥२७६॥

चौपई— कमलश्री दिन गिणती जाइ, बरस मास वह रैं मनलाई ।
या तौ कथा हथणापुरि रही, कहौ कथा जौ तिलकपुर भंई ॥२७७॥

भविष्यानुरूपा का प्रश्न

एकं दिन भौसाणह सत, वात पाछिली भासौ कत ।
पहली वात जके तुम कही, ते सहु स्वामी वीसरि गई ॥२७८॥

कौंण देस नग्र तुम तात, आया इहा कौण के साथि ॥
सहु विरतांत कहे आपणो, जिम ससौ भाजै मन तणो ॥२७९॥

भविष्यदत्त द्वारा मन मे पश्चात्ताप करना

भवसदंत्त सुणि कामणि वात, पायौ दुख पसीनौ गात ।
हौं पापी तसु कीयो विस्वास, माता की नवि पूरइ आस ॥२८०॥

---

१. क ग प्रति रति ।

सीचै माली तरु बहु भाइ, तिस का पाछै सो फलु खाइ।
बहु उपगार कीयौ मुझ मात, सो[1] तिहि की विसरि गयो बात ॥२८१॥

बारह वर्ष भोग मैं गया, मात पिता सहु विसरि गया।
धन सपति सोइ जगि सार, कीजै सजन तातै उपगार ॥२८२॥

हौं पापी मति हीणौं भयो, मात पिता न वि सोधौं कीयौ।
कोइ किसकौ सगो न होइ, स्वारथ आप करै सहु कोइ ॥२८३॥

पावै द्रव्य तही कौ सार, जो पर जोग्य करै उपगार।
जिणवर थानि पतिष्टा करेइ, दान च्यारि तिहु पात्रा देइ ॥२८४॥

उदिम करिबि ईहा थे चलौं, सम्पति ले माता नैं मिलौ।
भवसदत्त मनि सोची बात, कामिणीस्यौ भासै विरतात ॥२८५॥

भविष्यदत्त द्वारा अपना परिचय देना

सहु सनवध सुणौ कामिणी, विधिस्यौं बात कहौं आपणी।
भरथ क्षेत्र हथणापुर थान, धनपति सेठ द्रव्य कौ निधान ॥२८६॥

कमलश्री तिहि कौ कामिनी, भगति देव गुर सास्त्रा तणी।
भवसदत्त है तहि कौ लाल, सुख मैं जात न जाणौं काल ॥२८८॥

दुजी तीया सेठि कै जाणि, रूपणि नाम रूप की खानि।
वधुदत्त तहि कौ जाईयो, रत्नद्वीप विणिज ही चालियो ॥२८८॥

हम पणि तासु साथि गम कीयो, मदन दीप साथि ही आइयो।
वधुदत्त कुभाव, छाड्यो मदन दीप वन ठाउ ॥२८९॥

पापी आपण गयो पलाहि, छाडि[1] गयौ मुझ वुस बन माहि।
कर्म जोगि जुनौं पथ लहयौ, पुन्य उदै तुम मेलो भयो ॥२९०॥

इहु वरतात हमारो जाणि, कर्म जोगि आयौ इहि थान।
कामनि उदिम कीजे कोइ, जहि थे हथणापुरि गम होइ ॥२९१॥

---

१ ख प्रति—छाडिउ हौ उद वासना माहि।

उद्दिम सगली वातां सार, उदिम थे पावै सिवद्वार।
उद्दिम करै कर्म फल होइ, वावै जिसा तसु फल जोइ ।।२६२।।

उद्दिम करता हसै न कोइ, उद्दिम करता सुगति होइ।
उद्दिम करि जे चारित्र धरै, तोडै कर्म सिद्ध सचरै ।।२६३।।

सगली वाता उद्दिम भलौ, संपति लेइ जल तीरा चलौ।
पथी प्रोहण आवत जात, हथणापुर जाजे तहि साथि ।।२६४।।

कामिनी सुणी कत की वात, मान्यौ वचन विकास्यौं गात।
चालौ पथ जहा सागर तीर, दाख वेलि वन गहर गंभीर ।।२६५।।

मडप दाख सु महा उत्तग. वधी धुजा सुभ अधिक सुचग।
नग्र मध्य जे वस्त निधान, आण्यौ सहु मडप कै थान ।।२६६।।

मोती माणिक वहुत कपूर, चदन किस्नागर की चूर।
जाति जाति का मेवा घणा, ढीगली आणि किया तहि तणा ।।२६७।।

भवसदत्तरू उभौसाण, सुखस्यौं सै तिष्ठौ[1] मडप थान ।।
मु जै भोग सही मन तणा, सुर्ग देव जिम देवांगना ।।२६८।।

बन्धुदत्त के जहाज का आगमन

रहिता तहा केइ दिन गया, वंधुदत्त प्रोहण आइया।
दमडी एक न पूंजी रहयो, पाप जोग सगलौ खोइयो ।।२६६।।

फटा वस्त्र अति बुरा हाल, दुर्वल अस्ति उतरी खाल।
वधुदत्त दूरि थे जोइ जलधि तीर धुजी लहकाइ ।।३००।।

वाण्या वास्यौं करै वखाण, देख्यो जाइ कौण तहि थान।
नाव वैसि वाण्या चालिया, भवसदत्त कै थानकि गया ।।३०१।।

मन माहै आलोचै कोइ, ईहु को देव देवागना होइ।
नम्या चरण धरती धरि सीस, गौवरि महेस विसवावीस ।।३०२।।

१. क ग प्रति — निवसै।

सकलप विकलप वाण्या करै, उद वस बन मैं किम सचरै ।
तव लग वेगि पोत आइयो, वधुदत्त उतरि देखियो ।।३०३।।

सो अति मन मैं करै विचार, इह देवी इहु नाग कुमार ।
वन माहै वन क्रीडा करै, दुष्ट जीव की सक न धरै ।।३०४।।

कै नाराइण लिखमी होइ, असौ रूप न दीसै कोइ ।
इहि परतखि गोरज्या महेस, चंद्र सहित जिम सोभै सेस ।।३०५।।

वाण्या सहित विनौ वहु कीया, भवसदत्त का पग वदिया ।
कमलश्री सुत जाणी वात, इहु तौ वंधुदत्त कौ साथ ।।३०६।।

भविष्यदत्त वंधुदत्त का मिलन

ले[1] आलिंगन वारंवार, मिल्या भाइ हरष अपार ।
कुसलखेम वुझी सहु सार, जैसो सजन कौ व्यौहार।।३०७।।

हो स्वामी मति हीणौ भयो, तु एकाकी वन मैं छाडियो ।।
असी नवि कोइ करै न वात, क्षिमा करौ हम उपरि भ्रात ।।३०८।।

पाछै हों पछितायो घणौ, जाण्यौ ध्रिग जनम आपणौ ।
तुम विजोग उपनौ बहु सोग, विष सम छोडिये सव ही भोग ।।३०९।।

राति दिवसि मुझ खोजत गयो विढती कौडी एक न लह्यो ।
असा मन मैं उपनी वात, जै हो घरि जास्यौ कुसलात ।।३१० ।

मात पिता बुझौ करी मान, भवमदत्त छाडिउ कहि थान ।
मुझ नै उतर न आसी कोइ, वदन सहीस्योकालो होइ ।।३११

मेरो दुस्ट वज्र को हीयो, मैं एकाकी वन मैं छाडियो ।
पुन्य घडी अब आइ भ्रात, जावत दुवै मिल्या कुसलात ।।३१२।।

भ्रात वचन मुझ आगे भणौ, जिम भाजै ससौ मन तणौ ।
कौण नग्र ही छै विसाल, कन्या रत्न लही सुकमाल ।।३१३।।

---

१ क ग प्रति लीया नारेल ।

वस्त अनोपम ल्याया सार, तिहि को स्वामी करो विचार ।
दुर्जन सुणै हीयो अति हणे, सजन सुनै सुकीरति भणै ।।३१४।।

भविष्यदत्त का उत्तर

भवसदत्त सुणि भाई वात, हसि बोल्यौ सुणि हो तु भ्रात ।
सुभ अर असुभ उपायो होइ, तिहि का फल नर भु जै सोइ ।।३१५।।

कर्म विना नवि कोय सार, कर्म विना नवि लहै लगार ।
जैसौ कर्म उदै होय आइ, तैसो ताहा वाधि ले जाय ।।३१६।।

हम पूर्व सुकृत सग्रह्यौं, भली वस्त कौ मेलो भयो ।
सुख दुख दाता को नवि जान, दीसै सहु कर्म विनाण ।।३१७।।

सुख दुख • दाता कोई नही, भावी को नवि मेटै सही ।
चहुगति मध्य जीव सचरै, पाप पुन्य ते साथि हिं फिरै ।।३१८।।

लाधी वस्त न करीजे हरष, गई वस्त को न करी दुख ।
दहु वात मध्यस्थु जु रहै, तिहि को सुजस इन्द्र वर्णवै ।।३१९।।

कामणि जोगै दुवो दीयो, बन्धुदत्त नै भोजन कीयो ।
वाण्या सहित करी ज्यौणार, पान सुपारी वस्त्र अपार ।।३२०।।

सब दलिद्र तसु राल्यौ चूरि, प्रोहण वसत्र दिया भरपूरि ।
भवसदत्त मनि नही गुमान, बन्धुदत्तनै दीनौ मान ।।३२१।।

वस्तुबंध

भलो दीठो तिलकपुर थान, भवसदत्त बहु भोग कीन्हा ।
चन्द्रप्रभ जिन पूजा कीनी, तिया द्रव्य सहु साथि लीनी ।।
सागर तटि तहि थिति करै, भाइ मिलियो आइ ।
अवर कथा आगै भइ, सबै सुणौं मन लाइ ।।३२२।।

चौपई— भवसदत्त वोल्यो सुणि भ्रात, भली भई आयो कुसलात ।
वचन कहौं तुम आगै भलो, तीया सहित हमनै ले चलो ।।३२३।।

द्वादस वर्ष भोग मैं गया, मात पितान की सुधि न लहिया ।
अब हमनै इहु दीजे दान. ले चालहु हथणापुर थान ।।३२४।।

वधुदत्त सुणि भाई वात, हरपो चित विकास्यौ गात ।
स्वामी हौं सेवग तुम तणौ, भगति बदना करिस्यौ घणौ ।।३२५।।

भविष्यदत्त एवं भविष्यानुरूपा का जहाज में चढ़ना

भवसदत्त कौ दूवै लीयो, सहु समदाउ पोत मैं दीयो ।
सागर तीर प्रोहण खडौ, भवसदत्त तिया साथिहि चढौ ।।३२६।।

भवसदत्तस्यौ भासै तिया, वस्त दोइ वीसरि आइया ।
नागसेज्जा काममू दडी, रही दाख मंडप तलि पडी ।।३२७।।

भविष्यदत्त का पुनः द्वीप में जाना

वेगि जाहु ले आवो कत, जहि विण क्षण एक रहै न चित ।
मान्यो वचन तिया जे कह्यो, भवसदत्त तहा उत्तरि गयो ।।३२८।।

बन्धुदत्त द्वारा पुन: विश्वासघात

बधुदत्त वहु कुड कुमाइ, तक्षण प्रोहण दीयो चलाइ ।
पापी सोची नाही वात, दूजा कीयो विश्वासघात ।।३२९।।

सज्या नागमूदडी लीयो, भवसदत्त तहि थानकि गयो ।
दिठि न पडै तहा प्रोहण थान, भयो कुमारि मन माहि गुमान ।।३३०।।

हो विधिना अति अचिरज भयो, प्रोहण थानक वीसरि गयो ।
सागर तीर फिरिउ तम्हि थान, दीसै नही पात्त सहिनाण ।।३३१।।

उचौ चढि देखै निरताइ, प्रोहण चालै सागर माहि ।
उचौ कर करि सवद कराइ, प्रोहण चाल्या तीरजि माइ ।।३३२।।

भविष्यदत्त का मूर्च्छित होना

चित्त एक क्षण रहै न धीर, मूरछा आइ पडौ उरवीर ।
सरण नथि दीसै कोइ, पडियो भूमि मरौ जिम होइ ।।३३३।।

सीतल वाइ सरीर लागीयो, गइ मूर्छा उठि जागियो ।
दाख वालि कौ मडप जाहा, च्याल्यौ भवसदत्त गयो ताहा ॥३३४॥

देखि कवर तहा सूनौ थान, मन मैं दुख करै असमान ।
मोह जडिउ बोलै वाउलौ, आउ कामनी वेगी मिलौ ॥३३५॥

तहि थे चालौ कमलश्री वाल, पसु जाति दीठा विकराल ।
हरण रोझ सूवर सावरा, भैसा रीछ महिष अति वुरा ॥३३६॥

त्याहस्यौं तणौ विनौ करि घणौ, कहै सदेसौ कामिणि तणौ ।
चाल्यौ वेगि नग्र मैं गयो, तहा सूनौ थानक देखियो ॥ ३३७॥

करता भोग गावता गीत, ते थांनक दीठा भैभीत ।
कामिणि धन ते विधना दीयो, पाछै सुपनौ सौ करि गयो ॥३३८॥

सुमरै सुख कामिणी तणा, तिम तिम दुख उपजै अति घणा ।
फिरि फिर सवै नग्र देखियो, चद्रप्रभ जिण मन्दिर गयो ॥३३९॥

सोग सवै छाडिउ तहिवार, जिणवर चरणा कीयो जुहार ।
गुणग्राम भास्या वहु भाइ, जिहि थे पाप कर्म क्षो जाइ ॥३४०॥

दोहड़ा हियडा संवर धीयडी, दुख न करी अतीव ।
कर्म नचावै जिम नचै, तिम तिम नाचै जीव ॥३४१॥

सुख दुख जामण मरण अति, जहि थानकि जो होइ ।
घडी महूरत एक क्षण, राख सकै नही कोइ ॥३४२॥

चौपई भवसदत्त जिणवर के थान, भासै कथा रूप भौसाण ।
कंत विजोग वहुत दुख करै, असुर धार नेत्रा थे झरै ॥३४३॥

वंधुदत्तस्यौं वोलै गालि, रे पापी फिरि मुख दिखालि ।
भाई नै वहु सकट धरै, असा कर्म नीच नवि करै ॥३४४॥

भविष्यदत्त द्वारा चिन्तन

करै विसासघात ज कोई, नरक तणा दुख भुंजै सोइ ।
पापी नै नवि आई दया, हरत परत तुझ तन्यौ गया ॥३४५॥

कै हो विधना कीना दुखी, पापी राकसि काई न भखी।
कामिणि कंत विछोहो कीयो, सो पाप मुझ उदै आइयो ॥३४६॥

कै अवगान्यो जिणवर देव, कै मिथाती गुरु की सेव।
कै कुदान दीना वहु दाति, कै मैं भोजन कीनौ राति ॥३४७॥

पूर्व कंत परायो लीयो, तिहि विधना मेरौ छीनियो।
माता पुत्र विछोहो कोइ, विधना सजा लगाई मोहि ॥३४८॥

सहु आभरण दीन्हा रालि, तजौ तवोल पान सहु फालि।
कहै कत को सोधो कोइ, वस्त्र कनक सहु मुकतौ होइ ॥३४९॥

बन्धुदत्त की निर्लज्जता

वंधुदत्त कुण छोडी लाज, जाणौं नही काज अकाज।
पापी कै मन रहै न ठाइ, भावज कै नखि वैठौ आइ ॥३५०॥

जिम कूकर परकावै पूछ, भावज हाथ लगावै मुछ।
हे कामिणि करि दया पसाव, राखौ वोल हमारौ भाउ ॥३५१॥

भविष्यानुरुपा का विरोध

सुणि वोली कुलवती नारि, रे पापी कहि वात विचारि।
वडा भ्रात की कामिणी होइ, माता जसी गिणै सहु कोइ ॥३५२॥

कर्म इसा न करै कुल वाल, भावज घरै डूम चिडालु।
रे मूरख मन राखौ ठाइ, पाप उपाइ नरक गति जाइ ॥३५३॥

पापी मद को अन्धौभयो, मानै नही भाउज कौ कह्यौ।
जिम पापी भूडौ मन करै, तिम तिम पोत अधो सचरै ॥३५४॥

सतवती कौ सील सुभाइ, वुडै पोत वणिक विललाइ।
उछलै पवन झकोलै नीर, वूडै वाण्या वस्त गहीर ॥३५५॥

रिसि करि वाण्या वौलै वात, तुम पापी सहु वोल्यो साथ।
पाकडि हाथ दूरि ले कीयो, वचन कहि वहु निर्भ्रंटियो ॥३५६॥

भौसाण-रूपस्यौं विनती करै, तुम कोप साथा सव मरै ।
तुम सतवती निर्मल भाउ, हम उपरि करि छमा पसाव ॥३५७॥

जै पछिम दिस ऊगै भान, को नविभानै सील निधान ।
माता सक चित्ति मत करौ, होसी सही वुरा कौ वुरौ ॥३५८॥

वण्यक पुत्र सहु रख्या करै, वंधुदत्त नवि नख संचरै ।
भवसदत्त त्रिया क्षमा कराइ, तिम तिम प्रोहण चाल्या जाइ ॥३५९॥

सती करै मन माहे चित. मुझ विजोग मरिसी सुत कंत ।
हौ पणि मरिस्यौं तासु विजोग, असौ भयो कर्म संजोग ॥३६०॥

भविष्यानुरुपा को स्वप्न

रैंणि समै सूती सत भाइ, सुपनो कह्यौ देवता आइ ।
हे सुंदरि तुम न करौ चित, मास एक मिलिसी तुझ कत ॥३६१॥

सुपनो सुभ कामिणी देखियो, सुभ मन धीर आपणो कीयो ।
मिलिसी कत मास जे आइ, प्राण हमारा रहसी ठाइ ॥३६२॥

जहाज का समुद्र तट पर आगमन

चलत चलत केइ दिन गयो, प्रोहण सुमद तीर लागियो ।
वणिक उतरै प्रोहण भार, वस्त किराणा चीर भडार ॥३६३॥

वालदि भरी वस्त वहु सार, वधुदत्तास्यौं वणिक कुमार ।
रली रग सव ही मनि भया, हथणापुरि तक्षण पहुचिया ॥३६४॥

बन्धुदत्त एवं धनपति सेठ का मिलन

पहुता नग्रि वधाई हार, वधुदत्त आगम व्यौहार ।
सुणी वात धनपति सुख भयो, ले वाजा वहु सामहु गयो ॥३६५॥

भेटि पुत्र वहु भयो उछाह, वाज्या वहु नीसाण घाव ।

सजन लोग वहु संतोपिया, दुर्जन का मन काला भया।
दिया तंबोल सेठ वहु भाइ, कामणि गीत वधावा गाइ ।।३६७।।

चाल्या था जे वाण्या साथि, कमलश्री तसु वूझै वात।
वधुदत्त कौ वहु डरै करै, समाचार नवि को उचरै ।।३६८।।

कमलश्री का पुनः आर्यिका के पास जाना

कमलश्री मनि भयो गुमान, गव वेगि अजिका कै थानि।
नेत्र असरपात वहु करै, पुत्र विजोग दुख अति करै ।।३६९।।

नमसकार करि वुझै वात, पुत्र हमारो न आयो मात।
दाझै देह अधिक अकुलाइ, समाचार कोन कहै माय ।।३७०।।

अजिका वोली सुणि सुदरि, वेटा को तु ना डर करी।
मुनिवर अवधि दिवस जो कही, पुत्र तुम्हारौ आसी सही ।।३७१।।

पछिम दिस जै उगै भाण, मुनिवर झूठ न करै वखाण।
कर्म जोगी परवत पणि फिरै, मुनिवर मुख झूठ न नीसरै ।।३७२।।

अजिका वचन न्ह्यो सतोप, जैसो मुनिवर पायो मोख।
सुणी वात जे अजिका कही, कमलश्री निज थानकि गई ।।३७३।।

वधुदत्त मिलिवा आइयो, कमलश्री का पद वदियो।
कुसल खेम सहु वूझी सार, जैसो पुत्र मात व्योहार ।।३७४।।

कमलश्री वूझै दे मान, भवसदत्त छाडिउ कहि थान।
समाचार सुत साचा भणौ, जिम ससौ भाजै मन तणौ ।।३७५।।

वधुदत्त वोल्यौ सुणि भाइ, कुसल क्षेम तिष्टै तहि ठाइ।
धन सपति तहि वहुली लही, वेगौ तुमसै मिलसी सही ।।३७६।।

हमनै जैसो देखौ इहा, तैसो सुत नै जाणौ तहा।
कमलश्री सुणि वहु सुख भयौ, वधुदत्त निज मन्दिर गयौ ।।३७७।।

अन्तिम पाठ

मूलसघ सारद सुभ गछि, छोडि चारि कषाइ निरभंछि ।
अनतकीर्त्ति मुनि गुणह निधान, तास तणौ सिपि कीयो वखाण ।।१५।।

वरह्य राइमल थोडि बुधि, अखर पद की न लहै सुधि ।
जैसी मति दीनौ अंकास, व्रत पंचमी कौ प्रगास ।।१६।।

व्रत पंचमी जै को करै, केवल उसमतहि नै फुरै ।
जै याह कथा सुणै दे कान, काल लहवि पावै निर्वाण ।।१७।।

सोलाहसै तेतीसा सार, कातिग सुदि चौदसि सनिवार ।
स्वाति नक्षत्र सिद्धि सुभ जोग, पीडा दुख न व्यापै रोग ।।१८।।

देस ढूढाहड सोभा घणी, पूजै तहा अली मन तणी ।
निर्मल तलै नदी बहु फिरि, सुबस वसै बहुत सांगानेरि ।।१९।।

चहु दिसि भलो वण्यौ वाजार, भरे पटोला मोती हार ।
भवण उत्तंग जिणेसुर तणा सौभै चंदवो तोरण घणा ।।२०।।

राजा राज करै भगवतदास, राजकवर सेवै वहु तास ।
परजा लोग सुखी सुख वास, दुखी दलिद्री पूरै आस ।।२१।।

श्रावक लोक वसै धनवंत, पूजा करै जपै अरहत ।
उपरा उपरी वैर न कास, जिम इंद्र सुर्ग सुखवास ।।२२।।

आखर मात ज भूलो होइ, पडित जन सहु क्षमिज्यो मोहि ।
अति अयाण मति थोडी भई, कथा पंचमी व्रत की कही ।।२३ ।।

वार वार नवि भणौ पसार, जग मै जीव दया व्रत सार ।
जो नर जीव दया कौ पाल, रोग सोग नहि व्यापै काल ।।२४।।

इति श्री भवसदंत चउपइ[1] सपूर्ण ।

---

१. क प्रति कथा ।

परमहंस चौपई

रचना काल सं० १६३६

ज्येष्ठ कृष्ण १३ शनिवार

रचना स्थान तक्षकगढ (टोडारार्यासह)

प्रारम्भ

दोहा— परमहस अती गुण निलो, जो वदै वहु भाइ
तीह को परगाह वरणऊ, सुनहु भविक मन लाई ।।२६।।

जहि समरन टूटै सब कष्ट, करम तणा वहु भार ।
चहु गत मध्य फीरे नही, ऊतरै भव जल पार ।।२७।।

चौपई— परमहंस राजा सुभ काज, घरै चतुसटय लखमी राज ।
नीसचय तीन लोक परमाण, जीम सोवरण पती गुन जाण ।।२८।।

देहालो सियालो जीसो, दीलुह मधि रहछै तीसो ।
घोर बहुर घती ढूढन जाई, घर घर भीतर रह्यो समाई ।।२९।।

परमहंस कै स्त्री चेतना, नीरमल गुन अति सोभै घना ।
तीह की महीमां जाई न कही, परमहस न अति वालही ।।३०।।

पुत्र च्यार सोभै अति घना, सुख सत्ता वोध चेतना ।
परमहस सुख मु जै एव, सकलप विकलप रहतसु देव ।।३१।।

फिरत फिरत मया तिहां गई, परमहस सु भेंटा भई ।
मया भण विनो कर घनो स्वामी सुजस सुन्यो तुम तणो ।।३२।।

कीरत पसरी तीनु लोक, गुन अनत तुम हरष न सोक ।
सुध्र सुभाव तुम्हारो रूप, निराकार सुख तीसट भूप ।।३३।।

सुन स्वामी मेरी वीनती, वहु कामणी तिन मे हू सती ।
हरि हर ब्रह्मा ढूढै मोह, तप जप सील छोड दे सोह ।।३४।।

स्वामि हु अती चतुर सुजान, पुरष कुपुरप कहौ परमान ।
लोभी ह्वै कर बुझै वात, करै वीसास पछे तसु घात ।।३५।।

मै माया वहु जग धधियो, ठाई सहत कोई न वीगयो ।
मै हीवडा मे देख विमास, आई स्वामी तुम्हारै पास । ३६।।

हाथ जोड वीनती करूं अडी, हम तो अडग लई आपडी ।
कै तो परमहस ने वरूं, नही तर अकत कवारी मरूं ।।३७।।

खोटी वसत जु दीजे राल, जीह थें पाछें आव गाल ।
खरी वसत को कीजे अगीकार, तिहे ते सुजसा लहै ससार ।।३८।।

परमहस माया सुन वैन, उपनो हरष विकासे नैन ।
ईह सम भोग भोगउ घणो, सफल जमारो तो हम तणो ।।३९।।

परमहस तव कियो विचार, माया कुं कर अगीकार ।
पटरांणी राखी कर भाव, परमहस कै मन अती चाव ।।४०।।

दसुं प्रांण सुत माया तणां, त्यांका भेद भाव छै घणां ।
कर कलोल आपनै रंग, जिम अटवी कर फिरै सुचग ।।४१ ।।

स्पर्सना रसन घ्रान चक्षु कांन, त्यांह का विषै अधिकह वांन ।
पिता तणी नवी मानै आंन, फिरै सु इच्छा थांन कुथांन ।।४२।।

मन पापी जु पाप चितयो, पिता वांधि तव वंदि महि दयो ।
परमहस सवही राम भयो, सकल तिपाई मुरख हव गयो ।।४३।।

राजा मन जु राज भोगवै, इद्री सहीत जोर-अती हवै ।
राजकुंवर परणी दव नारी, परवृत्यरु निरवत्य कुमारी ।।४४ ।।

आई कुमरि जहे वंदीखान, परमहस दुख देखे जान ।
सकल दरसन चारीत वरनै, तिह का दुख वरणवै कुन ।।४५।।

मन की तीया प्रवृत्य गहीर, मोह पुत्र जायो वरवीर
तीन लोक मे तीह की गाज, सत्तर कोडा कोडी साज ।।४६ ।।

सो मोह सगलो संसार, घन कुटव मांड्यो पसार ।
गति चार मे फिरावै सोई, वालै जाल न निकसै कोई ।।४७।।

दुजी कामनी सो मन तणी । निरवृत्य नारी सुलखणी ।
तीह कै पुत्र भयो अती धीर, नांव विवेक सुगुनह गहीर ।।४८ ।।

भाव नीत मारग व्योहार, खोटो खरो परीस्या करै ।
देव सास्त्र गुरू जानै मरम, श्रावक यती तणो सहु धरम ।।४९।।

सव जीवन कुं दे उपदेस, जिह थे नासै रोग कलेस ।
कह विवेक सु वात विचार, सुलह इछा सुख संसार ।।५०।।

वस्तुबंध—परमहस वदु प्रथम, जिह सुमरण सहु पाप नासै ।
दसन णाण गुननीलो, दिष्ट केवल अरथ भासै ।।
हिए विचार तिहे कीयो, कर माया सुसग ।।
तिह के मन सुत उपनो, चचल अधिक सुचग ।।५१।।

दोहा— मन कै दव सुत उपना, मोह विवेक सुजाण ।
मोह प्रजा कुं पीडवै, विवेक भलो गुण ग्यान ।।५२।।

चौपई— मन राजा अव बेटो वहै, माया जोग देखन सहै ।
च्यारु पुत्र चेतना तना, छाड गया नीसचैय पाटणा ।।५३।।

जाणै सव कुटव कुसग, माया तणो उछाह सुचग ।
मन बेटो दीठो वलवत, मन मोह माया विहसत ।।५४।।

शोक हुवै माया चेतना, मोसा मसका सोक्या तर्ना ।
उपरा उपरी करै विरुध .... ।।५५।।

वेटा पास गई चेतना, परमहस छोडी तखिणा ।
कोई किसका छिद्रन कहै, पुत्र सहित सुखी सो रहै ।।५६।।

माया मनसु कहै हसत सुनो वात मेरी गुनवत ।
थारो पुत्र विवेक कुमार, करमी घर मे यकोकार ।।५७।।

सीख हमारी करज्यो एह, वेगो बदी षान इहु देह ।
दुसट भाव ईह दीसै घणो, मान्यो सही बचन तुम तनो ।।५८।।

सुनी बात तव माता तणी, तव बहुत सका उपनी ।
मन प्रपच माडियो अनेक, तखीन वाध्यो साधु विवेक ।।५९।।

तव निवृत्य सु वह दुपभरी, परमहस सु वीनती करी ।
सुसरा मेरो पुत्र छुडाई, दोष विना वध्यो मनराई ।।६०।।

परमहंस जपै सुन वहु, एह परपञ्च माया का सहु ।
निसचै पटन छै चेतनां, तिह कै पास जाहु तपीनां ।।६१।।

व्योरो वात हमारी कही, थारो पुत्र छुडावै सही ।
तब नीवृत्य गई तषीना, निसचै पटन जहां चेतना ।।६२।।

सासु तना बदीया पाई, वात कही दुख की नीरताई ।
राजा मन वंध्यो मुझ नंद, कवर विवेक अधिक गुनवंत ।।६३।।

परमहंस तुम पै मोकली, कीज्यो वात होई सो भली ।
हमनै मात करो उपगार, छूटै जिम विवेक कुमार ।।६४।।

सुनी वात जु निवृत्य तनी, अती चेतना दया उपनी ।
निवृत्य सेती कह सुभाई, पुत्र छुडाई करो उपाई ।।६५।।

प्रव्रति को अती हरष्यो हीयो, मेरो राज निकंटक भयो ।
मन राजा सु कह हसत, मेरी वात सुनो गुणवंत ।।६६।।

मोह पुत्र थारो वर वीर, माता पिता को सेवक धीर ।
स्वामी देइ मोहनै राज, सीरो सव तुम्हारो काज ।।६७।।

मन राजा प्रवृत्य वस भयो, राल्यो नही त्रीया को कयो ।
राज विभूति तनो सहु साज, मोह बुला दीयो तिही राज ।।६८।।

पाप नगरी का वर्णन

मोह राव ठकुराई करै, दुरजन कोई धीर न धरै ।।
तिह को अधिक तेज आताप, जाउ नगरी बसावै पाप ।।६९।।

पुरी अग्यान कोट चहु पास, त्रिसना षाई सोभै तास ।
च्यारू गति दरवाजा वण्या, दीसै तिहां विषवन घणां ।।७०।।

जेता वहुत असुध वर णाम, उंचा मदीर दीसे ठाम ।
कुआचार तणो चहुं वास, कोई कीसही को न वीसास ।।७१।।

मिथ्या दरसन मत्री तास, सेवक आठ करम को वास ।
क्रोध मान डंभ परपंच, लोभ सहत तिहा नीवसै पंच ।।७२।।

पद्रह प्रमाद मत्र तसु तणां, तिह सु मोह करै रग घना ।
रात दीवस ते सेवा करैं, मोह तनी वहु रख्या करै ।।७३।।

सातो विसन सुभ्र गती राज, जानै नही काज अकाज ।
निगुणा सघि सभा असमान, सौभै दुरगति सिघासन थान ।।७४।।

चवर ढलै रित विग्ररत वीसाल, छिद्र पुरोहीत पठतु कुस्याल ।
कुड कपट नग्र कोटवाल, पाखडी पोल्या रषवाल ।।७५।।

तिहको कुकवी रसोईदार, चोवीसु परिग्रह भंडार ।
कंदल कलह अन्न कोठार, नदी देहह वोल अपार ।।७६।।

असत छागल्यो पावरीण, चोर खवास तास वरवीर ।
महाकुसील पयादा तास, पाप नग्र मे तिह को वास ।।७७।।

परगह सवल कषाइ पचीस, पचपन मोह तनो सचसीस ।
ऐसो पाप नग्र को वास, भली वस्त को तीहा विनास ।।७८ ।।

निसचै नग्र पुत्र चेतना, तीह की वात सुनो भवीजना ।
निवृत्य पुत्र की वीनती करी, तव चेतना वात मन धरी ।।७९।।

जहा सुमन राजा छै वली, तिहठै कुमति आप मोकली ।
दीन्ही सीख बहुत नीरतार, दीजे वेग विवेक छुडाई ।।८०।।

तुमछो कुमति ठगोरी असी, मन राजा दीखै पघलसी ।
सोही कीज्यो चित विचार, छुटै वेग विवेक कुमार ।।८१।।

लीन्ही सीख कुलस्त तव गई, मन द्वारए जाइ ठाढी भई ।
पोल्या नवहु दीनो मान, प्रवृत मन राजा को थान ।।८२।।

हाव भाव तीहा कीया घना, वहुतक चिरत कामनी तना ।
देखत मन अती भयो विकास, वीनो करी वहु चूड तास ।।८३।।

तुम छो कुंन तुम्हारो नाम, दीसा चतुर केन थित ठाम ।
जिह कारन आई हम भणी, ते सहु वात कहो आपणी ॥८४॥

वोली कुमति जोडीया हाथ, वीनती सुनो हमारी नाथ ॥
सूरग तणीहु देवागनां, तेरा सुजस सुन्या हम घणा ॥८५॥

मेरा मन वहु उपनो भाव, भली वात देखन को चाव ।
छोड देव आई तुम थांन, तुम देखत सुख पायो जान ॥८६॥

मन राजा तसु सांभली वात, उपनो हरष विकास्यो गात ।
अगन संग लुणी गल जाई, मन राजा वोलो हस भाई ॥८७॥

दीठी त्रीया घनी अवलोई, तुम सम रूपन दीठो कोई ।
सुंदरी हम पे करो पसाव राखो वोल हमारो भाव ॥८८॥

करो हमारो अंगीकार, पटरानी सुख भुजो सार ।
वसत विभुती हमारै घनी, तिहकी सुंरतु खसमणी ॥८९ ॥

वोली कुमति सुनो मन जांन, कह्यो हमारो अंगीकार ।
पटतो हम तुम घर वा सोई, होई विधना लिख्यो न मेटै कोई ॥९०॥

वंध्यो पुत्र विवेक कुमार, ते छोडो ल्यावौ मती वार ।
जिह घरी वंदी खानो होई, भलो मनाव तिहां न कोई ॥९१॥

मन वोल्यो मत करो विषाद, यह तुमनै दीन्हो परसाद ।
साकुल काट हीयो मुकलाई, तंषिन गयो मात पै जाई ॥९२॥

कामी पुरष ज कोई होई, कामनी कह्यो न मेटै कोई ।
तिह को छादो छावै घनो, इदह अ्भ काह कामी नर तनो ॥९३॥

आयो निहचै पटन ठाव, मात चेतना वंद्या पाव ।
कह्यो पाछलो सहु व्योहार, सुखसुं रहै विवेककुमार ॥९४॥

वस्तु बंध– देख पुत्र निवृत्य सुकमाल, वहुत हरष उछाह कीन्हो ।
कीयो उपगारज चेतनां, तासुं वहुत सनमांन दीनो ॥

सवही तस पुरली उपनो सुख अपार ।
निहचै पट्टन मे रहै निवृत्य विवेककुमार ॥

चौपई— निवृति सु जपै चेतना, सांभल वहु वचना हम तना ।
पापी मोह दुसट सुभाव, पर पीडा चितवन सुहाव ॥९६॥

जाई जे छोड मोह को देस, जाई तुम्हारो सव कलेस ।
रहो जाई तुम नीकै जान, जिठ चारीतह सुभ जान ॥९७॥

साभली वात चेतना तनी, विवेक निवृति चाल्या तपिना ।
चलत पंथ जब आधा गया, हसा देस असुभ दे विया ॥९८॥

पाप नगरी दीसै तह रूद्र व्योहार, उपरां उपरी मारै यार ।
हांसि निंद्य तिहा अती ही होई, मारै कोई सराहै लोई ॥९९॥

दया रहत परजा परमान, बाट वटाउ न लहै ठाम ।
कर विसास मारै तसु जोग, हिंसा देस वसै जो लोग ॥१००॥

वोलै जको झूठ असमान, तिहसु त्यागो तुम सुनि जान ।
अधिक झूठ एह वोलै वाच, जिह थै टाकर मारै साच ॥१०१॥

सुखानद मन माही धरै, साच तिहा ववि लगतो फीरै ।
खोटो परख खरो जो लेई, तिहकी कीरत अधिक करेई ॥१०२॥

चोरी कर वहु पाडै वाट, धुनी मुसै करै घन वाट ।
तिहकै बिनो करै अविचार, तुम सम पुरुष नही ससार ॥१०३॥

सति अनादि वहुत विस्तरै, जै कोई नर चोरी करै ।
सेवै विषै जु इंद्री तना, तीह की करै भगत वदना ॥१०४॥

सेव विवै जे मूढ गवार, तिह उपर आनद अपार ।
रुद्र ध्यान रात्यो दिन जाई, कर प्रपच अति मारै भाई ॥१०५॥

सुखन कोई खाधी लेई, तिहनै मारै फासी देई ।
परजा वसै कसाई रंक, मारत पाप करै नीसक ॥१०६॥

वाल ग्राम जीव बहु मरै, पापी मनमे संक न करै ।
रुद्र ध्यान तीहा वहुत सुजान, मारै तहा कीच रली घान ।।१०७।।

अजि सिचाणां सिघ तिहा फिरै, जीवत प्रांनी नही उपरै ।
ग्रैसो दीसै हंसा देस, मात पुत्र न भयो कलेस ।।१०८।।

× × × × × × × ×

दोहा— ब्रह्म राईमल्ल वंदिया, कह्यो सास्त्र गुरू सार ।
वोर कथा आगे भई, तिह को सुनो विचार ।।२८४।।

चौपई— करै राजै विवेक सुजान, सुभ समकित मत्री परधान ।
नीको मतो देई उपदेस, तिहथे नासै रोग कलेस ।।२८५।।

सम्यकित मंत्री अति वलवत, जे वुझते होई निहचंत ।
नीकी सीख सु देई विचार, तिहथें भोजल उतरै पार ।।२८६।।

पट्टन तनो ग्यांन कोटवाल, रष्या करै वाल गोपाल ।
चार चवाउन को न संचरै, पट्टन परजा लीला करै ।।२८७।।

दुख सोक नवि जाणौ कोई, जैसी मुकति पुरी सम होई ।
ग्यान तनो वल अति विसतरै, दुर्जन दुष्टन लगतो फिरै ।।२८८।।

दोहा— विवेकवि भांति सव कही, पुन नगर व्योहार ।।
पाप नगर ब्योहार छै, तिन को सुनो विचार ।।२८९।।

मोह राव मन चितियो, मत्री वेग वुलाई ।
राज हमारो दिठ भयो, कटक गयो पुलाई ।।२९०।।

कहै मोह मत्री सुनो, मेरे मन ही कलेस ।
रात दीवति खटको हीये, भागो निवृत्य वाल ।।२९१।।

विवेक वैरी हम तनो, तिहको हम ने दुख ।
छाडि गयो सो सोचकरी, कदे न पावै सुख ।।२९२।।

वडो करि ईही छाडियो, मनमैं वैर न आई ।
दाव घाव सो वहु करै, पाछै तिह नै पाई ।।२९३।।

सर्प जे मरि पु भज गयो, सोध्यो नाही तास ।
नदी कडाड रूपडो, जव तव होई विणास ।।२६४।।

सोध्यो कीज्यो सत्रु कौ, मत्री करो विचार ।
दाव घाव साई करो, मरही विवेक कुमार ।।२६५।।

मन राजा भोलो भयो, छाडौं मेरो सत्रु ।
मन मे दया करी घणी, जान आपनो पुत्र ।।२६६।।

वैरी विसधर सारखो, तिह थे रहै सुचेत ।
मूढ़ जके ढीला बहै, तास मरन को देत ।।२६७।।

मन राजा का पुत्र वें, मोह विवेक सुजान ।
पूर्व प्रीत भई ईसी, मूसा सर्प समान ।।२६८।।

वेगा चाकर मोकलो, सीधो लावै जाई ।
देस गाव पट्टन फिरो, वात कहो निरताईं ।।२६९।।

चौपई — कूड कपट डडी पाखड, विदा दीया च्यारो परचड ।
देखही वरती बहुत असेस, पट्टन ग्राम गढ देस ।।३००।।

सव वाते बुझै निरताई, रहै विवेक कहो किही ठाई ।
वात भेद कोई नवी कहै, च्यारू मनमैं वहु दुख सहै ।।३०१।।

पथी एक मिल्यो तिह ठाम, तिह कै वहुत सरल परिणांम ।
तिह न मांन वहुत कर दीयो, चलता वाट सरल बुझियो ।।३०२।।

तुम परदेसा फिरता रहो, राजा देस वात बहु लहो ।
कवर विवेक रहै किही थान, तिह को हम सु कहो वखान ।।३०३।।

वोल्यो सरल सुनो हो मित्त, कवर विवेक तना विरतत ।
पट्टन पुन्य महा सुविसाल, राज करै विवेक भोपाल ।।३०४।।

दान पुन्य चालै असमान, चोड चवाड नही तिहा थान ।
सहु परजा जिन शासन भक्ति, जुवा आदि विसन सहु भक्ति ।।३०५।।

सुणी बात सहु पंथी तणी, अपनी अंगिसी लाई घणी।
मान देई बुझी पनहार, कौन नगर भासै नर नार ॥३०६॥

कौन धर्म चालै इस थान, तिह को हम सु करो बखान।
तब बोली पटन की नार, बात सुनो हो पथी चार ॥३०७॥

दोष अठारा रहत्त सुदेव, गुरू निर्गुन्थ सु जानो एव।
वाणी सहीत्त जु जिनवर कही, अैसो धर्म नग्र मे सही ॥३०८॥

पांखडी मिथ्याति होई, जान न देई नगर मे सोई।
बात सुनी तव फोरया भेष, लगा देन धर्म को पेष ॥३०९॥

ध्यानी मोनी अति ही भया, तंषिन नगर मध्य चालिया।
बोलै वचन सुमधुरी वांन, कपट रूप धरीयो मन जान ॥३१०॥

दोहा— पिछी कमंडल हाथ ले, भेष दिगम्बर धार।
इर्या पथ बहु सोधता, पहुतां नगर मझार ॥३११॥

चौपई— भोजन काज नगर मे फिरै, तास भेद ले लो संचरैं।
कोटवाल ग्यानी मन धनी, चेष्टा बुरी देखी तिह तनी ॥३१२॥

ग्यांन सुभट चारू बूझिया, भेष दिगम्बर कदि मे लीया।
आया तुहे चोर व्योहार, दीसै नही शुद्ध आचार ॥३१३॥

वचन सुनत्त तब ही खलभल्या, तषिन नग्र मांझ थे चल्या।
भागा दुष्ट डूम पाखड, हूत्या कूड कपट परचड ॥३१४॥

राव विवेक सभा सुभ घणी, कोटवाल आयां तिहां भणी।
स्वामि एह तो जती न होई, कही रावका सेणु जोई ॥३१५॥

सांभली वचन विवेककुमार, कूड कपट बोल्या तिहं बार।
साची बात कही निरताई, झूठ कहू तो लिकपति जाई ॥३१६॥

कूड कपट बोल्या तंपिणां, सुनै वचन विवेक हम तना।
पाप नगर दुप तनो निधान, राजा मोह बसै तिह थान ॥३१७॥

तुम सोधै राजा मोकल्या, विदा लेई तिहां थे चल्या ।
सोध्या देस नगर गढ ग्राम, वहुत कष्ट पायो तुम धाम ॥३१८॥

सेवक जिह् को खाई गरास, सोधो कर रहै तिह पास ।
राजा विदा जिहां नै करै, तिहा गया सेवक ने सरै ॥३१९॥

सुषि विवेक सोच मन राव, मोह दुष्ट को जानै भाव ।
कूड कपट त्तषिन बंधिया, वदीषानै तिहांनै दीया ॥३२०॥

वहुत ग्यानन दीन्हो मान, अधिक वडाई वहु दे दान ।
सभा लोग सहु कीर्ति करै, ग्यान छत्ती चोर न सचरै ॥३२१॥

डंभी पुन्य नगर मे रयो, पाखडी पाप नगर आईयो ।
मोह राव नै कीयो, जुहार, पुन्य नगर भास्यो व्योहार ॥३२२॥

सुणी राजा वीनती हम तणी, विकट नगर अति सोभ घणी ।
नही लगाव तहा हम तणो, पुन्य नगर फिरि दीठो घणो ॥३२३॥

कोटवाल ग्यान तिहा रहै, वात पराये मनकी लहै ।
कूड कपट वाधे तंषिणा तिहठै दुख देखे घणा ॥३२४॥

हम तो भाज आईया ईहां, उभै सुभट तिहठै ही रहा ।
मोह भनै पाखड कुमार, तुज सदा को भाजन हार ॥३२५॥

डभी कने छै वहुत उपाई, समाचार सहु कहमी आई ।
तो लग केतईक दिन गया, पापी नगर डभ आइया ॥३२६॥

मोह राव न कीयो जुहार, कहो पाछेलो सहु व्योहार ।
स्वामि हम तिहा मोकल्या, तिह विवेक कै सोधै चल्या ॥३२७॥

देस घना बूझ्या निरत्ताई, पंथी यक मिल्यो तव आई ।
समाचार व्योरो सहु कह्यो, पुन्यनगर विवेक जु तिहा रह्यो ॥३२८॥

जाई भेटयो देव जिनद, देषि विवेक भयो आनन्द ।
दीन्हा वीडा वस्त्त निधान, पुन्य नगर दीनो शुभ थ्यान ॥३२९॥

वात सही हम पथी कही, दिवेक पुन्य नगर मे सही ।
सुनत सुख उपनो अपार, पहुतो तिहा विवेककुमार ।।३३०।।

कोई दिन वन माही रह्यो, पुन्यनगर मे छल कर लह्यो ।
लीन्हो ग्यान कोटवाल बुलाई, बुझि वात सवै निरताई ।।३३१।।

अणविड लोग जांणा तिहां बार, ले गयो तिहां विवेककुमार ।
कूड कपट तिहांरो पिया, हम तो नगर मांझ ही रह्या ।।३३२।।

भागो पाखड आयो ईहा, हम तो भेद लीयो सहु तिहां ।
दीठा तिहा कोतुहल घणां, दाव धाव विवेक तणां ।।३३३।।

वस्तुवंध

पुन्यपटन वसै सुविसाल, ठाइ ठाइ वहु पुन्य कीजे ।
देव पुज गुरु को विनो, सामाइक पोसो करीजे ।

मन इन्द्री तिहा निरोध कीजे, राखै छह विधि प्रांण ।
वाहिज अंतर तप करै, सुध साध व्योहार सुणीजे ।।३३४।।

दोहा— श्रावक मुनि वहुचितवै महामंत्र नवकार ।
व्यंव पतिष्ठा जिन भवन, खरचै द्रव्य अपार ।।३३५।।

श्रावक जात का वहु कह्या, जेता वृत्त विधान ।
अतिचार बिना करै, मन राखै सुध ध्यान ।।३३६।।

जिनवाणी प्रगटै करै, कथा जे महापुरांन ।
सप्त तत्व नवपद कह्या, सुनो भव्य दे कांन ।।३३७।।

दिन प्रति पुन्य कर घणो, होई पाप को नांस ।
परजा सर्व सुखी रहै, पुन्य नगर को वास ।।३३८।।

मिथ्या द्रष्टी पांच जे, तिहा न सुणीजे नाम ।
चलै दुहाई जिनतणी, देस नगर गढ ग्राम ।।३३९।।

थोडा विणज घणो नफो, श्रावक वहु संतोप ।
मन मे सोई चितवै, जिहैं थे पाजे मोख ।।३४०।।

पुन्य नगर सोभा घणी, राजा तिहा विवेक ।
सक मे माने काहु की, वस्त भडार अनेक ॥३४१॥

भनै इभ सुनि मोहजी, देम तुम्हारै वात ।
द्रव्य परायो लूटजै, कर बिसास सुघात ॥३४२॥

बेटी वेच र द्रव्य ले, सव छत्तीसो पोन ।
लोभ सरव परजा करे, चित न राखै जान ॥३४३॥

कूड कपट चालै घणो, घर न करै सताप ।
असुच किराणा विणजजे, जिह थे उपजै पाप ॥३४४॥

संसो सोग विजोग वहु, परजा करै पुकार ।
आरत रुद्र सदा रहै, न लहै सुख लगार ॥३४५॥

पाप नगर में जे वसै, ते ता सर्प समान
इभ वात सगली कही, मोह सुनो दे कान ॥३४६॥

चौपई— राजा मोह सुन्यो विरतत, राव विवेक तणी सहुवात ।
कहे विवेक सुनो सहु कोई, मोह हमारो वैरी होई ॥३४७॥

हम तो मोह काम दुख दीयो, तिह को वर्णन जाई न कह्यो ।
तुहे पाच मिलि कीयो विचार, जिह थे होई भलो व्योहार ॥३४८॥

पाच भणै विवेकजी, सुनो जै कारज सारो आपनो ।
जिनवर पास वेग तुम जाहु, सजम स्त्री सु कीज्यो व्याहु ॥३४९॥

मुनिवर पद लह महा सुचग, जिहथे वडा महल उत्तग ।
पाछैं मोह सु माडो राड, लूटदेस सहु करो उजाड ॥३५०॥

मन राजा पिता वस कीरयो, सुभ ध्यान हीवडा मे धरो ।
मदन मोह ईम मारो राई, काची व्याधि टुटी सब जाई ॥३५१॥

सभा विवेक चली इह वात, हम तुम सु भासु विरतात ।
भलो होई तिम करो नरेस, तुम सुख लहो वसै सहु देस ॥३५२॥

कहै डभ सुन मोह विचार, सुने विवेक तनो परवार ।
राव विवेक भयो वैराग, मुक्त तनो सुख जाण्यौ मार्ग ।।३५३।।

रानी सुमति तास गुनवत, अरध सिघासन सोभै सत ।
वडो कवर सोभै वैराग, दूजो सजम मोडै भाग ।।३५४।।

सोभै तीजो कवर विचार, बाल मित्र आनद अपार ।
मत्री करणा पुत्री तास, दूजि मुढित्ता वहुत विकास ।।३५५।।

बडो सुभट समिकत परधान, सव ही सभा चतुराई जांन ।
तिह का सेवग अति बलचड, उपसम विनवै सरल प्रचड ।।३५६।।

द्वादस तप सतोष समान, सैन्या सोभै अति असमान ।
छत्र वर्ण्यौ गुरू को उपदेस, सति सिघासन तासु नरेस ।।३५७।।

सिद्धि वुधि सुंदर अनिनार, सोभै चवर ढलावण हार ।
सील सनाह आगम व्योहार, क्रीया कपाल, अन्न कोठार ।।३५८।।

सप्त तत्व शुभ राज विभूति, पालै चतुर चिहु दिसि हुती ।
राज करै विवेक भोवाल, सुख मै जात न जानै काल ।।३५९।।

कही बिवेक विभूति विचार, डंभ कहै मोह सुंनिहार ।
साभलि मोह डभ की वात, विसमै भयो पसीनो गात ।।३६०।।

राजा मोह कोपर कहै, मुझ आगे विवेक किम रहै ।
तिह मैं वन सिंध सु ईछा फिरै, तिह वनगज कैसें संचरै ।।३६१।।

जैठे सूर करै प्रगास, तारा तनो नही तिहा बास ।
मोह तनो वैरी जो होई, जीवत फिरतौ न सुणी कोई ।।३६२।।

मोह महा जिह कोहसाल, तिहैं को आयो वेगो काल ।
मुझ सम लीव नंही कोई जान, तीन लोक फिरि मोह आन ।।३६३।।

वहु सेन्या ले उपर चल्यो, जीवत विवेक सत्रु पाकडो ।
मकरधुज सुनि ठाढो भयो, देख्यौ पिता हमारो कीयो ।।३६४।।

आनु व्याधि विवेक गुलाब, वहुत दीवस न खालूं माम ।
साभलि पुत्र मोह की वात, तिव ही वहुत उल्हास्यौ गात ॥३६६॥

मोह भनै सुनि मदन कुमार, तेरो ठांम नही व्यौहार ।
नीद भूष तिस जाई न सही, वय वालक तुम जुग तो नही ॥३६६॥

मदन कुमार पितासुं कहै, मेरा बल को भेदन लहै ।
बालक सप्प डसैं सुफुरत, तिह को खायो ततषिन मरत ॥३६७॥

बालक रवि तिहां उदौ कराई, अधकार सहु जाई पुलाई ।
अष्टापद को होई जवाल, ते जानज्यो सिंघ को काल ॥३६८॥

सांभलि बचन मोह सुख भयो, पुत्र हाथ कर वीडो दयौ ।
मदन बचन तेरा परमान, सेन्या ले चालो असमान ॥३६६॥

कटक एक ठोकरि तपिना, अजस दमांमा वाजैं घनां ।
मोह पिता का बंधा पाई, मदन विवेक जीतबा जाई ॥३७०॥

× × × × × × × ×

अंतिम पाठ

मूलसंघ जुग तारन हार, सरव गछ गरवो आचार ।
सकलकीर्ति मुनिवर गुनवत, तास माही गुन लही न अंत ॥६४१॥

तिह को अमृत नाव अति चंग रतनकीरत मुनि गुणा अभंग ।
अनन्तकीर्ति तास सिष्य जान, वोलै मुख थे अमृत वान ॥६४२॥

तास सिष्य जिन चरणालीन, ब्रह्म राइमल वुधि को हीन ।
भाव भेद तिहा थोडौ लह्यौ, परमहंस की चौपई कह्यौ ॥६४३॥

अधिको वोछो आन्यो भाव, तिह को पंडित करो पसाव ।
सदी हुई सन्यासा मर्ण, मव भव धर्म जिनेसुर सर्ण ॥६४४॥

सोलासैं छत्तीस वर्षान, जेष्ट सावली तेरसजान ।
सोभै वार सनीसर वार, ग्रह नक्षत्र योग सुभसार ॥६४५॥

देस भलो तिह नागर चाल तक्षिकगढ अति वण्यौ विसाल।
सोभै वाडीनाग सुचग, कूप वावडी निर्मल भंग ॥६३६ ॥

चहुं दिसी वन्या अधिक बाजार भस्या पटंवर मोहती हार।
जिन चैत्याला वहुत्त उतंग, चंदवा तोरन धुजा सुचग ॥६४७॥

श्रावक लोक वसै धनवंत, पूजा करै जपै अरिहत्त ।
उपरा उपरी वैरनै कास, जिम अह मदिर सुरग निवास ॥६४८॥

राज करै राजा जगन्नाथ दान देत नवी खेचै हाथ।
पदरासै पैंतीस सार पारसनाह मंदिर विसतार ॥६४९॥

खंडेलवाल छावडा गोत, चाहडै सगही वहु पुन्यवत ।
दान पुण्य साला अतिसार खरचै द्रव्य वहुत अपार ॥६५०॥

श्रावक पुन्य उपावै घनो लाभ लीयो वहु मीतनो ।
जो लग सुर चन्द्रमा अंस, नादो विरधो चाहड बंस ॥६५१॥

जो लग धरती सुभ आकास तो लग तीष्टौ टोडो वास।
राजा परजा तिष्टौ चंग, जिन सासन को धर्म अभग ॥६५२॥

इति श्री परमहंस चौपई ब्रह्म राइमल कृत सपूर्ण।

सुम भवतु कल्यांनमस्तु, पौथी ब्रह्मजी सीवसागर जी पठानार्थ लिखन्त पडित दयाचन्द सारोला मध्य संवत् १८४४ वर्षे कातिक स्याम तिथौ ९ सनीसरवारे मध्याह्न वेलायां।

———



श्रीपाल रास । रचना काल—संवत् १६३० अपाढ़ शुक्ला १३ । पद्य संख्या २९८ । लेखन काल सवत् १८वी शताब्दि । प्राप्ति स्थान–महावीर भवन; जयपुर ।

मंगलाचरण

हो स्वामी प्रणमौ आदि जिणद, वंदौ अजित दोइ अति चग ।
सभौ वंदौ जुगतिस्यौ, हो अभिनंदन का प्रणउ पाइ ।
सुमति नमौ स्वामी सुमति दे, हो पदमप्रभ प्रणमौ बहु भाइ ।
रास भणौं सिरीपाल कौ ।।१।।

हो काया मन वच नमौ सुपास. चन्द्रप्रभ सब पुग्वौ आस ।
पुहपदंत प्रणमौ सदा, हो नमौ जुगतिस्यौ सीतल देव ।
श्रीपास प्रणमौ सदा, हो वासुपूजि वंदौ वर वीर ।।२।।

हो विमलनाथ प्रणमौ करि भाव, नमौ अनन्तसुति भुवन राव ।
धरमनाथ जिन वदिस्यौ, हो साति नमत मनि होई विकास ।।
कुथ जिनेस्वर वदिस्यौ, हो अरह नमत सहु तूटै पाप ।।
रास भणौ ।।३।।

हो मल्लि नमौ जगि त्रिभुवनसार, सुव्रत नमत होइ भव पार ।
नमि प्रणमौ इकिससै, हो नेमिनाथ वंदौ गिरनारि ।
पासणाह जिण वदिस्या, हो नमौ वीर उतरीउ भव पार ।।४।।

हो सारदमाता नमौ मन लाइ, करि प्रकास मति त्रिभुवन माइ ।
कोडीभड गुण विस्तरौ, हो सिद्धचक्र व्रत कीनौ सार ।
कोढ कलेस सदै गये, हो अति पहुतौ भव पार ।।५।।

तिहुउण नव कोडि मुणिंद, प्रणमौं स्वामी करि आणद ।
तिरिइण वंत जे कह्या, हो भवि जिन तारन नाव समान ।
काटि कर्म सिव पुरि गया, हो वचन जिनेसर करि परमान ।।६।।

हो देव सास्त्र गुरू वधा भाइ, वुधि होइ तुम तनो पसाइ ।
कुमति कले सन उपजो, हो मैना सुदरी सुभ श्रीपाल ।
सिद्ध चक्र व्रत सेवियो, हो कोडि गुणी करि पूज विसाय ।।७।।

हो जवू दीप अतिकरै विकास, दीप असख्या फिरिया चहु पास ।
लूण समदस्यो वेढीयो, हो जोजन लाख तणौं विस्तार ।
मेरू मधि अति सोभिता, हो भोग भूमि गिरि नदी अपार ।।८।।

राजा पहुपाल एवं उनका परिवार

हो दक्षण दिशा मेरू की जाणि, भरथ क्षेत्र अति नीकै ठाणि ।
देश ग्राम पट्टण घणा, हो तिह मैं मालव देस विसाल ।
उजेणी नग्री भली, राज करै राजा पुहपाल ।।रास।।९।।

हो पट्ट तीया तस सुंदर माल, सामोद्रिक गुण वणी विशाल ।
अपछरा सारिखी. हो पुत्री दोइ तासु घरि जाणि ।
सुरसुदरि जेट्ठी सही, हो मैणासुदरि शील सुजाणि ।।रास।।१०।।

हो एकै दिनि राजा पुहपाल, सुर सुदरी घाली चटसाल ।
सोम विप्र आगै भणै हो देव शास्त्र गुरू लहै न भेद ।
पढि पुराण मिथ्यात का, हो जह थे पट् काया को छेद ।।रास।।११।।

हो तर्क शास्त्र पढिया वहु भाय पढत पढत व्याकरण जाय ।
समरित सहित वहु भण्या हो तहि थे होइ जीव की घात ।
मत मिथ्यात पदेश दे, हो जाणै नही जैनि की वात ।।रास।।१२।।

हो लहुडी मैणासुंदरि जाणि, देव शास्त्र गुरू राखै मान ।
समधर मुनि आगै भणै, हो कर्म्म आठ तेशो अठताल ।
भाव भेद जाण्या सवै, हो आस्रव कर्म जीवनो काल ।।रास।।१३।।

सुरसुंदरी से इच्छित वर के बारे मे पूछना

हो एकै दिनि राजा पुहपाल, सुर सुदरी साज्यो वनवाल ।
देख विचारै चित मैं, हो पुत्रीस्यौं जपै करि भाव ।
मन वांछित हमस्यो कहो, हो सो तुमनै हु व्याहै राउ ।।रास।।१४।।

सुरसुन्दरी का उत्तर

हो सुंदरि बोली सुणि तात, तुम्हस्यौ कहुं चित्त की वात ।
नागछत्र पुर राजई, हो तिहस्यौं मेरौ करिजे व्याहु ।
घणी वात कहणी नही, हो तहि उपरि मेरौ बहु भाउ ।।रास।१५।

विवाह हो सुणि राजा सो राउ बुलाइ, सुरसुंदरि तसु दीन्ही व्याहि ।
अस्व हस्ती बहु डाइजैं, हो वस्त्र पटवर बहु आभर्ण ।
दासी दास दीया घणा हो, मणि माणिक जड्या सोवर्ण ।।रास।१६।।

मैनासुन्दरी से इच्छित वर के लिये पूछना

हो एकै दिनि मैणासुंदरि, आठ द्रव्य ले थाली भरी ।
जिणवर पूजण सा चली, हो पूज्या जिण श्रुत गुरू मन लाइ ।
जिणवाणी गुरू मुख सुणी, हो हरप तासु कै अगिन माइ ।।रास।१७।।

हो फूलमाल गधोदक लेई, आण्यौ घरां पितानै देइ ।
लेहु पिता सुत आसिका, हो राजा गधोदक सुभ वंदि ।
लइ आसिका भगतिस्यो, हो मन वच काय बहुत आनादि ।।रास।१८।।

मैनासुंदरी का उत्तर

हो लघु पुत्रीस्यौं जपै राउ, हो व्याही वर जाकौ होइ भाइ ।
सुता बात कहि मन तणी, हो मैणासुंदरी जंपै तात ।
वचन अजुगता तुम्ह कह्या, हो कर्म लिख्यौ सो मिलिसी कत ।।रास।१६।।

हो सुभ अरू असुभ कर्म कै बधि, धरि ले जाइ जीव नै कंधि ।
रावण हारो को नहीं, हो पिता मात वधै जसु वाह ।
कुल कन्या तहिनै वरै, करै स्नेह जिम देहरू छाह ।।रास।।२०।।

हो जीव कर्म कै भयो सुभाइ, कर्म वन्ध्यो चहुं गति जाइ ।
जीव तणौ वल को नहीं, हो जीव विचारै अपौ जाइ ।
सकलप विकलप सहु तजौ, हो निर्जरि कर्म मुकति पद होइ ।।२१।।

हो मनवंछित वर वेस्या लेइ, ते सुख महा नरक पद देइ ।
कुल कन्या इछै नहीं, हो सुभ अरु असुभ कर्म कै भाइ ।
वावै जिसो तिसौ लुणै, हो अंति कालि तैसा फल खाइ ।।रास।२२।।

पिता का क्रोधित होना तथा अपनी इच्छानुसार विवाह करने का निश्चय करना

हो हीए कोप करि सुंदरि तात, पुत्री हो राली मेरी दात ।
देखौ कर्म किसौ फलौ, हो गलत कोढ़ होइ जाकौ अंग ।
मैणा सुंदरि व्याहिस्यौ, हो कर्म सुता कौ देखौं रग ।।रास।२३।।

हो राजा मन मे मतौ उपाइ, ऐकै दिनि वन क्रीड़ा जाइ ।
सिरीपाल तहि देखियो, हो रक्षक अंग सातसै साथ ।
कोढ़ अट्ठारा पुरिया, हो तुरंग वाल का पीछी हाथि ।।रास।।२४।।

हो वहरी व्यौंची कोढ कुजाति, खसरौ कंडू ते वहु भाँति ।
सीइल पथरी वोदरी, हो वडौ वाउ जहि वैसै नाक ।
कोढ मसूरि उजाणि जे, हो वैहै गलै वकै जिम काक ।।२५।।

हो कोढ उदंवर सेत सरीर, दाद कोढ अति दु.ख गहीर ।
खुसन्यौ वाल रहे नहीं, हो चांदी कोढ़ उपजै माल ।
गलत कोढ़ अंगुलि चुवै, हो निकलै हाड उपडै खाल ।।२६।।

हो इहि विधि कोढ रह्या भरपूरि, कोढी एक वजावै तूर ।
एक संख धुनि उच्चरै, हो वावै इक सीगी असमान ।
एक वजावै कौ दरौ, हो एक देइ वरगू की ताल ।।रास।२७।।

हो कोढी एक छत्र सिरिताणि, कोढी गाइ न विड्द वखाणि ।
इक न कीव कोढी घणा, हो लाठी करि ले कोढी रंक ।
मार मार धुनि उच्चैर, हो करै न नीच कहुं की सक ।।२८।।

हो इह विधि कोढी वहु विकराल, वेसर चढिउ राउ सिरिपाल ।
आवत राजा देखयो, हो मन माहै अति करै विचार ।
पुत्री इहनै व्याहिस्यौ हो, देखौ कर्म तणौ व्योहार ।।२९।।

हो तव मत्रीस्यौ बोल्यो राउ, इहतै देहु रहणनें हाउ ।
वर सुंदरि आइयौ, हो वन माहै छे भानी सराइ ।
मंत्री कहिए सुभटस्यौ, हो डेरौ तासु मैं आइ ।।३०।।

हो राउ बचन सुणि मंत्री गयो, सिरीपालस्यौ तिहि वीनयो ।
विनौ भगति भासीयो घणौ हो देइ उतारौ मंत्री जाइ ।
राजास्यौं वीनतो करै, हो असौ बुझतौ होइन राइ ।।३१।।

हो कहूं कह्यो रावल मैं जाइ, हो भयो सोक अति नाज न खाइ ।
राजा की मति सहु गइ, हो कोढी नै किम सुंदरि दैई ।
अपजस जग मै विस्तरै, हो असा कर्म न नीच करेइ ।।३२।।

हो भणै मत्री सुणि राउ विचार, काग गलै किम सौभै हार ।
वात अजुगती तुम करौ, हो कहा मैणासुंदरि सुकमाल ।।
कहां कोढीवर तुम्ह जोडयो, हो राहुचद्र पढतर भोवाल ।३३।।

हो सुण्या वचन जपै पहुपाल राज विभूति भली सिरीपाल ।
राजा कै घोडा घणा, हो इहकै वेसर गदहा आथि ।
राजा कै सेवक घणा, हो कोढी कै भला सात सै साथि ।।३४।।

श्रीपाल के साथ विवाह

हो लगन महूरत वेगि लिखाइ, वेदी मंडप सोभा लाइ ।
वस्त्र पटवर ताणिया, हो वर कन्या नै तेल चहोडि ।
सोल सिंगार जु साजिया, हो बैठा वेदी अचल जोडि ।।३५।।

हो वांभण भणै वेद झणकार, कामिणी गावै गीत सुचार ।
भाट भणै विडदावली, हो वर कन्या देखे नृप रूप ।
मनि पछितावा बहु करै, हो मैं पापी अति करी विरूप ।।३६।।

हो असा कर्म नीच नवि करै, हो देख रूप छिप आसू भरै ।
दीसै कर्म विटवना हो, कर्म राम राउण करि छार ।
हरि हर बह्म क्टिविया, हो कर्म किया कैरौं सिंघार ।।३७।।



कर्म जोगि मेरी मति चली, दीसे कोन कर्म थे वलो ।
पंडि गहि मूरख करैं, हो छती वस्त कौ करे विजोग ।
दूरि वस्त पैदा करैं, हो ए सहुकर्म तणा संयोग ।।३८।।

हो कोढी उपणौ कौंण सुदेस, कहां उजेणी भयो प्रवेस ।
कर्म जोग हमनै मिल्यो, हो कोढी सुंदरि भयो विवाहु ।
समुद्रि सिमल जुडौ मिलै, हो तिम इहु भयौ कर्म कौ भाउ ।।रास।।३६।।

हो दीयो डाइजो अधिक सुचार, घोडा हस्ती कनक अपार ।
दासी दास दीया घणा, हो छत्र पालिक्री वहुत जडाउ ।
नगरी वाहरि घर दीया, हो सीरीपाल सुंदरि उछाहु ।।रास।४०।।

हो अंगरक्ष जेता था साथ, दान मान दे जोड्या हाथ ।
जानी सहु संतोषीया, हो भइ नफेरी नाद निसाण ।
विदा करी सीरीपाल को, हो ले आयो सुंदरि निज थान ।।रास।४१।।

हो सुंदरि वात कर्म परिथरै, सिरीपाल की सेवा करै ।
मन अडोल राखै सदा, हो देव गुरु की भक्ति करेइ ।
मत मिथ्यात तज्यौ सवै, हो धर्म कुधर्म परीक्षा लेइ ।।रास।४२।।

मैंदासुन्दरी द्वारा जिन पूजा करना

हो एकै दिनि पिय नै ले साथ, गइ जिणालै जगनाथ ।
देव शास्त्र गुरु वदिया, हो जिणवर चरण पूज करेइ
आठ द्रव्य लीया भला, हो मन वच काया भाउ करेइ ।।रास।४३।।

मुनिराज से कोढ दूर होने का उपाय पूछना

हो पाछै गुरु का पूज्या पाउ, सिरीपाल ले वैठी आइ ।
हाथ जोडि गुरुस्यौं, भणो, हो स्वामी कर्म कंत कै जोग ।
कोड उदंबर उपनौ हो, करि उपगार जाइ सहु रोग ।।रास।४४।।

मुनिराज का उत्तर

हो मुनिवर भणै सुंदरी सुणौं जीव कर्म भुजै आपणो ।
वावै जिसौ तीसौ लुणौ, हो जिनवर धर्म एक आधार ।
चहु गति प्राणी वुडतौ हो, नाव समान उतारण पार ।।रास।४५।।

हो धर्म सरावक जती कौ सुणौ, श्रावक धर्म सुर्ग सुख घणौ ।
जती धर्म शिवपुरि लहै, हो आठ मूल गुणस्यौं समत ।
बारह व्रत अति निर्मला, हो ते पालै करि सुधौ चित ।।४६।।

दोष अठारा रहितसु देव, गुरू निरगंथ सुजाणीए ।
वाणी जिणमुख नीसरी हो एता कौ दिढ निश्चौ करै ।
सकलप विकलय सहु तजै, हो मत मिथ्यात सबै परिहरे ।।४७।।

हो सुणी बात हरष्या भया, हो समकित सुद व्रत सहु लया ।
धर्म जिणेंसुर कौ सही, हो मैणा सुंदरि जपै तात ।
व्रत भलौं उपदेस द्यो, हो जहि थे होइ रोग की घात ।।४८।।

हो मुनिवर बोलै सुणौ कुमारि, सिद्धचक्र गरुऔ ससारि ।
सिद्धचक्र व्रत तुम्ह करौ, हो आठ दिवस पूजो मनलाइ ।
आठ द्रव्य ले निर्मला, हो कोढ कलेस व्याधि सहु जाइ ।।४९।।

हो सुण्या वचन व्रत ले बहु भाइ, हो भयो हरष अति अगि न माई ।
मुनी वंदि घरि आइया, हो करे सनान लए भरि नीर ।
कूंकू चदन बावना, हो पहरे महा पट्टवर वीर ।।रास ५०।।

सिद्धचक्र की पूजा करना

हो सिद्धचक्र थाली लिखि जत्र, वीजा अक्षर निर्मल मत्र ।
पंचामृत रस आणीया, हो जिण चौवीस न्हावण करेइ ।
आठ द्रव्य जिण पूजिया, हो भाउ भगति पुहपाजलि देइ ।।५१।।

हो सित आठै फागुन दिन सार, सिद्धचक्र को रच्यौ विथार ।
बावन कोठा माडलौ, हो जिणवर विंव मेलि चहु पास ।
आठ भेद पूजा करी, हो केसरि मध्य कपूर सुवास ।।५२।।

हो आठौ दिवसि पूज अति रग, चदन पहुप लगाए अग ।
अगरक्ष सिरीपालस्यौ हो जिण गधोदक सीचि सरीर ।
असि आऊसा मत्र जपि, हो ब्रह्मचर्य पालै वरवीर ।।५३।।

हो नवमी दीनि दस गुणी विचार, जिण पूजा करि अधिक सुचार।
अनोक्रमि पहलै करी, हो दशमी दिनि सौ गुणौ पसार।
चदन गधोदक लया, दो देह सुभट लावै अतिसार ॥५४॥

हो ग्यारसि दिनि सहस गुणी जाणि, जिणवर पूज पुण्य की खानि।
चदन अग लगाइयो, हो दस सहस वारसि विस्तार।
तेरसि लाख गुणी कही, हो पूजा करै रोग सहु छार ॥५५॥

हो पूजा लाख दस गुणी जाणि, चौदसि दिनि पहलै परमाणि।
कोडि गुणी पून्यो कही, आठ दिवस वाजित्रा दान।
नृपि करै बहु कामिनी हो, गावै जिणगुण सरलै साद ॥५६॥

कुष्ठ रोग का दूर होना

हो आठ दिवस करि पूजा रली, गयो कोढ जिम अहि कचुली।
कामदेव काया भइ, हो अगरक्ष राजा सिरीपाल।
सिद्धचक्र पूजा करी, हो राग सोग नवि व्यापै काल ॥५७॥

हो देवशास्त्र गुरू करि वदना, सिरीपाल सुंदरि तक्षणा।
साथि अगरक्षक सातसै, हो करि पूजा आया निज थान।
दुर्बल दुखीति पोषया, हो पात्र तिनि चहु विधि दे दान ॥५८॥

हो सुंदरि वर राजा सिरीपाल, सुख मैं जातन जाणौ काल।
इद्र जेम सुख भोगवै, हो देव सास्त्र गुरू को अति भक्त।
मल मिथ्यात न मरदहै, हो दुराचार विस्न सहु तित्त ॥५९॥

हो सिद्धचक्र पूजा करि सार, द्वारापेषण दान अहार।
पछै आप भोजन करै, हो पर कामिनी देखै निज मात।
सत्य वचन बोलै सदा, हो तरस जीउ कौ करै न घात ॥६०॥

हो द्रव्य परायो लेइ न जाण, परिगह तणौ करै परमाण।
करै अणुव्रत भावना हो, गुणव्रत तीन्यौ पालै सार।
सामाइक पोसौ करै, हो अतिथिभाग सलेखन चार ॥६१॥

हो इहि विधि काल गमैं दिन राति, चौरासी लख जीवह जाति ।
मन वच काइ क्षमा करै, हो जस बोलै वदी जन घणा ।
धर्म कथा मैं दिन गमैं, हो धीर चित्त राखै आपणो ।।६२।।

माता से मिलन

हो पुत्र गए सैं कुंदामाइ, आई सीरीपाल कै ठाइ ।
कोडीभड माता मिल्यो, हो मैंणासुदरि वदै सासु ।
वस्त्र कनक दीन्हा घणा, हो मनि हरषी अति भयो विकास ।।६३।।

हो भोजन भगति करी वहु भाई, वूझी बात सवै निरताइ ।
नग्र देस कुल पाछिलो, हो सासू कही वहूस्यो बात ।
सहु सनवध जु पाछिलो, हो सुण्यो सुंदरी हरस्यो गात ।।६४।।

पुहपाल द्वारा श्रीपाल को देखना

हो एकै दिनि राजा वन गयो, सुदरि सहित सुभट देखीयो ।
मन मैं चिन्ता उपनी, हो कौण पुरषि इहु पुत्री थान ।
बात अजुगती अति भई, हो राजा कै मनि भयो गुमान ।।६५।।

हो राजा मुख विलखौ देखियो, अभिप्राय मैंत्री लेखियो ।
हाथ जोडि विनती करै, हो स्वामी सुदरि शील सुजाणि ।
पुरष जवाइ तुम्ह तणौ, हो गयो कोढ पुण्य कै प्रमाणि ।।६६।।

हो सुणी बात मनि भयो विकास, गयो वेग पुत्री कै पास ।
उठि कोडिभड भेटियो, हो सुदरि आइ तात वदियो ।
राजा पुत्रीस्यों भणै, हो सुभ को उदो कर्म तुम दियो ।।६७।।

हो भणै राउ सिरीपाल सुणहि, आधो राज उजेणी लेहि ।
हम उपरि किरपा करो, हो कोडीभड जपै सुणि माम ।
राज भोगऊ आपणो हो, हमनै नहीं राजस्यो काम ।।६८।।

हो राजा दीना वस्त्र जडाउ, विनो भगति करि निर्मल भाउ ।
पुत्री पुरिप सतोपीया हो, भयो हरष अति अगि न माइ ।
कर्म सुता को परखीयो, हो तक्षण गयो आपणै ठाइ ।।६९।।

हो तीया सहित राजा सिरीपाल, सुख मै जातन जाणै काल ।
पर्व चारि पोसौ करे, हो जस बोलै वदी जन घणौ ।
पिता नाउ कोइन ले, नाम लेहू सब ससुरा तणौ ॥७०॥

हो सुण दुख पावै श्रीपाल, पिता नाम कौ भयौ प्रजाल ।
नाम ससुर कै जाणिज्यौ, हो धन कलत्रस्यौ नाही कान ।
पिता न्यास कौ ना सहै, हो नग्र उजेणी छोडौ वास ॥७१॥

हो देखो विलख वदन सुन्दरी, भणै कंतस्यौ चिंता भरी ।
स्वामि बात कही मन तणी, चिंता कवण विलख मुख एहु ।
सहु सरीर दुर्बल भयो, हो कहौ बात जिम जाइ संदेहु ॥७२॥

हो भणै सुभट सुणि सुंदरि बात, जहि चिंता वे दुर्बल गात ।
नग्र उजेणी थे चलौं, हो रत्नदीप सुभ देखौं जाइ ।
द्रव्य आणिस्यौ अति घणो, हो दान पुण्य खरचौ मन लाइ ॥७३॥

हो मैणासुंदरि जपै कंत, तुम्ह विणु इक क्षण रहै न चित्त ।
साथि लेइ हमनै चलौ, हो तव कोडीभड हसि उच्चरै ॥
फल लागा जै राम नै, हो साथि सियानै लियो फिरै ॥७४॥

हो मैणासुन्दरि जपै कत, स्वामी अवधि करौ परमाण ।
ते दिन हमस्यौ बीनउ, हो भणै सुभट सुंदरी सुजाणि ।
वरप बारहै आइयौ, हो वचन हमारा निश्चै जाणि ॥७५॥

हो सुंदरि सीख देइ सुणि कंत, नाम राखि जे मनि अरहंत ।
सत्य वचन अरहंत का, हो गुरु वदिज्यौं महा निरगंथ ।
सिद्धचक्र व्रत सेविज्यौं, हो सजम शील चालिज्यौं पंथ ॥७६॥

हो दुराचारि दासी कूढणी, मसवासी मिथ्या दृष्टिणी ।
वेस्या परकामिणि तजी, हो पुरुप परायौ जो आचरै ।
सावधान रहिज्यौ सदा, हो भूलि विसास तासु मत करै ॥७७॥

हो घणो कह्या करिजे आलाप, उपजै बुद्धि सकोज्यो आप ।
माता नैं मत वसिरी हो हमस्यो स्नेह तजै मत कंत ।
धर्म जिणेसर समरिज्यो, हो दिन पूजा कीजो अरहंत ।।७८।।

हो कोडीभड वोल्यो सुंदरी, माता की वहु सेवा करी ।
अगरक्ष जे सात सैं, हो भोजन वस्त्र देइ वहु भाइ ।
विनो भक्ति कीजै घणो, हो पूजा दान करी मन लाइ ।।७९।।

हो माता चरण वदि वरवीर, चल्यो दीप नैं साहुस धीर ।
मन माहै संका नहीं, हो लंघि देस वन गिरि नदि खाल ।
सागर तट्ट ट्ठाढो भयो, हो भृगकछ पटण सुविसाल ।।८०।।

हो धवल सेठि तह सारथ वाहु, प्रोहण पूरि पचसै साहु ।
रत्नदीप ने गम कीयो, हो पोत न चलै कर्म कै भाइ ।
निमित ज्ञान मुनि वुझीयो, लक्षण सहित नर ठेल्या जाइ ।।८१।।

हो सेट्ठि भणै नर ल्याऊ जोइ, लक्षण अगि वतीस जु होइ ।
वणिक पुत्र लेवा गया, हो कोटीभड दीठो वरवीर ।
हीए हरष उपनो घणो, हो वोल्या वणिक सुणो हो धीर ।।८२।।

हो धवल सेठि तहा वेगा चलो, सीझै काम होइ सहु भलो ।
रत्नदीप प्रोहण चलै हो, सिरीपाल मन चितै वात ।
रत्नदीप हम जाइवो, हो आयो वणिक पुत्र कै साथ ।।८३।।

हो देखि सेठि मन हरखो भयो, वस्त्र दान कंचन वहु दीयो ।
कोडीभडस्यों वीनवै, हो पोत समूह ठेल्हि वरवीर ।
सेवा मागो आपणी, हो तुम्ह प्रसादि उत्तरो जल तीर ।।८४।।

हो भासै सुभट सेट्ठि साभलो, सुभट सहस दस सको जीवलो ।
एतो हमनै देइज्यो, हो वणिक भणै मागो निरताइ ।
वाव आजुगती तुम कही, हो भूपै दइकै दीन्हा जाइ ।।८५।।

हो भणै सुभट सेट्ठि जी सुणो, कारिज सारो तुम्ह तणो।
सेवा दीज्यो हम तणी, हो गाइ गलै जे घटा होइ।
मोल करै सव दूध को, हो एहु वात जाणै सहु कोई ॥८६।

हो नाम पच परमेट्ठी लीया, कोडीभड प्रोहण ठेलिया।
जाणि गगन तारा चल्या, हो लोह टोपरी सिरह धराइ।
धीमर जतन करै घणो, हो न तु मेरंड पक्ष लै जाइ ॥८७॥

जव प्रोहण आ घेरी चल्या, लाख चोर पापी विच मिल्या।
लागा आइ परोहण, हो धवल सेठि तव सन्मुख गयो।
सुभट लडाइ वहु करै, हो भागा कातर को नवि रह्यो ॥८८॥

हो धवल सेठि रण जाइ न सह्यो, चोरा सेठि वंधि करि लयो।
सुभट लडाइ हारीया, हो कोडीभडस्यो करी पुकार।
सेट्ठि वधि प्रोहण लया, हो वीर अवै क्यो करि उपगार ॥८९॥

हो लेइ धनष चल्यो सरीपाल, वाण वृष्टि वरसै असराल।
कोडीभड रणि आगलो, हो भागा कहां छुटिस्यो नीच।
हो आइ सही तुम्हारी मीच, रास भणो सिरीपाल को ॥९०॥

हो चोरां बण रालि सहु भाडि, सिरीपालस्यो मांडी राडि।
कोडीभड रण जीतियो, हो उपरो उपरी चोर बधाइ।
सेट्ठि परोहण आंणिया, हो जीत्या सत्र निसाण बजाइ ॥९१॥

हो छोडा चोर विनो वहु कीयो, दया भाउ करि भोजन दीयो।
मन वच काय क्षमा करी, हो हाथ जाडि बोल्या सहु चोर
तुम समान उत्तम नही हो हम पापी लोभी घण घोर ॥९२॥

हो सात परोहण लिहु वरवीर, मधि वस्त अति गहर गहीर।
तुम ये सेवा चूक छा, हो वहुडि सेठिस्यो करि व्यापार।
आप दिसावर की लइ, हो उपरा उपरी स्नेह सुधार ॥९३॥

हो सीरीपाल बध्यो बहु भाउ, पहुंता चोर आपणै ठाइ ।
रली रंग विड हरि भया, हो सेट्ठि सुभट नै दीनौ मान ।
इहु उपगार न बीसरौ, हो हमनै दीयौ जीउ कौ दान ॥९४॥

हो वस्त्र कनक दीना करि भाउ, बोल्यौ धवल विनौ करि साहु ।
धर्मपुत्र छौ हम तणा, हो सेना सत्र करौ सत खड ॥९५॥

दोहडा—कोटपाल वणिवर कह्यो, नाइ सुइ सुनाइ ।
एता मित्र जुतौ करौ, जै होइ सर्व सधार ॥९६॥

हो वधी धुजा बहुत विस्तारि, चल्या परोहण समदम झारि ।
कर्म जोग्य नट गहुतियो, हो दीट्ठौ रत्नदीप सुभ ठाइ ।
सहसकूट तहा सोभितौ, हो ताकी महमा कही न जाइ ॥९७॥

हो प्रोहण थे उत्तरीउ सिरीपाल, गयो जहा जिण भवण विसाल ।
गुरू पै लीनी आखडी, हो देखौ जहा जिणेसुर थान ।
देव पूजि भोजन करौ, हो मनुष्य जन्म को फल परमाण ॥९८॥

हो सहसकूट सोभा वहु भाति बध्यो पीठ चन्द्रमणि कान्ति ।
कनक थभ चहु दिसी वण्या, हो पचवर्ण मणि वेदी जडिउ ।
सिला सिंघासणि सोभितौ, हो जाणि विधाता आपण घडिउ ॥९९॥

हो पदमराग मणि आवलसार, पाचि पना विचि विचि विस्तार ।
कनक कलस सिखरा ठ्यो, हो उछलै धुजा अधिक आकाश ।
दीट्ठी सोभा अति घणी, हो सिरीपाल मनि भयो विकास ॥१००॥

हो व्रज कपाट जड्या सुभ दीठ, मधि भूमि जिण विंव बइट्ठ ।
तक्षण करस्यौ ट्टुलीयो, हो आगलि तूठि उघडिउ द्वार ।
जिण प्रतिमा देखी भली हो पुहुतौ मधि कीयौ जै कार ॥१०१॥

हो परदक्षणा दइ तिंहु वार, गुण ग्राम पढि अधिक विथार ।
भाव भगति जिण वदीया, हो करि स्नान पहने सुभ चीर ।
जिण चरण पूजा करी, हो झारी हाथ लइ भरि नीर ॥१०२॥

हो जल चदन अक्षत सुभ माल, नेवज दीप धूप भरी थाल ।
नालिकेर फल वहु लीया, हो पहुपाजलि रचि जोड्या हाथ ।
जिणवर गुण भास्या घणा, हो जैजै स्वामी त्रिभुवन नाथ ॥१०३॥

हो जिणवर चरण पूजि वहुभाइ वदि जिणेसुर विड हरि जाइ ।
विद्याधर इक आइयो, हो सिरीपालस्यो जपै ताम ।
हम उपरि किरपा करी, हो मन वाछित सहु पूगे काम ॥१०४॥

हो सिरीपाल बुझै करि मान, कौण नाम तुम्ह कौण सुथान ।
कौण काजु हमस्यौं कहो, हो विद्याधर बोलै करि भाउ ।
विदितप्रभ मुझ नाम छै, हो रत्नदीप सुभ मेरी खड ॥१०५॥

हो रैणमजुसा पुत्री जाणि, गुण लावण्य पुण्य की खानि ।
देखि रूप मुनि बुझीयो, हो पुत्री को वर कैहो विचार ।
अवधि जाणि मुनि बोलियो, हो सहसकूट उघाडै द्वार ॥१०६॥

हो सो तुम सुता परणिसी आई, साच वचन सहु जाणी राइ ।
हम सेवक ईहा छोडियो, हो देखा तुम अति पुण्य निवास ।
जाइ वेगि हमस्यौं कह्यो, हो आए सुभट तुमारै पास ॥१०७॥

हो अव हम उपरि करहु पसाउ, रैणमजूसा करौ विवाह ।
मुनि का वचन भया सही, हो रचि सुभ मण्डप चौरी चार ।
वस्त्र पटम्बर छाइया हो, कनक कलस मेल्हा चहु द्वार ॥१०८॥

हो अव पत्र की वंधी माल, हरित वस रोपिया विसाल ।
कन्या वर सिंगारिया, हो चोवा चदन तेल चहोडि ।
विप्र वेद धुनि उच्चरै, हो तीया पुरिष वैठा कर जोडि ॥१०९॥

हो रैणमजूषा अरु सिरीपाल, वार सात फिरियो भोवाल ।
अग्नि विप्र साखी भयो, हो भया महोछा मगलाचार ।
दे विद्याधर डाइजो, हो हस्ती घोडा कनक आपार ॥११०॥

हो वाजा वरगू भेरि निसाण, सहनाइ झालरि असमान ।
वर सुंदरि ले चालियो हो, चारण वोलै विडद वखाण ।
रली रंग ते अति घणा, हो तक्षण गयो परोहण थान ॥१११॥

हो घवल सेट्ठि देखो सिरीपाल, साथि तीया सुभ जोवन वाल ।
मन मे हरप भयो घणो, हो वाणिक पुत्र सव भयो आनद ।
वर कामिनी सोभा घणी हो जाणिकि सोभै रहणिचन्द ॥११२॥

हो विडहर मध्य भयो जैकार, सिरीपाल दीनो ज्योणार ।
तथा जुगति सन्तोपीया, हो कनक वस्त्र दीना वहु दान ।
हाथ जोडि विनती करी हो घवल सेट्ठि नै दीनो मान ॥११३॥

हो एकै दिनि सिरीपाल हसत, रैणमजूसा वूझै कत ।
कौण देस थे आइया हो माता पिता कौण तुम ठाम ।
कौण जाति स्वामी कहो, हो निश्चै कौण तुम्हारो नाम ॥११४॥

हो सुणि कोडीभड करै वखाण, अगदेस चपापुरि थान ।
तासु सिघरथ राजइ, हो कुदापहु तसु तीया सुजाणि ।
तासु पुत्र सिरीपाल हो, हो वचन हमारा जाणि प्रमाणि ॥११५॥

हो भउं सिघरथ राजा तात, राज लीयो तसु लहुडै भ्रात ।
वालपणै हम काढिया, हो निकस्यौ कोढ कर्म कै भाइ ।
देस ग्राम छाड्या घणा, हो नग्र उजेणी पहुता आइ ॥११६॥

हो प्रजापाल राजा तिह थानि, मैणासुन्दरि सुता सुजाणि ।
राजा मा हमकौ दइ, हो भयो विवाह कर्म्म सजोग ।
सिद्धचक्र पूजा करी, हो तासु पुण्य भागो सहु रोग ॥११७॥

हो हमस्यौ कहै वाल गोपाल, राज जवाइ इहु सिरीपाल ।
नाम पिता को को न लेहो, मेरा मन मैं उपज्यो सोग ।
कामणि सेवक छाडिया, हो भृगुकछ पटणि सेट्ठि सजोग ॥११८॥

हो आए इहा सेट्ठि के साथ, सहसकूट दीट्ठौ जिणनाथ ।
पिता तुम्हारो आइयो, हो हम तुम्ह भयो विवाह सयोग ।
कही वात सहु पाछिली, हो सुभ अरु अशुभ कर्म कौ जोग ।।११९।।

हो रैंणामंजूसा सुणी बहु बात, हरस्यो चित्त विकास्यौ गात ।
कत तणी सेवा करैं, हो नृति गीत गावै अति रग ।
मन मोहै भरतार कौ, हो छाडै नही एक क्षण सग ।।१२०।।

हो मोहण पूरि वस्त बहु लेइ, धवलसेट्ठि घर नै चलाई ।
साथि परोहण पचसै, हो देखे रैंणमजूसा रग ।
धवल सेट्ठि मन चितवै, हो इहि कामिनीस्यौ कीजै सग ।।१२१।।

हो रैंणमजूसा सेवै कत, धवल सेट्ठि अति पीसै दत ।
नींद भूख तिरषा गई, हो मत्री जोग्य कही सहु बात ।
सुंदरिस्यौ मेलौ करौ, हो कहौं मरौ करौ अपघात ।।१२२।।

हो सुणी बात मत्री दे सीख, पच लोक मैं थारी लीक ।
ऐसौ मनि मत चितवै, हो कीचक गयो द्रोपदी सग ।
एह कथा जगि जाणि जे, हो भीमराय तसु कीनो भग ।।१२३।।

नर्क तणा दुख भोगवै, हो जो नर शील न पालै सार ।
हरत परत दून्यौ गमै, हो मरैं अखूटी मूढ गवार ।।१२४।।
हो रावण गयो सिया परसग, लखमणि तासु कीयो सिर भग ।

हो धरम पूत थारो सिरीपाल, परतषि माथा उपरि काल ।
तासु घरणि किम सेविस्यौ, हो पुत्र घरणि पुत्री सम जाणि ।
परकामिणि माता गमै, हो भवियण ते पहुचै निरवाणि ।।१२५।।

हो दिन प्रति कलह करावत जाइ, नारद सोधौ सील सुभाव ।
कर्म तोडि शिवपुरि गयो, हो सीता राखो दिढ करि सील ।
अग्नि कुंड पाणी भया, हो भविजण सील म करिज्यो ढील ।।१२६।।

हे सेट्ठि सुणो मत्री की वात, पायो दुख पसीज्यो गात ।
हाथ जोडि विनती करैं, हो लाख टका पहली ल्यो रोक ।
सुंदरि हम भेलो करो, हो जाय हमारा मन को सोक । १२७।।

हो मंत्री भयो लोभ को भाउ, सुभट मरण को रच्यो उपाउ ।
धीमर सहु समझाइयो, हो छल करि धीमर करै पुकार ।
चोर परोहण आइया, हो उछलै मोटा मछ अपार ।।१२८।।

हो सुणि पुकार अति गहर गहीर, देखण लागौ दह दिसा ।
हो तौ लग पापी पाप कमाइ, काटि वरत प्रोहण तणी ।
हो पडिउ सुभट सागर मैं जाइ, रास भणौ सिरीपाल को ।।१२९।।

हो जे था प्रोहणि वणिक विसाल, सागर पडिउ देखि सिरीपाल ।
मन मैं दुख पायो घणौ, हो रैणमजूसा करै पुकार ।
सिर कूटै हीयो हणे, हो कहगौ कोडी भड भरतार ।।१३०।।

हो सुंदरी दुःख लागी बहु कर्ण, तज्या तवोल अन्न आभरण ।
नैणा नीर झुरै घणौ, हो धवल सेट्ठि तव मत्र उपाइ ।
तक्षण पट्इठ कुटणी, हो रैणमजूसास्यौ कहि जाइ ।।१३१।।

हो गइ कूटणी सुंदरि पासि, कहै कपट करि वात विसासि ।
सुता वात मेरी सुणौ, हो मुवा साथि नवि भूवो कोई ।
जामण मरण अनादि कौ, हो कोइ किसकौ सगौ न कोइ ।।१३२।।

हो मन कौ छाडि सुदरी सोग, धवल सेट्ठि मेलो तुम जोग ।
भोग भोगऊ मन तणा, हो मनुष्य जन्म ससारा आइ ।
खाजे पीजे विलसीजे, हो अवर जनम की कही न जाइ ।।१३३।।

हो सुणि सुंदरी कूटणि वात हो उपनौ दुख पसीनौ गात ।
कोप करिवि सा वीनवौ हो नख थे वेगि जाहि अव राड ।
पाप वचन तैं भासिया, हो इसा बोल थे होसी भाड ।।१३४।।

हो नख थे कुटणी दइ उट्ठाइ, आयो सेट्ठि सुदरी ट्ठाइ ।
हाय जोडि वीनती करै, हो हम उपरि करि दया पसाउ ।
काम अग्नि तनु वालीयो, हो राख्यै बोल हमारो भाउ ।।१३५।।

हो मुणि वोली कोडीभड नारि, पुत्र घरणि पुत्री जिसी होइ ।
इह तौ खर सूवर आचार, माता भगनि धिया ना गिणै ।
हो पापी करै सग व्योहार, हो रास भणै सिरीपाल को ।।१३६।।

हो जहि कै मात वहण धिय होइ, तिह काए परणात मन होइ ।
तु सुहणा खर सारिखौ, हो देव धर्म कुल छोडी लाज ।
हरत परत दूज्यो गया, हो सोचै नाही काज अकाज ।।१३७।।

हो जहि नर नारी सील सुभाउ, तासु होइ सुर्गा लै ठाउ ।
सुर नर पद पूजा करै, हो कीरति पसरै तीन्यौ लोक ।
मुकति तणा सुख भोगवै, हो आवागवण न व्यापै रोग ।।१३८।।

हो जे नर नारि शील करै हीण, ते नर नरक दु ख करि खीण ।
ताती पुतली लोह की, हो असुर देव तसु कंठि लगाइ ।
कूर वचन मुख थे कहै, हो पर कामिनि इह सेऊ आइ ।।१३९।।

हो पापी सेट्ठि न मानै वात, रैणमंजूसा कौ गहि हाथ ।
पाप करत साकै नही, हो आया तव जिण सासण देव ।
धवल सेट्ठि दिठ वधीयो, हो कोप करिवि बहु बोल्या एव ।।१४०।।

हो ज्वालामालिणी देवी आइ, दीनी प्रोहण अग्नि लगाइ ।
रोहिणि औंधो टंकियो, हो विष्टा मुख मै दीनी ठेलि ।
लात धमूका अति हणै, हो साकल तौष गला मे मेलि ।।१४१।।

हो वातकुमार जव तव आइ, दीनो अधिको पवन चलाइ ।
जल कलोल वहु उछलै, हो चक्केसुरि अति कीनो कोप ।
प्रोहण फेरै चकज्यो, हो अधकार करियो आरोप ।।१४२।।

हो अवा तातै छडकै तेलि, मूत नासिका दीनो ठेलि ।
छेदन भेदन दु.ख सहै, हो मणिभद्र आयो तिह ठाइ ।
मार मार मुखि उच्चरै, हो धवल सेट्ठि मुखि लाइ ।।१४३।।

हो देखि सेट्ठि कपिवि सहु लोग, हो गाली देइ जपै तसु जोग ।
पापी अजुगति तैं करी, समुदि आणि बोल्यो सहु साथ ।
सुंदरि चरणा ढोक घो, हो वीनति करि बहु जोडो हाथ ॥१४४॥

हो धवल सेट्ठि तव जोड्या हाथ, क्षमा करो हम उपरि मात ।
हम अपराध कीयो घणौं, हो प्रोहण मे जे वणिक कुमार ।
चरण वंदि विनती करो, हो माता तुम थे होइ उवार ॥१४५॥

हो सुण्या वचन जे वाण्या कह्या, रैंणमजूसा उपणी दया ।
कोप विपाद सवै तज्यो, हो दीयो देवतो सुन्दरि मान ।
पूजा करि चरणा तणी, हो तक्षण गया आपणैं थान ॥१४६॥

हो पडिउ सुभट जो समुद मझारि, कहौं कथा सुभ वात विचारि ।
नमोकार मनि समरीयो, हो उपहरी उछाल्यो वरवीर ।
नमसकार मुख थे कहै, हो सागर मुजह तिरै अति धीर ॥१४७॥

हो जिण को नाम जपै अतिसार, जिण कै नाम तिरै भवपार ।
सिंघ सर्प पीडैं नही, हो जिण कै नाम जाइ सहु रोग ।
सूल सफोदर शाकिनी, हो पावै सुर्ग तणा बहु भोग ॥१४८॥

हो जिण कै नाइ अग्नि होइ नीर, जिण कै नाइ होइ विसखीर ।
सत्र मित्र होइ परणवै, हो गूंजै नाहि भूत पिसाच ।
राज चोर पीडैं नही, हो जिणि कै नाम सासुतो वाउ ॥१४९॥

हो जिण कै नाइ होइ घरि रिद्धि, जिण कै नाम काज सहु सिद्धि ।
सुर नर सहु सेवा करै, हो सागर अति गहीर दे थाहु ।
परवत वावी सारिखो, हो जिण कै नाम होइ सुभ लाइ ॥१५१॥

हो जिण कै नाम पाप थे छूटिय, खोडा वेडी सकुल तूटि ।
सर्प माल होइ परणवै, हो सजन लोग करै सहु काणि ।
जिण कै नाम गुणा चढै, हो जिण कै नाम कर्म को होइ हाणि ॥१५२॥

हो सिरीपाल जिणवर समदेइ, नीर मुजह बलि पाछौ देइ ।
सक न मानै चित मै, हो सुभट जाई सागर मैं चल्यो ।
काठ एक पानै पडिउ, हो जाणिकि मित्र पूर्विलो मिल्यौ ॥१५३॥

हो पकडि काठ वैट्ठो वरवीर, जल कलोल उछलै गहीर ।
पच परम गुरु मुखि कहै, हो मगरमछ वहु फिरै समीप ।
खाइ न सकै ही सुभट नै, हो कर्म जोग इक दीठौ दीप ॥१५४॥

हो पुण्य वध अति साहस वीर, कर्म जोगि पाइ जलतीर ।
उतरि समुद्द ट्राढो भयो, हो राजा सेवक राक्षा तीर ।
कोडीभड तहि देखीयो, हो जलधि मुजह बलि उतरीउ धीर ॥१५५॥

हो सिरीपाल का वधा पाइ, भयो हरष अति अगि न माइ ।
विनो भगति गाढो करी, त्याह स्यौं सुभट भणै दे मान ।
साच वचन हमस्यौ कहो, हो राजा कौण कौण पुरधान ॥१५६॥

हो वोल्या किकर सुणि सिरीपाल, दलवणपटण सुविसाल ।
सोभा इद्रपुरी जिसी, हो राज करै राजा घनपाल ।
गुनमाल तसु कामिनी, हो कठ सुकठ पुत्र सुकमाल ॥१५७॥

हो गुणमाला इक पुत्री जाणि, गुण लावण्य रूप की खानि ।
राजा मुनिवर वुझीयो, हो स्वामी गुणमाला भरतार ।
निमिती कहि कौणै तणो, हो जिन मन को सहु जाइ विकार ॥१५८॥

हो मुनिवर भणै अवधि कौ जाण, तिर समुद्द आवै तुम थान ।
नाम तासु सिरीपाल कहै, हो गुणमाला सो परणै आइ ।
कोडी भड पुणि ही मिलौ, हो इही काइसो मुकतिहि जाइ ॥१५९॥

हो राजा सुणि मुनि का भाषीया, हम तौ समद तीर राखीया ।
कर्म जोग तुम आइया, हो दरसण भयो तुम्हारो आजु ।
समुद मुजह वलि पैरीयो, हो मन वाछित सहु पूगे काज ॥१६०॥

हो कहि सनबंध राउ पै गयो, नमस्कार करि तहि वीनयो ।
स्वामी सो नर आइयो, हो समुद्र भुजह बल उत्तरि पार ।
मुनि का वचन भया सही, हो आणहु वेगि मलाउताहि ॥१६१॥

हो भयो हरष धनपाल, गयो सामुहौ जहा सिरीपाल ।
नग्रउ छाडिउ जुगतिस्यौं, हे भेरि न फेरी नाद निसाण ।
साहण सेना साखती, हो चारण बोले विड्द बखाण ॥१६२॥

हो भेटिउ कठ लगाइ नरिंद, हो दुहु राउ मनि भयो आनद ।
कुसल विनौ बुझै घणी, हो उपरा उपरि दीनौ मान ।
कोडीभड कुंजर चढिउ, हो गया वेगि दलपट्टण थान ॥१६३॥

हो लीयो राइ जोतिगी बुलाइ, कन्या केरौ लगन लिखाइ ।
मडप वेदी सुभ रची हो अब पत्र की बधी माल ।
कनक कलस चहू दिसि वण्या, हो छाए निर्मल वस्त्र विसाल ॥१६४॥

हो गावै गीत तिया करि कोड, वस्त्र पटेवर बध्ये मोड ।
फूल माल सोभा घणी, हो चोवा चदन वास चहोडि ।
वेदी विप्र बुलाइयो, हो वर कन्या बैट्ठा कर जोडि ॥१६५॥

हो भांवरि सात फिरिउ चहु वाखि, भयो विवाह अग्नि दे साखि ।
राजा दीनौ डाइजौ, हो कन्या हस्ति कनक के काण ।
देस ग्राम दीना घणा, हो विनती करि दीनौ बहुमान ॥१६६॥

हो विनती करि जपै धनपाल, मेरौ बचन मानि सिरीपाल ।
राज हमारौ भोगऊ, हो कोडीभउ बोलै सुणि माम ।
राजा तुमारो भोगऊ, हो हमनै नही राजस्यौ काम ॥१६७॥

हो विनौ करि जपै नरनाथ, सवै भडार तुम्हारे हाथ ।
दान पुण्य पूजा करौ, हो सुसर बचन मान्यो सिरीपाल ।
तिया सहित सुख भोगवै, हो सुख मे जात न जाणै काल ॥१६८॥

हो कर्म्म जोग केइ दिन गया, घवल सेट्ठि मोहण आविया ।
जलधि तीर तह थिति करी, हो लइ भेट बहु राजा जोग ।
वस्त्र कनक हीरा लया, हो सेट्ठि सहित खिउहर का लोग ॥१६९॥

हो पहुता जहा राउ घनपाल, आगैं मेल्हि भेट भरि थाल ।
राजा चरण जुहारिया, हो दीनो राइ घणेरो मान ।
कुसल क्षेम बुझी सवै, हो वैट्ठा सेट्ठि सभा के थान ॥१७०॥

हो तव जंपै राजा घनपाल, भेटि उठाइ लेहु सरीपाल ।
घवल सेट्ठि तवोल द्यो, हो सुभट तंबोल देइ सुद भाइ ।
वणिक जके प्रोहण तणा, हो घवल सेट्ठि देखें निरताइ ॥१७१॥

हो सेट्ठि तणो अति कसक्यो हीयो, सिरीपाल सागर मैं दीयो ।
इह थानक किम आइयो, हो विदा लेइ थानकि चालिया ।
उपरा उपरी बीनवैं, हो इहु तो सिरीपाल आविया ॥१७२॥

हो पुरूष एक रावल महिलो, वूझै सहु व्रितांत पाछिलो ।
सिरीपाल इहु कोण छै, हो राजा सेवक वोल्यो कोइ ।
सागर तिरि इह आवियो, हो राजा तणो जवाइ होइ ॥१७३॥

हो वात सुणत मन मैं कपिया, तक्षण प्रोहण थानक गया ।
वणिकपुत्र वैठा मतै, हो अव कोई चितऊ ऊपाइ ।
मरण होइ सिरीपाल को, हो काची व्याधि तूटि सहु जाइ ॥१७४॥

हो मन मै मतो सेट्ठिऊ ठाणियो, डूम एक तक्षण आणिया ।
राज सभा तुम गम करो, हो नाचहु गावहु पिगल छद ।
भगल साग कीज्यो घणा, हो राजा कै मान होइ आनद ॥१७५॥

हो राजा तुमनै दान करेइ, सिरीपाल नैं दुऊ देह ।
तव प्रपच तुम उट्ठिणीज्यो, हो सिरीपालस्यो करि ज्यो सग ।
वहुत सगाई काढिज्यो, हो लाख दाम देस्यो तुम जोग ॥१७६॥

सो सेट्ठि वचन सुणि हरसा भया, राजा सभा डूम सहु गया ।
श्रौसर मागयो राउपैं, हो नाचैं गावैं गीत सुचग ।
स्वांग मनोहर अति करैं, हो विद्या भगल करैं सिर भग ॥१७७॥

हो राजा देखि बहुत हरिषीयौ, सिरीपाल नैं दुऊ दीयो ।
डूम जोगै दान द्यो, हो सिरीपाल दे दान बुलाइ ।
डूमा पाखड माडियो, हो रह्या सुभट नैं कठि लगाइ ॥१७८॥

हो एक डूमडी उट्ठी रोई, मेरी सगो भतीजी होइ ।
एक डूमडी बीनवैं, हो इहु मेरी पुत्री भरतार ।
बहुत दिवस बे पाइयो, हो कामि तजि किम गयो गवार ॥१७७॥

हो एक डूमडी करैं पुकार, पुत्र दोइ जाया इक वार ।
पालि पोसि मोटा किया, हो करी लडाइ भोजन जोग ।
समुद माझ लहुडउ पडिउ, हो लाधौ आवैं कर्म कै जोग ॥१८०॥

हो डूम एक बोलै विहसत, इहु मेरी भाणजी कत ।
बहुत दिवस मिलिवो भयो, हो एक डूमडी भणै रिसाइ ।
सिरीपाल आवहु मिलौ, हो मेरी बहण पुत्र तु आहि ॥१८१॥

हो एक डूमडी तोभैं गाल, छोडि कहां भागौ सिरीपाल ।
बालपणैं मुझ दुख दीयो, हो परणी नारि न छोडे कोइ ।
बात अजुगती तै करी, हो अब न जीव तो छोडौ तोहि ॥१८२॥

हो सुणि राजा डूम की बात, उपनौ दुख पसीनौ गात ।
कोटपाल सेथी भणौ, हो सिरीपाल नैं सूली देहू ।
बात अजुगती बहु करी, हो वधो वेगि वस्त्र सहु लेहु ॥१८३॥

हो कोटपाल सुणि राजा बात, वधि सुभट दे मुकी लात ।
सूली जोग चलाइयो, हो गुणमाला तव लाधी सार ।
रूदन करैं मस्तक धुणैं, हो तक्षण राल्या सहु सिंगार ॥१८४॥

हो गइ वेगि थी जहा भरतार, हो कत कत कहि कै पुकार ।
चरण वदि वीनती करै हो स्वामी कहो कौण भरतात ।
जहि कारणि तुम वधीया, हो कौण दोप थे तेरो घात ।।१८५।।

हो कोडीभड वोलै सुणि नारि, जीव कर्म्म मिश्रत ससारि ।
पाप पुण्य लागा फिरै, हो जैसो कर्म उदै होइ आइ ।
जीव बहुत लालच करै, हो नहि तै तहा वधि ले जाइ ।।१८६।।

हो गुणमाला जंपै सुणि कंत, दीसै सुभट महा बलवत ।
गोत जाति कहि आपणी, हो वोल्या सुभट डूम हम जात ।
और जाति कैसी कहो, हो राजा कै मति उपनी भ्राति ।।१८७।।

हो तव गुणमाला करै वखाण, कहो जाति कै तजो पराण ।
संसो भाजै मन तणो, कोडीभड जपै सुणि नारि ।
ससो थारो भानिसी, हे तीया एक प्रोहण मझारि ।।१८८।।

हो वचन सुणत तहा गइ गुणमाल, रैणमजूसा मोहणि वाल ।
नमसकार करि वीनवै, हो सखी मोकली हो सिरीपाल ।
जाति गोत्त तहि की कहो, हो सागर तिरि आयो सुकुमाल ।।१८९।।

हो रैणमजूसा जपै सखी, सिरीपाल कै दुखि हु दुखी ।
सिरीपाल की कामिनी, हो चलहु वेगि जहा छै राज ।
ससो भानी मन तणो, हो मनवछित सहु पूगै काज ।।१९०।।

हो गई दुवै थी जहां नरनाथ, नमस्कार करि जोड्या हाथ ।
रैणमंजूसा वीनवै, हो सिरीपाल को गोत उतग ।
राउ सिघरथ पुत्र यो, हो अग देस चंपापुर चग ।।१९१।।

हो रत्नदीप विद्याधर जाणि, विदितप्रभ तसु नाम वखाणि ।
इंद्र जेम सुख भोगवै, हो रैणमजूसा तिह की धीया ।
सिरीपाल हो व्याहि दी, हो कचन रत्न डाइजो दीया ।।१९२।।

हो करि विवाहणि ल्याइयो, धवल सेट्ठि घरनैं चलियो ।
रूप हमारो देखियो, हो पापी सेट्ठि रच्यो मनि कूड ।
सिरीपाल जलि रालियो, हो कामी सेठि विकल मति मूढ ॥१९३॥

हो सहु विरतांत पाछिला कह्या, सेट्ठि जके प्रपच ठालिया ।
बात विचारी चित्त मैं, हो सहु सनमध पाछिलौ सुण्यो ।
मनि पछितावा बहु करैं, हो जाणिकि भयो वच्च को हयो ॥१९४॥

हो तक्षण गयो राउ धनपाल, करि उछाह आण्यो सिरीपाल ।
गोवलि गूडी उछली, हो नग्रउ छाडिउ धुजा विसाल ।
दुवै तिया मन हरषि भई, हो रैणमजूसा अरू गुणमाल ॥१९५॥

राजा द्वारा श्रीपाल से क्षमा याचना करना

हो राजा क्रोध मान सहु छोडि, सिरीपाल आगै कर जोडि ।
ठाढौ रहि विनती करैं, हो क्षमा करौ हमस्यौ धरधीर ॥
हम पापी जाणी नहीं, हो तुम कुलवत सुभट वरवीर ॥१९६॥

हो सुणि जपै कोडीभड जाण, राजा विकल विवेक अयाण ।
हीए वात सोची नही, हो कही डूम किम सागर तिरै ।
राजा पुत्री क्यु वरै, हो मुनि का वचन प्रतीति न करै ॥१९७॥

हो रैणमजूसा हरष न माइ, सिरीपाल का बघा पाइ ।
राज लोक मैं गम कीयो, हो राण्या कीयो वहुत सम्मान ।
भोजन दीनो भगति स्यो, हो वस्त्र जडाउ पटबर दान ॥१९८॥

धवल सेठ को बन्दी बनाना

हो राजा किंकर पठ्या घणा, आंणो बधि घवल सेठि तक्षणा ।
वंधि सेठि ले आइया, हो मारत राउ न सका करैं ।
भूत दीयो बहु नासिका, हो औंधो मुख पग ऊचा करै ॥१९९॥

है भणै सुभट सुणि राजा वात, मेरो सेठि धर्म्म को तात ।
हम उपरि किरपा करौ, हो छोडतु सेट्ठि दया करि भाउ ।
बावै जिसौ लुणै, हो राखौ बाल हमारो राउ ॥२००॥

हो वचन सुणत वाण्या छोडियो, सिरीपाल सहु लेखौ लीयो ।
द्रव्य आपणौ वसि कीयो, हो परधन तणी न ईछा कर ।
सेठ तणो राखो नही, हो धर्म नीति मारग व्यवहार ।।२०१।।

हो प्रोहण जेता सहु कुमार, सिरीपाल दीनी ज्युणार ।
भोजन भगति करी घणी हो वस्त्र तबोल दीया बहु भाइ ।
हाथ जोडि विनती करै हो मेरी क्षमा वचन मन काय ।।२०२।।

धवल सेठ का मरण

हो सुभट विनो जव दीठौ घणौ, जाणि धिगस्त जन्म आपणौ ।
हीयो फाटि वाण्यो मुओ, हो परधन परतीय इछे कोपू ।
नरक दुख देखे घणा, हो केवलि कह्यो सुणहु सहु कोइ ।।२०३।।

हो सत्यकोप परधन कै सग, गयो द्रव्य मरि भयो भुजग ।
नरग तणा दुख भोगया, हो रावण परतीय माडीआ ।
नरक तीसरैं उपनो, हो सव कुटुंब को भयो विणास ।।२०४।।

हो कीचक कीयो द्रोपदी संग, भीमराइ कीयो तसु भग ।
ब्रह्म विटंबि तिलोतमा, हो कोढणि राव जसोधर नारि ।
नीच कुवडो सेवीयो, हो पहुनी नरकि कत नैं मारि ।।२०५।।

हो बहुत जके नर नारी भया, परधन परकामिनी थे गया ।
षट दरसन मैं मह कहै, हो जे नर परधन परतिय तिक्त ।
सर्ग मुक्त सुख भोगवैं, हो सुर नर विद्या घटत सुभक्त ।।२०६।।

हो रैणमजूसा स्यो गुणमाल, हो महासुख भूंजै सिरीपाल ।
काल जात जाणै नही, हो तो लग दून आइयो ।
कोडीभड तह वदियो, हो कुकुण देस नाम सुभ कह्या ।।२०७।।

हे राजा तहा वसैं जसरासि, दुर्जन दुष्टि न दीसैं पासि ।
जस माला तसु कामिनी, हो पुत्री आठ मह्य सुकुपाल ।
इच्छा पुरै मन तणी, हो तासु जोग परणे सिरीपाल ।।२०८।।

हो चालहु वेगि न लावहु वार, हस्ती वैसि होइ असवार ।
राजा निमिति बुझीयो, हो दलवटण राजा घनपाल ।
सुपुत्रि जो परणिसी, हो ए पुत्री परणैं सिरीपाल ।।२०६।।

श्रीपाल का कुंकरण देश को गमन

हो सुण्या वचन मनि हरषो भयो, कुंकण देसि वेगि सो गयो ।
राजा सन्मुख आइयो, हो वरगू नाद निमाणा घाउ ।
नग्र मक्त सोभा करी, हे भेंटि घरह ले पहुराउ ।२००।।

आठों कन्याओं द्वारा समस्या रखना एवं श्रीपाल द्वारा उनकी पूर्ति करना

हो आठौं कन्या ठाडी भाइ, समस्या जुदी जुदी तहि कही ।
सुभग गौरि बोली वडी, हो कोडीभड सुणि मेरी बुधि ।
तीन पदा आगैं कही, हो साहस जहा तहा ही सिद्धि ।।२११।।

हो सुण्या वचन बोलै वरवीर, सुणहु कुमारि चित्त करि धीर ।
सत्त सरीर हस्यौ रहो, उदै कम तैसी ही बुधि ।
उदिम तउ न छोडि जे, हो साहस जहा तहा ही सिद्धि ।।२१२।।

हो गौरि सिंगार भणै सुणि भव्व, गयो सवै पेखता सव्व ।
कोडिभड सुणि बोलियो, हो सुणहु कुमरि मन राखौ ठाइ ।
तीनि पदा आगैं कहौं हो मन थारा को ससौ जाइ ।।२१३।।

हो दान पूजनवि पर उपगार, भोग पभोग न भुंज्या सार ।
मे मे करता जनम गौ, हो इहि विधि क्रिमण सचो दव्व ।
जूवा राज पलेवणौं, हो गयो तासु पेखेना सव्व ।।२१४।।

हो पोलोमी भाखियो गरिट्ठ, तेण कह्यो मिथ्यात सुमिट्ठ ।
सुणि कोडीभड बोलियो, हो पोलौ भी कान दे सुण्यो ।
तीनि पदा आगैं कहौं, हो जाइ सव्वै ससै मन तणो ।।२१५।।

हो देव शास्त्र गुरू लह्यो न भेद, जहि थे होइ कर्म को छेद ।
मत मिथ्यात जु सरदहै, हो समकित लह्यो नही उतकिट्ठ ।
जैन धर्म रस ना पियो, हो तिह नरतो मिथ्यात सुमिट्ठ ।।२१६।।

हो रणा देवी भणै अवीह, ते नर तो पचाइण सीह ।
सुणि कोडीभड वोलियो, हो शील विहूणा लेहु मलीह ।
जे चारिता निर्मला, ते नर तो पंचाइण सीह ।।२१७।।

हो सोमा देवी कहै विचार, कोघ धर्म जग तारण हार ।
सुणि कोडीभड वोलियो, हो ग्यारह प्रतिमा श्रावक सार ।
तेरह विधि व्रत मुनि तणा, हो कुंण घम्म जगि तारण हार ।।२१८।।

हो संपद बोली वचन सुमीठु, सो न तजो विरला दिट्ठु ।
सिरीपाल उत्तर दीयो, हो दीप अढाइ मध्य पइट्ठु ।
बुरी पराइ ना कहै हो सो नर तोजं विरला दट्ठि ।।२१६।।

हो चद्र लेख सुभ वषण भणेइ, सो नर तो तिह काई करेइ ।
सुभट फेरि उत्तर दीयो, हो वरप इक्यासी को नर होइ ।
चौद वरप कन्या वरै, सो नर तो तहि काइ करै ।।२२०।।

हो वोलो पदमा देवि सुभग, एता कारण कहू न लग ।
सुणि कोडीभड वोलियो, हो कायर लीयो हाथ खडग ।
दुहगी जोवन सुक सर, एतो कारणि कहू न लग ।।२२१।।

आठ कन्याओं का श्रीपाल के साथ बिवाह

हो सिरीपाल जव उत्तर दीयो, आठो का मन हरष्यो भयो ।
राजा लगन लिखाइयो, हो वेदी मंडप बहुत उछाह ।
विप्र अग्नि साखी दीया, हो कोडीभड को भयो विवाह ।।२२२।।

हो आठ सहस परणी सिरीपाल, तहि को कौंण करै वगजाल ।
घोडा हस्ती को गिणै, हो सेव करै ठाडा भो वाल ।
इन्द्र जेम सुख भोगवै, हो सुख मैं जातन जाणै काल ।।२२३।।

हो एक दिवस चितै सिरीपाल, सुख मैं वार वरस गो काल ।
मैणासुंदरि वीसरिउ, हो दुख करिसी कुदापहु माइ ।
सुंदरि संजम लेइसी, हो तजौं प्रमाद मिलौं अव जाइ ।।२२४।।

हो आठ सहस राणी ली साथ, आठ सहस सेवै नरनाथ ।
असु हस्ती रथ पालिकी, हो भेरि नाद निसाणां घाउ ।
गत्र विचि साध्या घणा, हो पहुतौ नग्र उजेणी ठाउ ।।२२५।।

मैनासुंदरी की चिन्ता

हो सुंदरि बात सासुस्यौ कही, बारा बरस अवधि को गई ।
कोडीभड नवि आइयौ, हो जै इह जाइ आजि की राति ।
विकलप सकलय सहु तजौ, हो निश्चै दीक्ष्या ल्यौ परभाति ।।२२६।।

हो कुंदापहु जपै सुणि वहु, नग्र आइ वेढिउ छै कहुं ।
कौण कर्म्म आवै उदै, हो दिन दस चित्त धीर करि राखि ।
धीरै सहु कारिज सरै, हो पुत्री मेरो कह्यो न नाखि ।।२२७।।

हो सेना सहु छाडी तहि ठाइ, हो गयो सुभट जह कुंदा माइ ।
माता सेयी वीनयो, हो माता वेगौ खोलौ द्वारि ।
सिरीपाल हौ आइयो, हो छाडहु सहु मन तणा विकार ।।२२८।।

मनासुंदरी से मिलन

हो सुण्या वचन जव सासू वहु, मन का वछित पूगा सहु ।
वेगि कपाटि उधाडिया, हो सिरीपाल घर भितरि आइ ।
चरण मात का ढोकिया, हो भयो हरष अति अगि न माइ ।।२२९।।

है मैणासुंदरी बद्यो कंत, सासु पासि बैठी विहसंत ।
कुसल स्नेह बुझी सवै, हो जंपै सुभट पाछिली वात ।
जैसी विधि सपति लही, ते तौ कह्यो सवै विरतात ।।२३०।।

हो मैणासुंदरि कुंदा माइ, तक्षण ल्यायो सेना ठाइ ।
राज लोक मै ले गयो, हो आठ सहस थी जे वर नारि ।
सासु तणा पद वदिया, हो वस्त्र जडाउ भेट औ धारि ।।२३१।।

हो पछै वदि मैणासुंदरी, वस्त्र अनेक भेट ले धरी ।
भक्ति विनौ कीना घणौ, हो कनक हस्ति रथ तिया के काण ।
माता जोग्य दिखालिया, हो दूर देस की बस्त निधान ।।२३२।।

हो क्षमा तप मन हरयो भयो, सुभ माता तहि तुम नैं दियो ।
सिरीपाल स्यौं विनवै, हो पुत्र पुण्य थे सुरगति होइ ।
किति इक राज विभूतिया, हो मुक्ति धर्म थे पहुचैं लोइ ॥२३३॥

सम्यकत्व की महिमा

हो समकित कै बल सुर धरणेंद, समकित केवल उपजै इंद्र ।
चक्रवति बल भोगवै, हो समकित केवल उपजै रिधि ।
जीव सदा सुख भोगवै, हो समिकित बलि सरवारथ सिद्धि ॥२३४॥

हो समकित सुध व्रत पालेइ, ताकौ मुकति तिया परणेइ ।
सुरपति किंकर सारिखा, हो दोष अठारा रहित सु देव ।
सति वचन जिनवर तणा, हो गुर निरगथ सु जाणी एव ॥२३५॥

हो समिकित सहित पुत्र तुम आथि, इह विभूति आई तुम साथि ।
घणौ अचभौ को नही, हो सुण्या वचन माता का सार ।
मन मैं सुख पायो घणौ, हो नमसकार करि वारवार ॥२३६॥

उज्जयिनी के राजा द्वारा श्रीपाल की पराधीनता स्वीकार करना

हो पठयो दूत सूसर कै पासि, छोडि उजेणी जीव ले न्हासि ।
वेगि आइ चरणा पडौ, हो तलै वेठुणौ कवल बधि ।
तिण पूलो दोता गहौ, हो आउ धालि कुहाडी कधि ॥२३७॥

हो सुभ वचन सुणि चाल्यो दूत, पहुतो राजा पासि तुरतु ।
नमसकार करि बोलियो, हो बधि कूहाडी कवल ओढि ।
वेगि चालि सेवा करौ, हौ कै तू भाजि उजेणी छोडि ॥२३८॥

हो वचन सुण्या राजा पर जल्यो, जाणिकि वैसादर घ्रित ढल्यो ।
अहकार करि बोलियो, हो स्वामी तेरौ कौण सुटेक ।
वडी वात मुख थे कहै, हो मुझको पतक्षो जाइ क्षणक ॥२३९॥

हो दूत राउस्यौ विनती करै, इसौ कें गर्व मत हियैड धरै ।
अहकार नीकौ नही. हो अहकार थे रावण गयो ।
लखमण राइ निपातियो, हो लका राज भभीषण दियो ॥२४०॥

जुरासिंध अति करतौ मान, नाराइण तसु वाल्यो घाण ।
अहंकार कीजै नही, हो भरथ गर्व अति करतौ घणौ ।
चक्रवर्ति पद भोगवे, हो वाहोवलि मान्यौ तिहि तणौ ।।२४१।।

हो मंत्री कहै राउस्यौ एव, अहंकार छोडौ हो देव ।
वली सहित जोडौ किसौ, दलवल दीसै अधिक अपार ।
मानौ वचन वसीट्ठ को हा, हो सीस ही नम्र सधार ।।२४२।।

हो सुण्या वचन मंत्री का राइ, दान मान दे दूत बुलाई ।
कोंडंभडस्यो वीनिऊ, हो मान्यो वचन तुम्हारो कह्यो ।
सेवक साथि हि दीयो, हो तक्षण सिरीपाल पै गयो ।।२४३।।

हो भेट सुभट कै आगै धरी, नगरीपति की विनती करी ।
वचन तुमारा मानिया, हो सेवक वचन सुणत सुख भयो ।
वहुडि तासु उत्तर दियो, हो कुंजर चढि मिलिवा आविज्यौ ।।२४४।।

हो तक्षण जाइ स्वामिस्यौ कह्या, सुण्या वचन तव वहु सुख लह्यो ।
अंरापति चढि चालियो, हो मिल्या दुवै मनि भयो आनंद ।
दुवै एक गज वैट्ठिया, हो जिम आकास सुर सुमचन्द ।।२४५।।

हो वाजा वाजि निसाणा घाउ, पहुतै दुवै नग्र मैं राउ ।
घरि घरि वधावणौ, हो नृति करै वहु जोवन वाल ।
सज्जन लोग अनंदियो, हो भाली भई आयो सिरीपाल ।।२४६।।

हो अंगरक्ष पहलासै सात, दान मान बुझी कुसलात ।
वस्त्र कनक दीना घणा, हो मदन सुंदरी कुंदा माइ ।
मणि माणिक्य दीना घणा, अगणित वस्त्र सुकहीन जाइ ।।२४७।।

हो जथा जोगि नग्री को लोग, वस्त्र जडाउ दी वहु भोग ।
सहु मन मै हरसा भया, हो करि ज्यौणार सुदेइ तवौल ।
विनौ भगति करि वौलियो, हो पान सुपारी कूंकूं रौल ।।२४८।।

हो सुख मैं कितउक वीतै काल, जनम भूमि समरी सिरीपाल ।
सुसर तणौ दुवो लायो, हो घोडा हस्ती पडे पलाण ।
रथ वैठि राणी चली, हो मांगणि वोलै विउद वखाण ।।२४९।।

श्रीपाल का चम्पापुरी पहुंचना

हो आठ सहस नृप सेवा करै, दुर्जन कोइ धीर न करै ।
गगन सूर सूझै नही, हो बाजै नाव निसाणा घाउ ।
कानि पडिउ सुणि जै नहीं, हो चम्पापुरी पहुंतौ राउ ।।२५०।।

हो काको वीरदमन तह रहे, दुर्जन को तप देखिन सकै ।
भाट बसीट्ठ जु मोकल्यो, हो जाइ कहो आयो सिरीपाल ।
बाल पणै तुम काढियो, हो आठ सहस सेवै भोवाल ।।२५१।।

हो छोडि नग्र सेवा करि आउ, ग्राम दोइ बैट्ठा ही खाउ ।
राजरीति सहु परहरौ, हो कौडै नग्र न सेवा करै ।
तौ हमने दूसरा नहीं, निश्चै जौरा मुखि संचैर ।।२५२।।

हो सुणी बात गौ भाट बसीट्ठ, राज सभा अति सुंदर दीठ ।
कर ऊंचौ करि बोलियो हो पाछै बंसि भया भोवाल ।
वान विउद वखाणिया, हो पाछै कह्यो राउ सिरीपाल ।।२५३।।

हो बात सुणत मनि कसक्यो साल, कहिरै भाट कौंण सिरीपाल ।
बसिह मारै को नहीं, हो भणै भाट तुम सुणौं नरेस ।
बालपणो तुम काढियो, हो आयो फिरि बहुलौ परदेस ।।२५४।।

हो तो लग चोरू जु चोरी करै, जो लगु धणी नाइ संचैर ।
जीवत माखी को गिलै, हो अवै राज को छोडौ भाउ ।
चलहु बेगि सेवा करौ, हो खेत धणी काढै हरि हाउ ।।२५५।।

हो वीरदमन बोलै सुणि भाट, तै कांयौ हो दीट्ठौ जाट ।
मुख सभालि बोलो नहीं, हो धणी आपणास्यौं कहि आइ ।
राति बेगि तू भाजि जे, कै रण संग्राम करौ चढि आइ ।।२५६।।

हो भाटि मानियो रण संग्राम, आयो कोडीभड के ठाम ।
यात पाछिली सहु कही, हो सिंधूडा बाजिया निसाण ।
सुर किरण सूझै नहीं, हो जडी खेह लागी असमान ।।२५७।।

हो घोड़ा भूमि खणै खुरताल, हो जाणिकि उलटिउ मेघ अकाल ।
रथ हस्ती वहु साखती, हो वहुं पक्ष की सेना चली ।
सुभट संजोग संभालिया, हो श्रणी दुहु राजा की मिली ।।२५८।।

है वैसि मतै बोलै परधान, सेना होइ निच्चैली घाण ।
इह तौ वात वणै नही, हो राजा दूवै करिसी जुध ।
जो जीतै सो हम धणी, हो विणसै सगली वात विरूद्ध ।।२५९।।

श्रीपाल एवं वीरदमन के बीच युद्ध

हो वात विचारी दहूस्यौ कही, हो दहूं भूपती मानिवि लइ ।
दुवै सुभट जोडौ करै, हो वहुविधि जुद्ध मल्ल को भयो ।
सिरिपाल रणि आगलौ, हो वीर दमन तक्षिण वधियो ।।२६०।।

हो करि जुहार सेवक सहु आइ, लियो राज चपापुरि जाइ ।
वीर दमस तव छोडियो, हो उत्तम क्षमा करी कर जोडि ।
पूजि पिता इहु राजल्यौ, हो वृध सहु चूक हमारी खोडि ।।२६१।।

हो वीर दमन जपै तजि मान, पुण्यवत तुम गुणह निधान ।
राज भोग मु जो घणो, हो हमतौ लेस्या सजम भार ।
राज विभूति न सासुती, हो जैसौ वीज तणो चमकार ।।२६२।।

हो उत्तम क्षमा सवन स्यौं करी, वीर दमन जिन दीक्षा धरी ।
वारह विधि तप बहु करै, हो तेरह विधि पालै चारित्त ।
दस विधि धर्म गुणा चढिउ, हो तिण सौनौ सम जाठयौ वित्त ।।२६३।।

हो करै राज राजा श्रीपाल, सुख मै जातन जाणै काम ।
इन्द्र जेम सुख भोगवै, हो चोर चवाड न राखै नाम ।
श्रावक व्रत पालै सदा, हो गाई सिंघ पावै इक ठाम ।।२६४।।

हो सभा थान वैठो सिरीपाल, माली मेल्हि फूल की माल ·
नस्या चरण विनती करी, हो स्वामी थारै पुण्य प्रभाइ ।
श्रुत सागर मुनि आइयो, हो वन की सोभा कही न जाइ ।।२६५।।

श्रुतसागर मुनि द्वारा श्रीपाल के पूर्व जन्म का वर्णन

हो सुणी वात मन हरषो भयो, दान मान माली नै दियो ।
मुनिवर वदन चालियो, हो राज लोक चाल्यो सहु साथ ।
बहु आडवरि वन गयो, हो नम्या चरण दे मस्तिक हाथ ।।२६६।।

हो धर्मवृद्धि मुनि दीनी भाइ, जहि थे पाप सर्व क्षौ जाइ ।
द्वै विधि धर्म पयासियो, हो श्रावक धर्मसुर्ग सुख देइ ।
जती धर्म शिवपुरि लहै हो वहुडि न आवागमण करेइ ।।२६७।।

हो हाथि जोडि जंपै तजि मान, स्वामी तुहे अवधि के जाण ।
कहौ भवांतर पाछिला, हो राज भ्रष्टि कणि पापहि भयो ।
कोढ उदेवर नीकस्यौ, हो धवल सेट्ठि सागर मै दीयो ।।२६८।।

हो कौंण पाप थे डूम जु कह्यो, पाछै राज पिता को लह्यो ।
सागर तिरिहु नीकस्यो, हो मैंणासुंदरि उपरि भाउ ।
कोढ कलक सवै गयो, हो ते सहु वात कहो मुनिराउ ।।२६९।।

हो सुणी वात श्रुतसागर भणै, सावधान होइ राजै सुणै ।
कहौ भवांतर पाछिला, हो भरत क्षेत्र विद्याधर सेणि ।
रत्नसचपुर सोभितो, हो वसै राउ श्रीकांत सुतेणि ।।२७०।।

हो पट तीया ताकै श्रीमती, दान पुण्य व्रत सोभै सती ।
जैनधर्म निश्चौ करै, हो राजा विकल विषै रस लूध ।
धर्म भेद जाणै नहीं, हो सुखस्यौ काल गमै पिय मूध ।।२७१।।

हो राउ एक दिनि वन मैं गयो, गुप्ति समधि मुनि देखीयो ।
भाव भगति करि वंदियो, हो द्वै विधि धर्म सुण्यौ करि भाउ ।
व्रत लीया श्रावक तणा, हो वंदि मुनि घरि पहुतौ राउ ।।२७२।।

हो बहुत दिवस व्रत पालि अभंग, मिथ्या त्यांकौ कीयो संग ।
भ्रष्ट भयो व्रत छाडिया, हो राज भ्रष्ट तिहि पापिहि भयो ।
मुनिवर राल्यो ताल मैं, हो तेणि पापि सागर मैं दियो ।।२७३।।

हो कोढी मुनिवर सेथी कह्यो, तासु पाप थे कोढी भयो।
मुनिवर जल थे काढियो, हो तहि थे समुद पैरि नीकल्यौ।
नीच नीच मुनिस्यौ कह्यो, हो तहि थे डूमा माहैं मिल्यो ।।२७४।।

हो सेवक हूता सातसैं साथ, कोढी त्यह भास्यौ मुनि नाथ।
अगरक्ष ए सात सै, हो बावै जिसौ तिसा फल खाइ।
मन मैं आरति मत करौ, हो अंतकाल तैसी गति जाइ ।।२७५।।

हो श्रीमती सुणी कंत की वात, पायौ दुख पसीनौ गात।
कालौ मुख भरतार कौ, हो पालि व्रत पापी करि भंग।
जती जोग्य बाधा करी, हो निच्या ताकै पड़ियौ संग ।।२७६।।

हो कहुं कही राजास्यौ जाइ, रांणी अन्नपान नवि खाई।
तुम आचार सवै सुण्या, तक्षण राउ तिया पैं जाइ।
निंदा करि वहु आपणो, हो नाहक मुनी विराध्या जाइ ।।२७७।।

हो करि दिलासा राणी तणी, दड लेण चाल्या मुनि भणी।
तंक्षण जिण मंदिरि गया, हो देव शास्त्र गुरू वद्या माइ।
आठ द्रव्य पूजा करी, हो मुनिवर पासि वईट्ठा आइ ।।२७८।।

हो बोलै राउ जोडिया हाथ, विनती एक सुणौं जति नाथ।
हम थे चूक पढी घणी, हो श्रावक व्रत कौ कीनौ भग।
मुनिवर नै बाधा करी, हो भयो पाप मिथ्याती सग ।।२७९।।

हो हौं पापी मति हीणौ भयो, पाप पुण्य कौ भेदन लह्यौ।
विकल पणैं व्रत छांडिया, हो जहि व्रत थे सहु न्हासै पाप।
तो व्रत सुभ उपदेसि जे, हो मेरा मन कौ जाइ संताप ।।२८०।।

हो मुनि भणै सुणि राउ विचार, सिद्ध चक्र व्रत त्रिभुवणि सार।
पूर्व पाप सहू क्षो करै, हो कातिग फागुण सुभ आषाढ।
आठ दिवस पूजा करौ, हो भणे जिणेसुर मुख को पाठ ।।२८१।।

हो राणी सहु राजा व्रत लियो, अतीचार रहित व्रत कियो।
मत मिथ्यात सवै तज्यो, हो मरण काल लीयो सन्यास।
तजिया प्राण समाधिस्यौ, हो सुरपति स्वर्ग ग्यारहवै वास ।।२८२।।

हो ले सन्यास श्रीमती मुई, कंत इंद्र इद्रणी भइ।
इंद्र आउ सहु भोगइ, हो सुभरणा मत हांथे भयो।
कुंदापहु सुत अवतरिउ, हो इहु सिरीपाल राउ तू भयो ।।२८३।।

हो श्रीमती राणी फिरी वहु काल, मैंणा सुंदरि भई विसाल।
इद्राणी पद भोगयो, हो राजा एहु भवांतर जाणि।
पाप पुण्य व्योरौ कह्यौ, हो स्नेह वैर पूर्विले प्रमाणि ।।२८४।।

हो सुण्यौ भवांतर हरष्यो भयो, नमसकार करि घरनै गयो।
सुखस्यौ काल गमै सदा, हो देव सास्त्र गुरु पूजा करै।
समायक पौसो धरै, हो वचन जिणेसुर हियडै धरै ।।२८५।।

श्रीपाल का वराग्य होना

हो सुखस्यौ कितउक वीतो काल, वन क्रीडा चाल्यो सिरीपाल।
राज लोक सहु साथि ले, हो हस्ती कीच गल्यो देखियो।
मन मैं संका उपनी, हो जन्म हमारौ नाहक गयो ।।२८६।।

हो चेत्यो नहीं विषै रस रूढ़, कामिणी कीच गल्यो मतिमूढ।
मदिरा मोह विटंवियो, हो मे मे करि झंझाला पडउ।
लह्या नहीं सुख सासुता, हो फिरिउ मूढ चहुंगति मैं पडिउ ।।२८७।।

हो दीसै जस्यौ सपदा रासि, ते सहु कंट्ठि मोह की पासि।
जीवन छूटै वापुडी, हो कोइ अब चित्ति जै उपाउ।
बंधण तूटै कर्म्म का, हो ले तप भाउ आतम भाउ ।।२८८।।

हो परिगह भार पुत्र नैं दियो, तंक्षण जाइ मुनि वंदियो।
हाथ जोडि विनती करै, हो स्वामी दक्षा करहु पसाउ।
जीव सासुता सुख लहै, हो दया प्रणाम सदा तुम भाउ ।।२८९।।

हो अट्ठाईस मूल गुणासार, सब परिगह कौ कीयो निवार ।
भेष दिगम्बर धारियो, हो मैणासुदरि तजि घर भार ।
व्रत लीया अजिका तणा, हो जाण्यो सबै अथिर ससार ।।२९०।।

हो सिरिपाल मुनि तप करि घोर, तोडै कर्म धातिया चोर ।
निर्मल केवल उपनो, हो ज्ञान महोछै सुरपति आइ ।
पूजा करि चरण तणी, हो तक्षण गयो आपणै ट्ठाइ ।।२९१।।

हो तज्या मुनी चौदा गुणट्ठाण, भयो सिद्ध पहुतो निर्वाण ।
सुख सैवे अति सासुता, हो जामण मरण नही जुरा बाल ।
रोग विजोगन सचरै, हो जोति सरूप न व्यापै काल ।।२९२।।

हो मैणासुंदरि तप करि मुई, दसमै सु सुरपति भई ।
लिग कामिणी छेदियो, हो अवरु जके मुनि अजिका भया ।
जहि जैसौ तप कियो, हो तहि तहि तैसा सुख पाविया ।।२९३।।

ग्रन्थ प्रशस्ति

हो मूलसघ मुनि प्रगटौ जाणि, कीरति अनत सील की खानि ।
तासु तणी सिष्य जाणिज्यो, हो ब्रह्म रायमल्ल दिढकरि चित्त ।
भाउ भेद जानै नही, हो तहि दीट्ठो सिरीपाल चरित्र ।।२९४।।

हो सोलहसै तीसौ सुभ वर्ष, हो मास असाढ भण्यो करि हर्ष ।
तिथि तेरसि सित सोभनी, हो अनुराधा नक्षत्र सुभ सार ।
कर्ण जोग दीसै भला, हो सोभनवार शनिश्चर वार ।।२९५।।

हो रणथ भ्रमर सोभै कविलास, भरीया नीर ताल चहुं पास ।
बाग विहरि वाडी घणी, हो धन कण सपति तणौ निधान ।
साहि अकवर राज हो, सोभै घणा जिणेसुर थान ।।२९६।।

हो श्रावक लोग वसै धनवत, पूजा करै जपै अरहत ।
दान चारि सुभ सकतिस्यौ, हो श्रावक व्रत पालै मन लाइ ।
पोसा सामाइक सदा, हो मत मिथ्यात न लगता जाइ ।।२९७।।

हो द्वै से अधिका छिनवै छद, कवियण भण्यो तासु मति मद ।
पद अक्षर की सुधि नही, हो जैसी मति दीनो ओकास ।
पंडित कोइ मति हसौ, तैसी मति कीनो परगास ।।२९८।।

रास भणो सिरीपाल को ।।

इति श्रीपाल रास समाप्त ।

प्रद्युम्न रास

रचनाकाल संवत १६२८

भादवा सुदी २ बुधवार

रचनास्थान—हरसोरगढ

प्रद्युम्न रास

मंगलाचरण

हो तीर्थंकर वद्यो जगिनाहो, हो जिह समिरण मनि होई उछाहो ।
हूवा अवछै होइस्यजी, हो त्याह को ज्ञान रह्यो भरि पूरे ।
गुण छियल सोभै भला जी, हो दोष अट्ठारह कीया दूरे ॥
रास भणो परदवणको जी ॥१॥

हो दुजा जी पणउ जिण की वाणी, हो तीन्यो जी लोक तणी थिति जाणं
मूरिख थे पडित करै जी, हो मत मिथ्यात कीयो तहि दूरे ।
द्वादसांग गुण अति भला जी, हो अल्या वचन जहि रल्या दूरे ॥२॥

हो तीजाजी पणउ गुरु निरगथो, हो भूला जी भाव दिखावण पथो ।
तिहूऊण नव कोडि छै जी, हो भजण तारण नाव समानो ।
तिरियवता जे कह्या जी, हो जिणवर वाणी करै बखाण ॥३॥

हो देव सास्त्र गुरु वद्या भाए, हो भूलोजी आखर अणो ठ्ठाय ।
कामदेव गुण विस्तरो जी, हो हो मूरख अति अपढ अयाण ।
भाव भेद जाणो नही जी, हो थोडी जी वुघि किम करो बखाण ॥४॥

प्रारम्भ

हो क्षेत्र भरथ इहु जवू द्वीपो, हो नग्र द्वारिका समद समीपो ।
सा निरमापी देवता जी, हो जोजन वाराह कै विस्तारे ।
सोभा इद्रपुरी जिसी जी, हो राज करै जादमा कुमार ॥५॥ रास

हो पहलो जी राजी अधीक वृष्टि, हो जैन सरावक समिकित दृष्टि ।
दस कुमार घरि अति भली जी, हो सुता एक कु ता सुकमाला ।
रूपि अपछरा सारिखी जी, हो पाडुराय सा परणी बाला ॥६॥

हो लहुडो जी पुत्र तासु वसुदेव, हो देव सास्त्र गुर जाणै सेऊ ।
रोहिणी देवी कामिणी जी, हो रूपकला अपछरा समानो ।
जिनधर्म निश्चौ करै जी, हो त्याह की महमा त्रिभुवन जाणी ।।७।।

हो नारायण वलिभद्रति पुत्रो, हो दुवै महाभउ दुवै मित्रो ।
पुरिष सलाका मै गिण्या जी, हो जैन धरम उपरि बहुभाउ ।
मन मिथ्यात न सरदहै जी, हो दुर्जन दुष्ट न राखै ठ्ठाऊ ।।८।।

नारद ऋषि का आगमन

हो एकै दिनि ते किस्न दिवाणो, हो नारद रिषि आयो तिह थाने ।
करी जादमा वंदनी जी, हो दीन्हौ अधिक जामा मानो ।
हाथ जोडि ठाढा भया जी, हो कनक सिंघासन ऊचो जी थानौ ।।९।।

हो जादौ वोल्या नारद स्वामी, हो तुम्ह तौ जी छौ आकासा गामी ।
दीप अढाई सचरो जी, हो पूव पछिम केवल ज्ञानी ।
चौथो काल सदा रहै जी, हो तह की हमस्यौ कहि ज्यो वातो ।।१०।।

हो नारद वोल्यो जादौ राऊ, सुणौ कथा करि निर्मल भाऊ ।
सुभ को सचौ है सही जी, हो पूरव पछिम केवल जाणी ।
समोसरण वारा सभा जी, हो भवियण सुणै जिणेसुर वाणी ।।११।।

हो जहि भवि को मन पडै विवासै, वाणी सुणतां सासौ नासै ।
सभा लोग सतोषि जै जी, हो जती सरावग दह्न विधि धर्म ।
आगम अध्यातम कह्या जी, हो कथा सुणत माजै सहु भर्मो ।।१२।।

हो सुणी जादमा नारद वातो, हो हरिष्यो चित्त विकास्यौ गातो ।
सभा लोग सतोपिया जी, हो नारद राज लोक मै चाल्यो ।
सतिभामा घरि संचरौ जी, हो गर्बवती तिहि दिसै न्हाल्यो ।।१३।।

हो रिषि भासै सति भामा राणी, हो करि सिंगार तू अति गरवाणी ।
गरव पहारी छै दई जी, हो देव गुरा की भगति न जाणी ।
मदि मोह सूझै नही जी, हो मूरिख आपो आप वखाणै ।।१४।।

सत्यभामा का उत्तर

हो देवि भणै मुनि जे तप लीजे, हो तप करि चारि कषायन कीजै ।
मान करत तप फल नही जी, हो मान विना जिणवरि तप भास्यौ ।
तुम्ह तौ मान तजो नही जी, हो कहिनै जी मुकति किसी परिजास्यौ ।१५।

हो भणै रिपिसुर देवि अभागी, हो हमनै जी सीख देण तू लागी ।
पाप धर्म जाणै नही जी, हो मुझ नै जी मान दान सहु आपै ।
सुर नर सहु सेवा करै जी, हो तीनि लोक मुझ थे सहु कपै ।।१६।।

हो मुनिस्यौ भणै नारायण घरणी, हो उपसम धर्म जती की करणी ।
सत्रु मित्र सम करि गिणै जी, सोनौ तिणौ बराबरि जाणौ ।
आणई छोड भोजन करै जी, हा सो मुनिवर पहुचै निर्वाणि ।।१७।।

हो सुणी वात नारद पर जलियो, हो जाणिकि ध्रत अग्निस्यौ मिलियौ ।
मन मैं चिता अति करै जी, हो भामा लेई समद मैं रालौ ।
कामिणि हत्या थे डरौ जी, हो कै इह अग्नि मधि परिजालौ ।।१८।।

हो नारदि हियडै वात बिचारी, हो नाराइण आणौ नारी ।
इहि थे रूपि जु आगली जी, हो सौकि तणै दुखि घणै विसूरै ।
राति दिवसि कुढि बौ करै जी, हो बहुडि पराया मरमन चूरै ।।१९।।

नारद ऋषि का प्रस्थान

हो बात विचारि रिपीसुर चाल्यौ, हो विद्याधर को देस निहाल्यौ ।
भामा सम कामिणी नही जी, हो मन मैं भयो अधिक अभिमानो ।
हियडै चिता बहु करै जी, हो तजी नीद अस पाणी धानो ।।२०।।

हो भूमि गोचरी राजा ठामो, हो पटण देस नग्र गढ ग्रामो ।
नारद परिथी सहु फिरी जी, आयौ चलि कुंडलपुर ठाए ।
दीठी सोभा नग्र की जी, हो राज करै तहा भीषम राए ।।२१।।

हो श्रीमती पटि तिया घरि सोहै, हो रूप कला सुर सुंदरि मोहै ।
रूप पुत्र रूपहि भलौ जी, हो सुता रुखिमणी रूपि अपारो ।
सुर्ग अपछरा सारिखी जी हो, सोभै भीषम कै परिवारे ।।२२।।

हो भीषम भगनी सुमति हि आलै, हो आयो जी मुनिवर भिक्षा काले ।
भोजन दीन्है भगतिस्यो जी, हो तिहि औसरि रूकमिणी पधारी ।
मुनिवर बद्यो भाउस्यो, हो भुवाजी जोबनि देखि कुमारी ।।२३।।

हो मुनिवर रूपिणि भुवा बुझै, हो स्वामी जी ज्ञान तीनि तुम्ह सूझै ।
कौण रूपिणी परणिसी जी, हो मुनिवर भणै अवधि तहि जाणो ।
किस्न तीया याह होई सी जी, हो सोला सहस ऊपरि पटराणी ।।२४।।

हो बात कही मुनि वन मैं गईयो, हो सुमति राऊ भीषम स्यो कहियो ।
रूपिणि वर हरि मुनि कह्यौ जी, हो भषिम हसि बोल सुणि बाई ।
किस्न नीच घरि पोषियो जी, हो अब लग ग्वाले गाई चराई ।।२५।।

हो सोमलपुर सोभै सविसालो, हो राजकरै भेउज भोवालो ।
मद्रीराणी तिहि तणै जी, हो तिहि कै पुत्र भलो सिसपालो ।
तीनि चखिस्यो जाइयो जी, हो दुतिया जी चंद्र जिम वधै कुमारो ।।२६।।

हो भेषज राजा मुनिवर बूझै, होसी जी ज्ञान तीनि तुम्ह सूझै ।
चषि तीजो किम जाइ सीजी, हो मुनिवर बात रावस्यो भासौ ।
तिह कै हाथि मरण सहजी, हो हाथ छिवत चखि तीजो जासी ।।२७।।

हो मद्री कै मनि उपनी सका, हो चाली जी पुत्र लीयो करि अका ।
बालक नै लीयो फिरै जी, हो आई जी चली द्वारिका द्वाए ।
हाथ लगायो किस्न को जी, हो तीजो नेत्र सो गयो पलाए ।।२८।।

हो हाढी सम जोडै हाथो, हो पुत्र भीख दिहु जादोनाथो ।
हसि नाराईण वोलियो जी, हो गुनहु एकसउ छोडो मातो ।
बोल हमारो छै सही जी, हो पाछै करो सहोस्यो धातो ।।२९।।

हो पुत्र लेई मद्री घरि आई, हो तिहनै पुत्री दीन्ही हो वाई ।
बोल हमारो किम चलै जी, हो महाबली सोभै सिसपालो ।
रूपकला गुण चातुरी जी, हो दुर्जन दुष्ट तणै सिर सालो ।।३०।।

नारद का कुंडलपुर आगमन

हो तहि ग्रौसरि तहा नारद गईयौ, हो भीषम वदि विनौ वहु कीयौ ।
सिंघासण थानक दीयौ जी. हो रूप कुमार मुनीश्वरि दीठ्ठौ ।
मन मैं सुख पायो घणौ जी, हो ग्रैसौ रूप नवि घरणी दीठ्ठौ ।।३१।।

हो नारदि मन मैं बात विचारी, हो रूपि वहण जै होइ कवारी ।
काज हमारा सहु सरैं जी, हो खिण एक भीषम रावलि गईयौं ।
नमस्कार राण्या कीयौ जी, हो कनक सिंघासण वैसणौ दीयो ।।३२।।

हो नारद ग्राइ रूपिणि वेस्यो, हो देखि रूप हियडै ग्रानद्यो ।
नारदि दीन्ही ग्रासिका जी, हो होजे किस्न तणी पटराणी ।
सोला सहस सेवा करै जी, हो सुणी रूपणी नारद वाणी ।।३३।।

हो मुनि विचार मन माहि कीयौ, हो रूपिणी तणौ रूप लिखि लीयो ।
किस्न सभा तक्षण गयौ जी, हो नारायण वद्यो मुनिराज ।
मनी लेख हरिनै दीयौ, हो देखि लेख मनि भयौ उछाहो ।।३४।।

नारद द्वारा श्रीकृष्ण के सामने प्रस्ताव

हो नारायण मुनिस्यौ हसि बालै, हो नही कामिणी इहि कै तोलै ।
नारि ग्रसी नवि रवि तलै जी, हो ईस्यौ रूप होइ देव कुमारी ।
नाग ग्रपछरा सारिखी जी, हो कै यौह रूप जोतिमा नारी ।।३५।।

हो नारद बोलै हरी नरेसो, हो कुंडलपुर शुभ वसै ग्रसेसो ।
भीषम राजा राजई जी, हो तिह कै सुता रूपिणी जाणै ।
तासु रूप लिखि ग्राणियो जी, हो सोभै नाराइण कै राणि ।।३६

हो तौ लग भीषमि लगन लिखायौ, हो कन्या केरौ व्याहु रचायो ।
हो रूपिणि चिंति चिंता भई जी, भूवा जाणि कवरि को भाउ ।
वचन मुनीसुर की सही जी, हो किस्न बुलावण रच्चौ उपाउ ।।३७।।

हो समाचार सहु छानै लिखिया, हो गूढ वचन ते मुख थे कहिया ।
जाहु दूत द्वारामती जी, हो लेख हाथि नाराईण देज्यौ ।
रूपिणि चिंता वहु करै जी, हो व्योरौ मुखा खानि सहु कहिज्यौ ।।६८।।

हो भीषम
भोजन दी
मुनिवर

हो मुनि
कोण
किस्न

हो
रूपि
किर

हो

पुकारो।
लागो।
लागी।

हो सुणी वात हसि किस्न वखाणौ, हो मेरा जी वल को मरम न जाणौ।
देखि तमासा हम तणा जी, हो ताड व्रिप देखिउ परचडौ।
हरि वाणस्यौ छेदियोजी, हो पडिऊ भूमि भयौ सतखडो ।।४७।।

हो रूपिणि वात हरिस्यौ भासी, हो भाई रूप हमारो राखी।
इहु पसाऊ हमनै करो जी, हो मान्यौ जी किस्नि तीया को वोलो।
अभै दान दीन्हौ सही जी, हो रूपिणि को मन भयौ अडोलो ।।४८।।

हो तालग वाहर नीडो आई, हो रूपिणि दिसि तूह घर भाई।
सिसिपाला दिसि हो फिरौ जी, हो हरिस्यौ भणै आइ सिसिपालो।
खाटो मीठो अव लहै जी, हो भागौ कहा छूटिसी ग्वालो ।।४९।।

हो किस्न भणै तू जाह सिसपालो, हो तेरो घात न करस्यु वालो।
वोल हमारौ ना चलै जी, हो माता मद्री वोल वुलाओ।
गुनह एकसउ छोडिस्यौ जी, हो पाछै जी मरण तुम्हारौ आयो ।।५०।।

हो हरिस्यो भणै वहुडि सिसपाल, हो आयोजी सही तुम्हारो काल।
हा हा कीया न छुटिसि जी, तू छै नीच ग्वाल को ग्वालो।
देम देस को काढियौ जी, हो सिघ गुफा क्यो पैसे स्यालो ।।५१।।

हो वोल एकसऊ गिण्या असेसो, हो खैच्यौ धनष कान लगै कैसो।
सिर छेद्यो सिसपाल को जी, हो रूप कुमार साथि करि लीयो।
रेवत पर्वति ते गया जी, हो व्याहु रूपिणि कैसो कीयो ।।५२।।

द्वारिका आगमन

हो हलधर किस्न द्वारिका आया, हो जीत्या जी सत्रु निसा ण वजाया।
हलधर कै थानकि गया जी, हो किस्नि लीयौ रूपिणि उगालो।
महा सुगंध सुहाउणौ जी, हो गयो जहां सतिभामा थानो ।।५३।।

हो वधित वो मिस्या करि सोवै, हो वास सुगध भ्रमर मन मोहो।
हो भामा ओचल छोडियो जी, हो हाथि उगाल लेई वहु वासो।
हम ये काई छिपायो जी, हो जाग्यो किस्न कीयो वहु हासो ।।५४।।

हो चीरी लै सो चल्यो बसीट्ठो, हो नग्र द्वारिका सुंदरि दीठी ।
नाराईण घरि सचरीउ जी, हो चीरो देई विनो बहुकीयो ।
समाचार कह्या मुख तणाजी, हो वाचत लेख हरिषियो हीयो ।।३६।।

हो माघ उजाली आठै जाणी, हो गोधलूक सुभ लग्न बणाग्यो ।
वेगा हो वचन मे आईज्यो जी, हो नागि पूजिवा रूपिणि आवै ।
ले करि घराह पधारिज्यो जी, जे बात तुम्हरै मनि भावै ।।४०।।

हो लग्न दिवस को आयो कालो, हो व्याहु करण चाल्यो सिसपालो ।
सजन सेना साखती जी, हो वाचि लेख हरि वन मैं आयो ।
नागदेव थानक जहां जी, हो हरी आपणै रूप छिपायो ।।४१।।

हो ताहि औसरि रूपिणि तहा आई, हो नाग देव की पूज रचाई ।
हाथ जोडि बिनती करै जी, हो जे छै मकल देवता साचो ।
नाराइण अव आइज्यो जी, हो फुरिज्यो सही तुम्हारी वाचो ।।४२।।

रूक्मिणी हरण

हो नाग बिंब पाछै हरि बैट्ठो, हो सुणी बात हसि तखिण उठिऊ ।
नेत्र नेत्रस्यौ मिली गया जी, हो उपरा उपरी बहुत सनेहो ।
रथि वैसाणी रूपिणी जी, हो चल्यो द्वारिका नरहरि देउ ।।४३।।

हो मेषज पुत्र चढिउ सिसपालो, हो जाणिकि उलटिउ मेघ अकालो ।
सूर किरिणि सूझै नही जी, हो बखतर जीन रगावलि टोपो ।
होका हाकि सुभट करै जी, हो रूपिणि हरण भयो अति कोयो ।।४४।।

हो कुंडलपुर मे लाधी सारो, ठाइ ठाइ वपडि पुकारो ।
रूपिणि नै हरि ले गयो जी, हो राजा जी भीषम बाहर लागो ।
साठि सहस रथ जोतिया जी, हो तीनि लाख घोड़ा खुर वागो ।।४५।।

हो साठि सहस राज घटा वागी, हो बाहर सबल पुठि बहु लागी ।
रूपिणि नै डर ऊपनो जी, हो नाराइण स्यो भणै कुमारी ।
दल बल साहण आईयाजी, हो स्वामी किम होईसी उवारो ।।४६।।

हो सुणी वात हसि किस्न वखाणी, हो मेरा जी बल को मरम न जाणी।
देखि तमासा हम तणा जी, हो ताड ब्रिष देखिउ परचडो।
हरि बाणस्यौ छेदियौजी, हो पडिऊ भूमि भयो सतखडो ॥४७॥

हो रूपिणि वात हरिस्यो भासी, हो भाई रूप हमारो राखी।
इहु पसाऊ हमनै करो जी, हो मान्यौ जी किस्नि तीया को बोलो।
अभै दान दीन्हो सही जी, हो रूपिणि को मन भयो अडोलो ॥४८॥

हो तालग वाहर नीडी आई, हो रूपिणि दिसि तूह धर भाई।
सिसिपाला दिसि हो फिरौ जी, हो हरिस्यो भणै आइ सिसिपालो।
खाटो मीठो अव लहै जी, हो भागो कहा छूटिसी ग्वालो ॥४९॥

हो किस्न भणै तू जाह सिसपालो, हो तेरो घात न करस्यु वालो।
बोल हमारो ना चलै जी, हो माता मद्री बोल बुलाओ।
गुनह एकसउ छोडिस्यो जी, हो पाछै जी मरण तुम्हारो आयो ॥५०॥

हो हरिस्यो भणै वहुडि सिसपाल, हो आयोजी सही तुम्हारो काल।
हा हा कीया न छुटिसि जी, तू छै नीच ग्वाल को ग्वालो।
देम देस को काढियो जी, हो सिष गुफा क्यो पैसे स्यालो ॥५१॥

हो वोल एकसऊ गिण्या असेसो, हो खैच्यो धनप कान लगै कैसो।
सिर छेद्यो सिसपाल को जी, हो रूप कुमार साथि करि लीयो।
रेवत पर्वति ते गया जी, हो व्याहु रूपिणि कैसो कीयो ॥५२॥

द्वारिका आगमन

हो हलधर किस्न द्वारिका आया, हो जीत्या जी सत्रु निसा ण बजाया।
हलधर कै थानकि गया जी, हो किस्नि लीयो रूपिणि उगालो।
महा सुगध सुहाउणो जी, हो गयो जहां सतिभामा थानो ॥५३॥

हो वधित वो मिस्या करि सोवै, हो वास सुगध भ्रमर मन मोहो।
हो भामा ओचल छोडियो जी, हो हाथि उगाल लेई वहु वासो।
हम थे काई छिपायो जी, हो जाग्यो किस्न कीयो वहु हासो ॥५४॥

हो सतिभामा केसौस्यौ रिसाई, हो ग्वाल पाण की बात न जाई ।
अभिप्राइ मनि जाणियो जी, हो जै तुम्ह आणी परणि कुमारी ।
हमनै तिया दिखालि ज्यौ जी, हो जै छै तुम्हनै अधिक पियारी ।।५५।।

हो बोलै किस्न भली यह बातो, हो वन मै चलहु देविकी जातो ।
रूपिणि पूजा आईसी जी, हो पाछै केसौ मंत्र उपायौ ।
बन मै रूपिणि ले गयो जी, हो धोलो खीरोदक फहरायौ ।।५६।।

हो बैणी देवी कै थानै, हो ऊपरि फूलदीया असमाने ।
सतिभामा आगम भयौ जी, हो देवी भोखै चरणा लागी ।
पूजा करिसा वीनवै जी, हमनै हरि कै करौ सुहागी ।।५७।।

हो हसि बोलै हरि सुणि सतिमामा, हो मनवाछित तुम्ह पुरवै कामौ ।
सकल देवि इह सुख करै जी, हो जाणि कूड सहिभामा स्यौ ।
ए प्रपच सहु तुम्ह तणा जी, हो हाड हमारा जीभा नै हासै ।।५८।।

हो रूपिणि नमसकार उठि कीयौ, हो गौरा तण भामा नै दीयौ ।
दुवै सौकि साया मिली जी, हो भामा का मंदिर कै काठै ।
मदिर महा कराईयो जी, हो रहे रूपणी दीन्हो मानो ।।५९।।

हो एक दिवसि हरि मत्र ऊपायौ, हो दरजोधन घरि लेख पठायो ।
जाह दूत हयणापुरि जाहो, थारै जी पुत्री छै दधि माला ।
रूपिणी भामा सुत भणै जी, हो तिहनै इह परणाज्यो बाला ।।६०।।

हो दूत चाल्यौ हयणापुरि गईयौ, हो लेख हाथि दरजोधन दीया ।
तुम्ह छौ मोटा राजईजी, हो मान्यौ बचन भयौ अहलादौ ।
राजा दूत सतोषियौ जी, हो वचन हरी का महा प्रसादौ ।।६१।।

हो मांगी जी बिदा दूत घरि आयौ, हो नाराईण नै लेख बचायौ ।
नाराईण मनि हरिषीयौ जी, हो हरी दूत पठयो तिया थाने ।
रूपिणि भामास्यौ कह्यो जी, हो कर्म आपणौ तुम्ह पतिवाणो ।।६२।।

हो जो पहली तिया पूत जणेसी, सो दूजी को सिर मुडेसी ।
दरजोधन धिया परणिसीजी, हो मानी बात हरी की भाखी ।
सोक्या होड ईसी पडी जी, हो हलधर जेट्ठ दीयौ तहा साखी ।।६३।।

हो चोथै स्तान रूपिणीयौ, हो रिति को दान किस्नि जी दीयौ ।
रहिऊ गर्भ भीषम सुता जी, हो भामा गर्भ रह्यौ तिहि बारो ।
दहु सौकि मन हरिषियो जी, हो भया महोछा मगलचारो ।।६४।।

हो गर्भ तणा पूरा नव मासो, हो रूपिणि पूगी मन की आसो ।
पुत्र महाभड जीइयोजी, हो सूतो जहा देवकी कुमारो ।
दोब दही थाली भरी जी, हो तखिण गयो बघाऊ हारो ।।६५।।

सत्वभामा एवं रूक्मिणी के पुत्रोत्पत्ति

हो सतिभामा जायौ सुत भानौ, हो गयौ बधाऊ हरि कै थाने ।
रूपिणि सेवक दिट्ठि गई जी, हो सेवकि हरि नै दही बदायौ ।
पुत्र रूपिणी कै भमो जी, हो दान मान सेवक नै दीया ।।६६।।

हो पाछै सति भामा कै आयो, हो दान मान तिहिनै पणि दीयौ ।
रली रग हूवा घणा जी, हो नग्र द्वारिका भयौ उछाहो ।
घरि घरि गावै कामणी जी, हो मनि हरिक्षा सहु जादो राउ ।।६७।।

हो घूमकेत को खल्यौ विमानो, हो गगन पथि द्वारमति थानौ ।
रूपिणि मन्दिर ऊपरै जी, हो रह्यो खूचि नवि चालो आघौ ।
सत्रु मित्र मुनि छै सही जी, हो बितर चित्तहि विचारै बातो ।।६८।।

प्रद्युम्न का हरण

हो उतरि भूमि देखियौ कुमारो, हो मन माहै सो करै बिचारो ।
सत्रु हमारो इहु सही जी, हो मात कल्हा सो लीयो उचाए ।
गगनि पथि ले सचरिऊ जी, हो बालक राल्यो सागर मध्ये ।।६९।।

हो पाछै चित्ति विचारी बातो, हो मास पिंड इहु करौ न घातो ।
वन भै भीत सिघ घणा स्यालो, ताक्षिक सिला तलि चपियोगी ।
हो बिन्तर गयो जहां निज आलौ......................।।७०।।

काल संवर को बालक की प्राप्ति

हो तिहि औसरि काल सजर आयौ, हो खल्यो विमान न चलै चलायो ।
तक्षण धरती ऊतरी जी, दीठी जी सीला वहु लेई ऊसासो ।
करस्यो उपै हरी करी जी, हो माहै बालक करै विकासो ॥७१॥

हो विद्याधरि सो बालक लीयौ, हो जिम निधि लाधा हरिषै हीयौ ।
सामोद्रिक गुण आगलो जी, हो कचण माला बुलाई राणी ।
बालक लौ हु तुम्ह नै दीयो जी, ही राणी बाले निर्मल वाणी ॥७२॥

हो थारै जी पुत्र पाचसै सारौ, हो इहि बालक कौ करै प्रहारो ।
ते दुख जाई न मै सह्या जी, हो सुणि बोलो सवर नरनाहो ।
हम पाछै इहु राजई जी, हो जाणौ जी सही हमारी बोलो ॥७३॥

हो कचन माला बालक लीयौ, हो घरि चालण कौ उदिम कीयौ ।
रचि विमाण सोभा धणी जी, हो घटा घूघर मोती माला ।
बालक नै ले चालीया जी, हो मेघकूट गढ अधिक रसालो ॥७४॥

हो राजा जी बालक मदिरि आण्यौ, हो बालक जन्म महोछौ ठाण्यौ ।
दीन दुखी यो देक्षा घणा जी, हो राजा जी मन मै करै विचारो ।
कामदेव औतार छै जी, हो नाम दीयौ परदमन कुमारौ ॥७५॥

हा इह तो कथा इहा हो जाणौ, हो नग्र द्वारिका बात बखाणो ।
जे दुख पाया रूपिणी जी, हो बालक सेज्या थानि न दीसै ।
रूदन करै हरि कामिणी जी, हो घूणै सीस दुवै कर पीटै ॥७६॥

हो राजा जी भीखम तणी कुमारी, हो हिइडो सिर कूटै अति भारी ।
दीसै जी खरी डरावणी जी, हो सुणी बात किस्न कै दिवाणि ।
भुख तबोल हरि रालीयोजी, हो हाहाकार भयौ असमाने ॥७७॥

हो हरि जी बात विचौर जोई, तीन खंड मे बली न कोई ।
पुत्र हमारौ जो हरै जी, हो हरि रूपणि कै मन्दिर आयो ।
सात वचन प्रतिबोध दे जी, हो ठाई ठाई लिखि लेख पठायो ॥७८॥

नारद ऋषि का आगमन

हो तौ लग नारद मुनिवर आयौ, हो सुणी बात तिहि बहु दुख पायो ।
रूपिणि मदिर सचरिउजी, हो मुनि आगम सुणि हरि तिया जागी ।
नमसकार विधि स्यौ कीयौ जी, हो स्वामी हो विधना जी करी अभागी ।।१७६।।

हो नारद जपे सुणहु कुमारी, हो उपजै विणमै इहि ससारी ।
दुखि सुखि जीव सदा रहै जी, हो पाप पुण्य द्वै गल न छोडै ।
सहै परीसाह तप करै जी, हो पहुचे मुकति कर्म सहु तोडै ।।८०।।

हो पुत्री हो आकासा गामी, हो बूझिसी जाइ केवली स्वामी ।
दीप अढाई ह्नौ फिरौ जी, हो मनि विसमाई करै पतराणी ।
वालक सोधौ हो करुजी, हो नारद नाम सहीस्यौ जाणी ।।८१।।

नारद का प्रस्थान

हो वात कही मुनि गिगनाह चढियौ, हो जाणिकि सुगि गरड पखि उडियौ
नदी नग्र छाड्या घणा जी, हो पूर्व विदेह पुहकली देसो ।
पु डरीक अति भलौ जी, हो नारद नग्री कीयो प्रवेसो ।।८२।।

सभा लोक अचिरिज भयौ जी, हो पदमनाम पुछै चकेसो ।
हो श्रीमघर तहा जिणवर नाथो, हो वद्या चरण केइ सिरि हाथो ।
इह सरूप माणस तणौ जी, हो कीट समान नर कौण सुदेसो ।।८३।।

हो सुणीहु चक्रेसुर केवल वाणी, हो दखिण दिसा मेर की जाणी ।
भरथ षेत्र द्वारामती जी, हो नवमौ हरि तिहि कै सुत जायौ ।
धूमकेत हरि ले गयो जी, हो तासु गए सै बूझण आयौ ।।८४।।

हो पदम नाम बूझै भोवालो, हो कौण बैर थे हरियो वालो ।
पूर्व भवातर सहु कहौ जी, हो भणै केवली सुणौ हु नरिदो ।
नख वेढ्ठौ नारद सुणै जी, हो कहौ पाछिलौ सहु सनबधो ।।८५।।

प्रद्युम्न के पूर्व भावों का वर्णन

हो मगह देस तहा सालीग्रामो, हो विप्र सोमदत्त वसै सट्ठामो ।
अग्नि वाई सुत तिहि तणा जी, हो विद्या गर्व करै अति भारी ।।
मुनिवरस्यौ भेटा भई जी, हो मुनिवर भासै अवधि विचारी ।।८६।।

हो विद्या गर्व न कीजै वालो, हो इहि नगरी वनि या तुम्हस्यलो ।
चर्म जोत भखिण कीयो जी, हो मइ वेदना मरणह पायो ।
सोमदत्त घरि उपना जो, हो खाल जाट वरि देखो जाए ।।८७।।

हो छोडि मिथ्यात अणूव्रत लीया, हो दान चारि तिह पात्रां दीया ।
करूणा समिकित पालियौ जी, हो मरण समै तजि यासी अन्नो ।
प्राण समाधिस्यो छोडियाजी, हो हुआ देवते सुगि उपनो ।।८८।।

हो पूरी आऊ तहां थे आया, हो सागर सेट्ठि तणै सुत जाया ।
खेत्र भरथ अमरापुरी जी, हो पूरण मणिभद्र तसु नामो ।
व्रत पाल्या श्रावक तणाजी, हो छूटा प्राण गया सुरठामो ।।८९।।

हो पूरी आऊ तहां थे भईया, हो नग्र अजोध्या ते अवतारिया ।
हेम नाम राजा वसै जी, हो मधू कीट उपना तसु नंदो ।
राजा हो मनि हरिषिऊ भयौजी, हो रूपकला गुण पून्यौ चदो ।।९०।।

हो हेम भूपती दिक्षा लीनी, हो राज विभूति मधु नै दीन्ही ।
राजा पिता कौ भोगवैजी, हो एक दिवसि वनि क्रीडा जाए ।
भीम महाबलि बसि कीयौ जी, हो वटपुर वीरसेनि कै ठाए ।।९१।।

ही वीरसेन दीन्हौ वहु मानो, हो भोजन वस्त्र सिंघासन थानो ।
मधुकीटक सतोषिया जी, हो मधु राजा चद्राभा राणी ।
वीरसेणि की हरि लई जी, हो मधु अतिबात अजुगता ठाणी ।।९२।।

हो वीरसेणि तव बहु दुख पायौ, हो कामिनी काज अजोध्या आयो ।
तारन मेलै कामिणीजी, हो वीरसेणि मनि करै विचारो ।
तापस का व्रत आचरचा जी, हौ ध्रिग धिग जपै इहु ससारो ।।९५।।

हो मधु व्रति आणियो वधि अन्याई, हो तलवर बोलै सुणहु गुसाई ।
परकामिणि इहु भोगवै जी, हो मधु राजा जंपै तलि यारो ।
इहि नै सूलि पाईज्यो जी, हो अनाई कौ एहु विचारो ।।९४।।

हो चद्राभा मधु सेयी जंपै, हो बात सुणत मुझ हियडौ कंपै ।
बात विचारो आपणी जी, हो हमनैं कहैत किम हरिल्यायौ ।
पर कामिणि तुम्ह भोगवौ जी, हो कोई अन्याई सूली द्यौ जे ॥६५॥

हो तीया वचन सुणि मधुवर वीरो, हो चली कपणी अधिक सरीरो ।
कर्म अजुगतौ हम कीयौ जी, हो पुत्र बुलाइ दीयौ सहु राजो ।
भाऊ सुद्ध सजम लीयौ जी, हो करैं घोर तपु आतम काजो ॥६६॥

हो एक मास कौ धरि सन्यासो, हो उपनौ सर्ग सोलहै वासो ।
इंद्र विभूति सुभोगवैंजी, हो, पूरी आउ तहा थे चाइयौ ।
रूपिणि कै सुत उपनौजी, हो तिहिनैं धूमकेत ले गईयौ ॥६७॥

हो वितरि आणि सिलातलि चंपिऊ, हो तिहि पापी को हीयो न कपिउ ।
आप थानकि गयौ जी, हो कर्म जोगि काल संवर आयौ ।
देखि मिला ऊसास ले जी, हो सिला तलि थे वालक वरी ल्यायौ ॥६८॥

हो कचणमाला वालक लीयौ, हो पूर्वस्नेह महोछौ कीयौ ।
चद्राभासी कचणाजी, हो मघु कौ जीव रूपिणी बालो ।
पूर्व वैरि तिहि हरि लियो जी, हो वितर वीरसेण भोवालो ॥६९॥

हो रूपिणि वालक मुकति गामी, हो सोलाह गुफा जीति होई स्वामी ।
पाछै द्वारिका पहुचिसजी, हो मात पिता नैं मिलिसी जाइ ।
सोलह वर्ष पछै सही जी, हो दरजोधन धिइ परणौ जाए ॥१००॥

हो सहु सनबधि जिणेसुरि कहियो, हो नारदि सुण्यौ वहुत सुख लहियो ।
नमसकार करि चालीयौ जी, हो मेघकूट गढ सवर राऊ ।
कंचणमाला कामिणी जी, हो देखि कवर मुनि भयौ उछाहो ॥१०१॥

नारद का पुन द्वारिका आकर समझना

हो तखिण मुनि द्वारिका गईयौ, हो रूपिणि मंदिरि सचरौ जी ।
हो समाचार व्यौरौ कह्यौ जी, रूपिणि घराह भयौ आनदो ।
गोवलि गूडी ऊछली जी, हो मनि हरिसा सहु जादो नद ॥१०२॥

हो रूपिणिस्यो सुनि वात पयासी, हो सोलह बरस गया घरि आसी।
रीता सरवर जलि भरै जी, हो सूका वन फूलै असमानो ।
दूध पिरै तुम्ह अंचला जी, हो तो जाणी साची सहनाण ॥१०३॥

हो वात सुणी अति हरिखो हीयौ, हो नमसकार नारद ने कीयौ ।
सफल जन्म मेरो कीयो जी, हो इह तौ कथा द्वारिका जाणो ।
कामदेव सवर घरा जी, हो सुणो तासु की कथा वखाणो ॥१०४॥

काल संवर के यहां प्रद्युम्न का बडा होना

हो सिघ भूपतीस्यो करि खाते, हो संवरि राजा माडी राते ।
पुत्र पचसै मोकल्या जी, हो जाहु वेगि सिघ भूपति मारो ।
देखो पोरिप तुम्ह तणो जी, हो ले बीडो चढि चल्या कुमारो ॥१०५॥

हो संघ भूपती आगै हारया, हो केई भागा के रिण मैं मारया ।
सवर दुख पायो घणो जी, हो चाल्यो राऊ दमामो दीयो ।
कामदेव आडो फिरिउजी, हो देखो पिता हमारो कीयो ॥१०६॥

हो गयो काम जहा सिघ नरेसो, हो भरै सुभट भिडिपडै असेसा ।
कामदेव रिणि आगलो जी, हो नागपासि ले राली कामो ।
सिघ भूपती वधियो जी, हो तखिण गयो पिता के गामो ॥१०७॥

हो नमसकार सवर नै कीयौ, हो राजा सिध वधि करि दीयौ ।
संवर घराह वधावणो जी, हो जाण्यौ पुत्रि कीया जे काजो ।
परजा लोक वुलाईया जी, हो साखि देई दीन्हो जुगराजो ॥१०८॥

हो पुत्र पंचसै संवर केरा, हो दुष्ट भउ अति करै घणेरा ।
मैणसरिस जीतै नही जी, हो सोलाह गुफा तहा ले दीयौ ।
वितर निवसै अति घणा जी, हो कातर नर को फाटै हीयो ॥१०९॥

हो कामदेव कै पुन्य प्रभाए, हो वितर देव मिल्या सहु आए ।
करी मैण की वदना जी, हो दीन्हा जी विद्या तणा भडारो ।
छत्र सिघासन पालिकीजी, हो सैथी घनष खडग हथियारो ॥११०॥

हो रत्न सुवर्ण दीया वहु भाए, हो करै बीनती आगै आए ।
हम सेवक तुम्ह राजई जी, हो सोलाह गुफा भले आयौ ।
विंतर देव सतोषिया जी, हो कचणमाला कै मनि भायौ ॥१११॥

हो नमसकार माता नै कीयो, हो राणी अजरामर सुत कहियो ।
रूप मयण कौ देखियो जी, हो मन माहै सा करै विचारो ।
ईसा पुरिस नै भोगवै जी, हो तिहि कामणि कौ फल जमारो ॥११२॥

हो भणै मयणस्यौ छोडी लाजो, हो करि कुमार मन वछित काजो ।
हम सरि कामिणि को नही जी, हो भणै मयण इहु वचन अजुगतो ।
महा नरक कौ कारणौ जी, माता नै किम सेवै पुत्तो ॥११३॥

हो राणी सहु सनवध वखाण्यो, हो राजा तू सिलतलि थे आण्यौ ।
छोलि हमारी घालियो जी, हो इसी बात कौ दोष न कीजै ।
कुखि हमारी कौ नही जी, हो मनुष्य जन्म को लाहौ लीजै ॥११४॥

हो ऊत्तर दीन्हौ रूपिणि बालो, हो राजा जी मस्तकि ऊपरि कालो ।
जीवत माखी को गिलै जी, हो जिहि कौ खाजे लूण रूपाणी ।
तिहि कौ वूरौ न चिंतिजै जी, हो कह्या वचन इम केवल वाणी ॥११५॥

हो राणी भणै राउ डर मानै, हो विद्या तीनि लेहु घौ छानै ।
राऊ न तुम्हस्यौ जीतिसी जी, मैयण भणै सुणि मात विचारौ ।
जुगतौ होई सुहौ करो जी, हो झूठ न जाणौ वोल हमारो ॥११६॥

हो विद्या चढी काम कै हाथो, हो हौ बालक तुम्ह राणी मातो ।
नमसकार करि वीनवै जी, हो ईक माता अरू भई गुराणी ।
विद्या दान दीयौ घणौ जी, हो पुत्र जोगि सो काज वखाणी ॥११७॥

हो कचणमाला वहु दुख करियौ, हो विद्या दीन्ही कामन सरियौ ।
वात दुहु विधि वीगडीजी, हो पत्नी चित्ति न वात विचारी ।
हरत परत दून्यौ गयो जी, कूकरि खावी टाकर मारी ॥११८॥

हो पुत्र पचसं लीया वुलाइ, हो सारहु वेगि काम तैं जाए ।
ते मन मैं हरषा भया जी, हो मयण लेई बन क्रीडा चल्या ।
माझि वाउडी चपियौ जी, हो ऊपरि मोटा पाथर राल्या ।।११९।।

हा कामदेव ते सहु पाकडिया, मयण नग्र मैं आइयो जी ।
हो राणी नेत्र रूधिर अति चूवैं, करि प्रपञ्च तनु पडियौ जी ।
हो हम नैं पापी मैणा विगोवैं, रास भणौ परदवण कौ जी ।।१२०।।

हो राजा आगैं भई पुकारो, हो कोटी भयौ परदमन कुमारो ।
मेरो अंग विलूरियो जी, हो सवरि राइ कोप बहु कीयौ ।
घात करौ परदमन कौ जी, हो सहु सेवक नै दूवौ दीयौ ।।१२१।।

हो सेवक जाई मैयणस्यो लागा, हो केई जी भागा के रिणी मारया ।
आप राउ संवर चढिउजी, हो कामदेव सवर बहु भिडिया ।
विद्या ज्झुज्झ कीयौ घणोजी, हो जाणिकि माता कूंजर जुडिया ।।१२२।।

हो जव राजा की सेना भागी, हो विद्या तीनि तीया पैं मागी ।
राणी मनि विलखी भई जी, हो विद्या तौ ले गयौ कुमारो ।
राजा मन मैं चितवैं जी, हो देखौ राउ तणा व्योहारो ।।१२३।।

हो संबरि वाण जाई नवि सघिउ, नागपासि स्यौ तंक्षण बंधिउ ।
कामदेव रिणि जीतीयौ जी, हो तौ लग नारद मुनिवर आयौ ।
मैयणि मुनी का पद नम्या जी, हो हरिष दुहुं कैं अगिन भावैं ।।१२४।।

हो नारद भणैं मयण सुणि कते, हो तुम्ह तौ जी करियौ काम अजुगतौ ।
स्वामी गुरू किम वधि जै जी, हो पालि पोसि जहि कीया ठाढौ ।
रास चरण नित बंदि जैजी, हो विनौ भगति अति कीजैं गाढो ।।१२५।।

हो सुणी वात राजा छोडिउ, हो नमसकार करि द्वै कर जोडिउ ।
हम थे चूक घणी पड़ी जी, हो सवर राई बहुत सुख पायौ ।
समाचार नारद कहै जी, हो कामदेव नै लेवा आयौ ।।१२६।।

हो घर नै गमन करै हरि बालो, हो गयौ जहां थी कचणमालो ।
चरण मात का ढोकिया जी, हो हमिस्यौ करिज्ये खिमा पसाउ ।
हम बालक तुम्ह पोपिया जी, हो हमनै चलण द्वारिका भाउ ।।१२७।।

हो नमसकार राजा नै कीयौ, हो मान बहुत बहु लौ दीयो ।
हम बालक था तुम्ह तणाजी, हो हम द्वारिका चलण को भाउ ।
भला प्रसाद सु तुम्ह तणा जी, हो पूर्व स्नेह तजो मत राऊ ।।१२८।।

हो रचौ विमाण मुनि बहु मणि जडियो, हो तोडै मयण भूमि गिरि पडियौ ।
बहुडि रच्यो तिहि तोडियो जी, हो नारद भणै न करहु उपाऊ ।
बिलव करण बेला नही जी, हो वरी तुम्हारो भान विवहो ।।१२९।।

विमान पर चढकर द्वारिका के लिये प्रस्थान

हो रच्यौ विमाण महामणि जडियो, हो नारद सहित मयण चढि चलिये ।
नमसकार अवधारि ज्यो जी, हो चढिउ विमान गगनि असमानो ।
नग्र देस सागर नदी जी, हो परवत दीप महागढ थानो ।।१३०।।

हो आगै कैरो देखि वरातो, इह वरात कोणै तणी जी ।
हो एक भणै दरजोधन जानो, नग्र द्वारिका जाईसी जी ।
हो दधिमाला नै व्याहे भानो, रास भणौ परदमण कोसजी ।।१३१।।

प्रद्युम्न द्वारा कौतुक करना

हो भील रूप करि ठाढो आगै, हो चौकी दाण हमारा लागै ।
इह चौकी भीला तणी जी, हो कैरो लोग भणै करि हासी ।
कौण बात घाणकि कही जी, हो इह तौ जी जान हरी कै जासी ।।१३२।।

हो हरि कौ एक द्वारिका गाउ, हो हम घाणक वन खड का राउ ।
कैसो ये हम राजई जी, हो जानी बोलै कायौ लागै ।
साचा बचन तुम्ह भाखि ज्यौ जी, हो दमडो एक अधिक मत मागौ ।१३३।

हो टाडै वस्त भली होई सारो, हो सो लैस्या इहु लाग हमारो ।
तव तुम्ह नै पहुचाई स्या जी, हो जानी बोल्या करि बहु रीसो ।
भली वस्त इह लाडिली जी, हो कहनै जी किस्न पुत्र तिया लेस्यौ ।१३४।

हो मीलरूप बोलै वलिवतो, हो लेस्यौ जी लाडी साही तुरतो ।
सुणि कैरो नै रिस भई जी हो जान लोग घाणक स्यो लागा ।
भल लडाइ जी कीयौ जी, हो लाडी तजि सहि कैरो भागा ।।१३५।।

हो दधि माला विमानि वैसाणे, हो तक्षण गयौ द्वारिका थाने ।
वाहरि वन मैं गम कीयो जी, हो भणै मयण कहि मालाकरी ।
इहु वन कुणक राईयौ जी, हो वन सतिभामा किस्न पियारी ।।१३६।।

हो माया का घोडा करि मयणो, हो मालीस्यौ बोलै सुभ वइणो ।
लहु सोना कौ मूदडौ जी, हो घोडा दोई चराऊण देजौ ।
भूखा दिन दुंहु चहुतणा जी, हो दाम चारि अधिके राले जौ ।।१३७।।

हो घोडा तोडि कीयौ वन छारो, हो माली रावलि गयौ पुकारो ।
भान कुवरस्यौ वीनवै जी, हो घोडा देखण आयौ भानो ।
मयण विप्र वूढो भयौ जी, हो घोडा ले वाढौ चौगानो ।।१३८।।

हो भणै मान वभण कहि मोलो, हो याह घोडा कौ कांयौ मोलो ।
वूढौ वंभण बोलियो जी, हो बार एक तू चढि दोडावै ।
टाट ताजी परखिजै जी, हो मोल कहौ जै तुम्ह मनि भावै ।।१३९।।

हो भानकुमार चढ्यौ हसि घोडै, हो पडिउ भूमि जब घोडौ दोडै ।
वूढौ बंभण बोलियौ, हो तुम्ह तौ कहिज्यौ किस्न कुमारो ।
गदहो कौ असवार छै जी, हो घोडा तणी न जाणै सारो ।।१४०।।

हो भान भणै सुणि विप्र विचारो, हो फेरौ घोडा करि असवारी ।
विप्र वात हसि वोलियौ जी, हो नौसे बरष ईक्यासी लागा ।
कहि जजमान किसी करौ जी, हो देह तणा सगला बल भागा ।।१४१।।

हो भणै भान चढि कर्थं मैरे, हो करि असवारी घोडा फैरो ।
कर्थं पग दे सो चढिऊ जी, हो फैरया जी घोडा चावका दीया ।
आडा ऊभी रालियौ जी, हो माया का घोडा दूरि कीया ।।१४२।।

हो गयौ जती होई जहा पणिहारी, हो कमंडल भरण देहु जादौ मारी।
पाणी सहु कमडलि गिल्यौ जी, हो पणिहारी बहु करै पुकारी।
ग्राणि चौहटै फोडियो जी, हो चाल्या खाल नीरकी घारो ॥१४३॥

हो सतिभामा घरि गयौ कुमारो, भानकुमार व्याहु ज्यौणारो।
विप्र रूप बूढो भयौ जी, हो छिटिक्या होठ निकस्या दतो।
मु ंडि हाथ डगमग करै जी, हो बैठो मडप माहु हंसतो ॥१४४

हो भणै विप्र सुणि भामा बातो, हो मूखां छाती तूटै मातो।
भोजन थारै घरि घणौ जी, हो बंभण ग्रजि ग्रघाई जिमावै।
इंद्री पोखै विप्र का जी, हो तौ मन वंछित ग्रागै पावै ॥१४५॥

हो नमसकार सतिभामा कीयौ, ग्रापौ थाल बैसणै दीयौ।
बैसि विप्र भोजन करौ जी, हो सालि दालि घ्रित घणा परुसे।
भोजन सहु जिरणवार कौ जी, हो थाली भोजन टाकन दीसे ॥१४६॥

हो पाणी ते सगलौ पीयौजी, हो पाछै विप्र सराफज दीया।
लहू भोजन तू पापी णीरे, हो घालि ग्रंगुली करी ऊकारी।
घर ग्रागण छार्दिहि भरयौ जी, हो भद्र गया न जाई सहारी ॥१४७॥

हो पाछै रूप ब्रह्मचारी कीया, हो दीरघ दत यर हरै हीयौ।
स्यामवर्ण बूढौ भयौ जी, हो ग्रायौ वेगि रूपिणी थाने।
नमसकार माता कीयौ जी, हो ग्रचलि चाल्यौ दूध ग्रासमाने ॥१४८॥

हो जती भणै मुझ डोलै काया हो गाढी भोजन ऊपरि माया।
माता भोजन वेगि घो जी, हो वालि चूल्हो जीवन जोगो।
चूल्है ग्रागि वलै नही जी, हो रूपि दुख पुत्र को विजोगो ॥१४६॥

हो लाड नाराइण नै कीया, हो लाडू दोई जती नै दीया।
भूख जाइ छह मास की जी, हो जती भणै मुझ भूख घणेरी।
लाडू च्यारि वहुडि दीयाजी, हो माता भूष न जाइ हमारी ॥१५०॥

हो भणै जती किम विलखी मातो, हो कुण दुख थे दुर्बल गातो ।
हियडा की चिंता कहौ जी, हो रूपिणी मन कौ भणै सतापो ।
चिंता सहु हियडा तणी जी, हो सुणहु बात स्वामी गुरु वापो ।।१५१।।

हो जाया पुत्र असुर हडि लीयो, हो नारदि जाई गएसौ कीयौ ।
श्रीमंधर जिण बूझियौ जी, हो जिणवरि संवर घरांह बतायौ ।
विद्याधन विढवै घणौ जी, हो सोलह वर्ष गया घरि आवै ।।१५२।।

हो स्वामी आजि अवधि दिन केरो, हो अजौह न आयौ बालक मेरो ।
परिपूर दिन आजि कौ जी, हो तहि थे चिंता दुर्बल गातो ।
प्राण जाहि तौ अति भला जी, हो तज्यो तंबोल अन्न सहु नीरो ।।१५३।।

हो जती भणै दुख म करि अयागी, हो हमनै जी पुत्र आपणौ जाणी ।
करौ काजु जो तुम्ह कहौ जी, हो रूपिणि मन मै करै विचारो ।
अवै हीण दीसै जती जी, हो ईसौ पुत्र किम होई हमारो ।।१५४।।

हो बात रूपिणी मन मै आणी, हो मुनि वचन पूगी सहै नाणी ।
दूध अंचला चालीयो जी, हो कामदेव मनि करै विचारौ ।
माता दुख पावै घणौ जी, हो प्रगट रूप तब भयौ कुमारो ।।१५५।।

हो नमस्कार करि चरणां लागौ, हो भीषम पुत्री को दुख भागौ ।
असुरपात आनंद का जी, हो बुझै बात हरिष करि मातो ।
सहु संबर का घर तणी जी, हो मयण मूल को कह्यौ वितांतो ।।१५६।।

हो भणै मात धनि कंचनमालो, हो बालक सुख दीठा बहु कालो ।
मैयण रूप बालक भयौ जी, हो धाई मात का आंचल चूखै ।
क्षिण ठाढौ क्षिणि गिरि पडै जी, हो रोवै हसै क्षणक मै रूसै ।।१५७।।

हो बरष एक दुहूं को डोले, हो वचन सुहावा तोतला बोलै ।
धूलि भरिऊ माता मिलै जी, हो रूपिणि कै मनि भयौ विकासो ।
वालक का सुख भोगया जी, हो मयण मात की पूरी आसो ।।१५८।।

हो तौ लग भामा नारि पठाई, हो गावै गीत द्वारिका सुगाई ।
सिर मूडण रूपिणि तणौ जी, हो मयण भणै मां कौण विचारो ।
गावत आवै कामिणी जी, हो आवै जी सिर मूडिबा हमारो ।।१५६।।

हो पहली जी पुत्र तीय जणेसी, हो सा दूजी कौ सिर मूडेसी ।
पुत्र होउ पैहेली पडी जी, हो कामदेव तब मत्र उपायौ ।
माया की करि रूपिणी जी, हो पौलि द्वारणै वैठी जी ।।१६०।।

हो उपरा ऊपरी मूडि सिर बालो, हो नाक कांन लुणि ले भथालो ।
गावत चाली चौहटै जी, हो ताली पीटि हसै सहु लोगो ।
नाक कान सिर मुंडिया जी, हो कुण विधाता भयौ विजोगो ।।१६१।।

हो सति भामा देख्यौ व्योहारो, हो जेठु वलीस्यौ करै पुकारौ ।
देखि वात रूपिणि घरि जाय, हो देसि बली रूपिणि घरि गइयौ ।
हो देण वहु नै बोलस्या जी, हो विप्र रूप आडौ पडि रहियौ ।।१६२।।

हो हलघर भणै विप्र सुणि भाई, हो छोडि द्वार आघेरौ जाई ।
हलधर स्यौ बंभण भणै जी, हे देव भूख हम परे सताए ।
रूपिणी घणौ जिमाईयौ जी, हो पैंड एक मुझ गयौ न जाई ।।१६३।।

हो हलघर बभण सेथी लागौ, हो उट्ठि विप्र कौ ताण्यौ पागो ।
बैंभणि पग पसारियौ जी, हो गयौ हली कै साथि हि लागो ।।१६४।।

हो छाडि पग बलिभद्र विवासै, हो इहु अचिरज मुझनै वहु भासै ।
इहु दीसै कोई वली जी, हो मयण प्रपंच एक तव कीयौ ।
रूपिणि नै हडि ले चल्यौ जी, हो घालि विमानि गगनि संचरियौ ।।१६५।।

हो वैठ्ठा जादौ सभा दिवाणो, हो कामदेव जपै करि मानो ।
किस्न तीया हडि ले चल्यौ जी, हो तुम्ह सहु राजा विडद वुलावो ।
नेजा बाधै चमर काजी, हो जै वल छै तो आइ छुडावो ।।१६६।।

हो कहिज्यौ जी तुम्ह बलिभद्र भुझारो, हो बाना घालि होइ असवारो ।
रूपणि नै हु ले चल्यौ जी, हो पोरिष छै तो आई छुडाजै ।
कै बाना सह रालि द्यौ जी, हो पाछै जी मुख तु किसो दिखासो ॥१६७॥

हो तुम्ह वसदेव कहै रणिस्तरा, हो विद्याधर जीतिया घणेरा ।
देखौ पौरिष तुम्ह तणौजी, हो नाराइण छै पुत्र तुम्हारो ।
तासु तीया हु ले चल्यौ जी, हो देखौ जी बल छै कितउ एक थारो ॥१६८॥

हो अरजन कहै धनपधर राए, हो तैहि वैराटि छुडाई गाए ।
जै बल छै तो आई ज्यो जी, हो भीम मल्ल तुम्ह बडा झुझारो ।
रूपिणि बाहर लागि ज्यौ जी, हो कै रालि द्यौ गदा हथियारो ॥१६९॥

हो निकुल कुंत सोभै तुम्ह हाथे, हो कहि ज्यो बलि पाडवां साथे ।
अब बल देखौ तुम्ह तणौ जी, हो सहदेव ज्योतिग जाणै सारो ।
कहि रूपिणि किम छूटि सी जी, हो इहि ज्योतिग कौ करहु विचारो ।१७०

हो नाराइण तिहुं खंडा रांणौ, हो राजा मानै सहु तुम्ह आण ।
कहि ज्यो मोटा राजई जी, हो जिहि की कामिणि हडि ले जाजे ।
पाचा मैं पति किम लहै जी, हो पोरिष छै तो आई छुडाजे ॥१७१॥

हो सुणी वात्त जादौ सह कोद्या, हो थर हरि मेरू कुलाचल कप्या ।
नाराइण वहर चढिऊ जी, हो छपन्न कोडि की सेना चाली ।
घुरैह दमामा रिण तणा जी, हो डस्या नाग सहु धरती हाली ॥१७२॥

हो देखि मयण अति वाहर गाढी, हो रूपिणि नारद की नय छाडी ।
विद्यादल सहु सजोईया जी, हो पहिली चोट पयादा आई ।
पाछै घोडा घालीया जी, हो रूंड मुंड अति भई लडाई ॥१७३॥

हो असवारां मारै असवारा, हो रथ सेथी रथ जुडै झुझारो ।
हस्तीस्यौ हस्ती भिडैजी, हो घणौ कहौ तो होई विस्तारो ।
किस्न तणौ सहु दल हण्यौजी, हो नाराइण मनि करै विचारो ॥१७४॥

हो करि दाहिणै गदा जब लीयो, हो तव रूपिणि कौ चमक्यौ हीयो ।
नारद सेथी वीनवैजी, हो अठै पुत्र उहां भरतारो ।
दुहं माहि काइ भरै जी, हो बात दुहु घर जाई हमारो ।।१७५।।

हो नारद आइ किस्नस्यौ बोल्यो, हो कहि नै गदा किणि उपरि तोलै ।
इहु परदमन कुमार छै जी, हो पाछै आई मयण समझाए ।
आयुध सगला रालि द्यो जी, हो चरण पिता का ढोकौ जाए ।।१७६।।

हो हरि परदमन रालि हथियारो, हो मिल्या दुवै आणंद अपारो ।
कुसल समाधि दुहु कही जी, हो बाजै नाद निसाणा धाउ ।
मयण कटक ठाढौ कीयौ जी, हो पुत्र सहित घरि पहुतौ राऊ ।।१७७।।

हो हरि रूपिणि नै मिलियौ नदो, हो सहु जादौ नै भयौ आनदो ।
द्वारामती बधावणौ जी, हो बध्या तोरण मोती माला ।
घरि घरि गावै कामिणी जी, हो घरि घरि नाचै बहु छदि बाला ।।१७८।।

हो गिण्यौ महुर्त लगन लिखायौ, हो कामदेव को व्याहु रचायौ ।
चौरी मडप अति बण्या जी, हो रूपिणि मदिरि होई बधावा ।
सतिभामा विलखी गई जी, हो गावौ कामिणी गीत सुहावा ।।१७९।।

हो दरजोधन कन्या परणावै, हो सजन सगाई लेख पठाया ।
उदधिमाल को माड हो जी, हो मेघकूट तिहा लेख पठायौ ।
विनौ भगति लिखि जुगति स्यौ, हो कचण माला सबर आयो ।।१८०।।

हो कन्या वर कै तेल लगायौ, हो चोवा चदन वस्त्र पैहराया ।
चौरी विप्र बुलाईयौ जी, हो बंभण भणै वेद झुणकारो ।
वेसादर साखी भयौ जी, हो उदधिमाल वर मयण कुमारो ।।१८१।।

हो वर कन्या भावरि फिरि चारे, हो दरजोधन करि गहि ती झारी ।
हाथ छुडावण धीय तणौ जी, हो रथ हस्ती कचण के काणो ।
छत्र चवर दासी घणी जी, हो कामदेव ने दीन्हो दानो ।।१८२।।

हो कामदेव जयमाला व्याह्यो, हो सजन लोक मिल्या तिहि ठाए ।
जथा जोगि पहिराईया जी, हो मास एक तहा रही वरातो ।
भोजन भगति करी घणी जी हो सहु को घरि पहुतौ कुसलातो ।।१८३।।

हो कामदेव कौ भयौ विवाहो, हो रूपिणि कै मनि भयौ उछाहो ।
वहुटल आणो हरिपस्यौ जी, हो दुर्जन दुष्ट न बात सुहाई ।
सजन थाते हरिपीया जी, हो रूपिणि आनंद अंगिन माई ।।१८४।।

हो लोग द्वारिका हरि भो वालो, हो सुख मै जातन जाण्यौ कालो ।
इद्र जेम सुख भोगवैजी, हो नेमिकुमार भयौ वैरागौ ।
वंध्या पसू छुडाईया जी, हो सयम लीयौ व्याहु थे भागौ ।।१८५।।

हो केवल णाणी भयौ जिणदो, हो केवलि पूजा विधिस्यौ इदो ।
समोसरण वारह सभा जी, हो सुरनर विद्याधर सहु आया ।
वाणी उछली केवली जी, हो श्रावक धर्म्म सुणी सहु आए ।।१८६।।

हे हली भणै दे मस्तिक हाथो, हो प्रस्न एक बूझौ जिणनाथो ।
संसौ भाजै मन तणौ जी, हो द्वारामती किस्न कौ राजो ।
केतो काल सुखी रहै जी, हो छपन्न कोडि जादौ सहु साजौ ।।१८७।।

हो जिणवर बोलै केवल वाणी, हो वरस बारहै परलौ जाणी ।
अग्नि दाझि सी द्वारिका जी, हो दीपाइण थे लागै आगे ।
नग्री लोग न ऊवरै जी, हो हलधर किस्न छूटिसी भाजे ।।१८८।।

हो जाणि केवली साची वातो, हो पाया दुख पसीज्यौ गातो ।
केवल भाख्यौ ते सही, हो केसौ भणै धर्म्म सहु कीज्यौ ।
जहि कौ मन वैरागि छै जी, हो छोडि मोहनी दक्षा लीज्यौ ।।१८९।।

हो कामदेव अरु संबु कुमारो, हो जाण्यौ सहु संसारु असारो ।
मांगी सीख पिता तणी जी, हो नेमीसुर पै सजम लीयौ ।
मोह विकल्प सहु तज्या जी, हो सहु परिगह नै पाणी दीयौ ।१९०।।

हो अथिर सपदा रूपिणि जाणी, हो जव साभली जिणेसुर वाणी ।
नाराइण दूक्षो लीयौजी, हो आर्यिका तणा लीया व्रत सारो ।
साडो एक मुक्कतो कीयो जी, हो सहु परिगह को कीयौ निवारो ॥१६१॥

हो मयण मुनीसुर तप करि घोरो, हो घाति अघाति कर्म्म हणि सूरो ।
सिद्धतणा सुख भोगवै जी, हो सौ रूपिणि मरता अन्न निषेध्यो ।
सुर्गि सोलैह देवता जी, हो समिकित कै बलि स्त्रीलिंग छेद्यो ॥१६२॥

ग्रन्थ प्रशस्ति

हो मूलसघ मुनि प्रगटौ लोई, हो अनतकीर्ति जाणै सहु कोइ ।
तासु तणौ सिषि जाणिज्यौ जी, हो ब्रह्मि राइमलि कीयौ बखाणौ ॥१६३॥

हो सोलहसै अठवीस विचारो, हो भादवा सुदि दुतीया वुधवारो ।
गढ हरसौर महाभलौ जी, हो तिमै भलौ जिणेसुर थानो ।
श्रीवंत लोग वसै भला जी, हो देव सास्त्र गुरू राखै मानो ॥१६४॥

हो कडवा एकसौ अधिक पचाणू हो रास रहस परदमन बखाणौ ।
भाव भेद जुवाजी हो, जैसी मति दीन्हौ अवकासो ।
पडित कोई मत हसौ जी, हो जैसी मति कीन्हौ परगासो ॥१६५॥
रास भणो परदवण को जी ।

इति श्री परदमनरास समाप्त ।

कविवर भट्टारक त्रिभुवन कीर्ति

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

कविवर त्रिभुवनकीर्ति

जीवन परिचय एवं मूल्यांकन

विक्रम की १७वी शताब्दी के प्रथम पाद मे होने वाले हिन्दी जैन कवियो में त्रिभुवन कीर्ति दूसरे कवि हैं जिनका परिचय प्रस्तुत भाग मे दिया जा रहा है। सत्रहवी शताब्दी हिन्दी के बीसो जैन कवि हुए हैं जिन्होने हिन्दी मे काव्य रचना करके उसके प्रचार प्रसार में सर्वाधिक योग दिया। वास्तव मे इस शताब्दी के जैन कवि भी प्राकृत, सस्कृत एव अपभ्रंश मे काव्य रचना बन्द करके हिन्दी की ओर आकर्षित हो रहे थे। यही कारण मे एक ही समय मे अनेक कवि हुये जिनका नामोल्लेख भी हिन्दी के इतिहास मे नही हो सका है। उनके विस्तृत परिचय का तो प्रश्न ही पैदा नही होता। त्रिभुवनकीर्ति भी ऐसे ही एक अज्ञात कवि हैं जिनके सम्बन्ध में क्या हिन्दी जगत् और क्या जैन जगत् दोनो ही अपरिचित से हैं।

त्रिभुवनकीर्ति जैन परम्परा के सन्त कवि थे। लेकिन उनके जन्म, माता-पिता, अध्ययन एव दीक्षा के बारे मे कोई परिचय उपलब्ध नही होता। वैसे जैन सन्त का जीवन अपनाने के पश्चात् एक श्रावक को दूसरा ही जन्म मिलता है। वह अपने प्रथम जीवन को पूर्णतः भुला देता है तथा माता-पिता, सम्बन्धी आदि उसके पराये बन जाते हैं। यही नहीं उसका नाम भी परिवर्तित हो जाता है। उसका उद्देश्य केवल आत्मचिंतन मात्र रह जाता है। साहित्य सरचना भी गौण हो जाती है। यही कारण है कि जैनाचार्यों, भट्टारको एव अन्य सन्त कवियो का हमे विशेप परिचय नही मिलता। त्रिभुवनकीर्ति भी ऐसे ही सन्त कवि हैं जिनकी गृहस्थावस्था के सम्बन्ध मे हमे अभी तक कोई जानकारी उपलब्ध नही हुई है।

त्रिभुवनकीर्ति भट्टारकीय परम्परा के रामसेनान्वय भट्टारक उदयसेन के शिष्य थे। इसी परम्परा मे भट्टारक सोमकीर्ति, भट्टारक विजयसेन, भट्टारक कमलकीर्ति एवं भट्टारक यश.कीर्ति जैसे भट्टारक हुए थे जिनका उल्लेख स्वय त्रिभुवनकीर्ति ने अपनी कृतियो मे किया है।[1]

---

१ नदियड गच्छ मझार, रायसेनान्वयि हुया।
श्रीसोमकीर्ति विजयसेन, कमलकीरति यशकीरति हवउ। जीवंधर रास।

भट्टारक सोमकीर्ति अच्छे विद्वान एव साहित्य निर्माता थे । संस्कृत एव हिन्दी देनो मे ही उनकी कृतिया उपलब्ध होती है ।[१] स्वयं त्रिभुवनकीर्ति ने उन्हे "ज्ञान विज्ञानह, आगला शास्त्र तणा भण्डार" के विशेषण से अलकृत किया है ।[२] सोमकीर्ति के शिष्य थे विजयसेन जो पूर्णत आध्यात्मिक संत थे तथा आत्म साधना मे पडित थे क्षमाशील एवं गुणो के राशि थे यही कारण है कि उनका यशः चारो और फैल गया था ।[3] विजयसेन का अन्यत्र वीरसेन भी नाम मिलता है । विजयसेन के पश्चात् यश कीर्ति हुए और उनके पश्चात् उदयसेन ।[४] उदयसेन त्रिभुवनकीर्ति के गुरु थे । त्रिभुवनकीर्ति ने अपने गुरु को चारित्र-भार-धुरंधर, वादीर भजन एव वाणी जन मन मोहक" आदि विशेषणो से सम्बोधित किया है । उदयसेन अपने समय के प्रख्यात भट्टारक थे । वे शास्त्रार्थ करते और अपने मधुर वाणी से सबका अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे । यही कारण है कि स्वय कवि ने भी स्वतः ही इनके चरणो मे रहकर अपने जीवन निर्माण की इच्छा व्यक्त की थी ।

त्रिभुवनकीर्ति ने उदयसेन का शिष्यत्व कब स्वीकार किया इसके बारे मे कोई उल्लेख नही मिलता लेकिन उन्होने अपने गुरु के समीप ही विद्याध्ययन किया होगा तथा शास्त्रो का मर्म समझा होगा । ब्रह्म कृष्णदास ने अपने मुनिसुव्रत पुराण में उदयसेन एव त्रिभुवनकीर्ति का निम्न पद्य में परिचय दिया है—

कमलपतिरिवाभूत्मदुदयाद्यंतसेन ।
उदित विशदपट्टे सूर्यशैलेन तुल्ये ।
त्रिभुवनपतिनाथाह्यिदयासक्तचेता ।
स्त्रिभुवनकीर्तिर्नाम तत्पट्टधारी ।।६२ ।।

---

१. विस्तृत परिचय के लिए देखिये राजस्थान के जैन सन्त व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ३६ से ४० ।

२. ग्रन्थ प्रशस्ति-जम्बू स्वामी रास ।

३. तसु पट्टि अति रूयडा विजयसेन जयवंत ।
तप जप ध्यानं मडिया, क्षमावंत, गुणवंत ।।
मही मंडल महिमा घणा, महीयलि मोटु नाम ।। जम्बूस्वामी रात

४. एक पट्टावली मे विजयसेन को यश कीर्ति बतलाया गया है ।

उक्त परिचय स ज्ञात होता है कि त्रिभुवनकीर्ति उदयसेन के पश्चात् भट्टारक गादी पर सुशोभित हुए थे।

त्रिभुवनकीर्ति की अभी तक दो कृतिया उपलब्ध हुई हैं। ये दोनो ही हिन्दी की रचनायें हैं। त्रिभुवनकीर्ति के नाम से एक और सस्कृत रचना श्रुतस्कध पूजा दि० जन मन्दिर सम्भवनाथ उदयपुर के ग्रन्थ भण्डार मे सग्रहीत है। पूजा बहुत छोटी है लेकिन वह इन्ही त्रिभुवनकीर्ति की है अथवा अन्य किसी त्रिभुवनकीर्ति की इसके बारे मे कोई निश्चित जानकारी नही मिलती।

त्रिभुवनकीर्ति भट्टारक थे। साहित्य एव सस्कृति के प्रचार प्रसार के लिए वे बराबर विहार करते रहते थे। गुजरात, राजस्थान, पजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश एवं देहली आदि प्रदेश इनके विहार के मुख्य प्रदेश थे। यही कारण है इनके काव्यो की भाषा पूर्णत राजस्थानी अथवा गुजराती न होकर गुजराती प्रभावित राजस्थानी है।

जीवन्धर रास

त्रिभुवनकीर्ति की प्रथम रचना "जीवधर रास" है। यह एक प्रवन्ध काव्य है जिसमें 'जीवधर' के जीवन को प्रस्तुत किया गया है। जीवधर का जीवन जैन कवियो को बहुत प्रिय रहा है। अपभ्र श, सस्कृत एव हिन्दी के कितने ही कवियों ने उसके जीवन को अपने अपने काव्य मे छन्दोवद्ध किया है। ऐसे कृतियो मे महाकवि हरिचन्द्र का जीवधरचम्पू, भट्टारक शुभचन्द्र का जीवधर चरित्र, महाकवि रइघू का जीवधर चरिउ (अपभ्र श) ब्र० जिनदास का जीवधर रास, भट्टारक यश,कीर्ति का जीवधर प्रबन्ध, दौलतराम कासलीवाव का जीवधर चरित्र (सभी हिन्दी) के नाम उल्लेखनीय है। त्रिभुवनकीर्ति का जीवधर रास भी उसी 'शृंखला' मे निबद्ध एक प्रबन्ध काव्य है।

जीवन्धर रास सवत १६०६ की रचना है।[1] रचना स्थान कल्पवल्ली नगर

---

१. श्री कल्पवल्लीनगरे गरिष्ठे, श्रीब्रह्मचारीश्वर एव कृष्णः।
कंठावलव्यूर्जितपूरमल्ल. प्रवर्द्धमानो हितमातनोति ॥ ६८ ॥
मुनिसुव्रत पुराण

है जो १६ वी १७ वी शताब्दी मे साहित्य निर्माण का प्रमुख केन्द्र था। ब्र० कृष्णदास ने भी कल्पवल्ली नगर मे ही मुनिसुव्रत पुराण की रचना की थी।[2]

जीवधर रास प्रवन्ध काव्य है। जीवधर उसका नायक है। जीवधर राजपुत्र है लेकिन उसका जन्म श्मशान मे होता हे। उसका लालन पालन उसकी स्वय माता द्वारा न होकर दूसरी महिला द्वारा होता है। युवा होने पर जीवधर पराक्रम के अनेक कार्य करता है। अन्त में अपना राज्य प्राप्त करने मे भी सफल होता है। काफी समय तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् वह वैराग्य धारण करता है और अन्त मे कैवल्य प्राप्त करके निर्वाण का पथिक वन जाता है। पूरी कथा निम्न प्रकार है—

कथा भाग

एक वार जव महावीर राजगृह आये तो आये तो राजा श्रेणिक अपने प्रजाजनो के साथ उनके दर्शनार्थ गये। मार्ग मे जव राजा श्रेणिक ने एक गुफा मे समाविस्थ मुनि के सम्बन्ध मे जानना चाहा तो भगवान महावीर ने उस मुनि को जीवधर कहा तथा उसके जीवन का निम्न प्रकार वर्णन किया—

जम्बूद्वीप मे भरत क्षेत्र के हेमागढ़ देश की राजधानी थी राजपुरी नगरी। उसके राजा का नाम सत्यधर एव राणी का नाम विजया था। उनके दो मन्त्री थे। एक काष्ठागार एव दूसरा धर्मदत्त। एक वार वहाँ एक अवधिज्ञानी मुनि का आगमन हुआ। वे सव उनकी वदना के लिए गये मुनि ने सभी को नियम दिये। एक भारवाह ने भी मुनि से व्रत देने की याचना की। मुनि श्री उसे पूर्णिमा के दिन ब्रह्मचर्य व्रत पालन का नियम दिया। उसी नगर में दो वेश्याएँ थी एक पद्मावती एवं दूसरी देवदत्ता थी। एक दिन जव वह लकडी का भारा लेकर जा रहा था तो पद्मावती उसे देखकर क्रोधित हो गयी और उस पर थू के दिया। तथा कहा कि उसके शरीर का मोल पांच दीनार है। भारवाह गरीव था लेकिन वेश्या के कहने को सहन नही कर सका। उसने पाच दीनारो का सग्रह किया और वेश्या के पास चला गया। उस दिन पूर्णिमा थी इसलिये उसका लिया हुआ व्रत भंग हो गया।

---

२ कल्पवल्ली मझार संवत सोलछहोत्तरि।
राम रच्यउ मनोहार रिद्ध हयो सघहवरि॥

एक बार रानी ने पाच स्वप्न देखे। प्रातः काल होने पर राजा ने जब स्वप्नो का फल बतलाया और कहा कि रानी के पुत्र होगा किन्तु उसका पिता यदि उसका मुख देख ले तो तत्काल उसकी मृत्यु हो जावेगी। इससे रानी एव राजा दोनो को ही गम्भीर चिन्ता उत्पन्न हुई। गर्भ बढ़ने लगा और रानी को आकाश भ्रमण की इच्छा हुई। राजा ने मयूर यत्र की रचना करके रानी की इच्छा पूरी की। राजा रानी के प्रेम मे ही रहने लगा और समस्त राज्य काष्टांगार को सौंप दिया। लेकिन काष्टागार को इतने से ही सन्तोप नही हुआ। उसने धर्मदत्त मन्त्री को वन्दीग्रह मे डाल दिया और वह सेना लेकर राजा के घात के लिए आगे बढ़ा। राजा को जब मन्त्री की कुटिलता का भान हुआ तो उसने गर्भवती रानी को मयूर यत्र मे बिठाकर आकाश मे उडा दिया और स्वय वैराग्य धारण कर ध्यान करने लगा लिया लेकिन काष्ठांगार को यह भी सहन नही हुआ। शुभ ध्यान मे लवलीन राजा की हत्या कर दी गयी। उधर रानी का विमान श्मशान मे उतर गया और वही उसके पुत्र उत्पन्न हो गया। उसी दिन नगर की सेठानी सुनन्दा के मृत पुत्र उत्पन्न हुआ। जब उसे दाह सस्कार के लिए श्मशान मे लाया गया तो रानी ने अपना पुत्र उसे दे दिया। सेठ गधोत्कट ने पुत्र प्राप्ति पर खूब उत्सव मनाया और उसका नाम जीवधर रखा। रानी सिद्धार्थ देवी की सहायता से अपने भाई के पास चली गई।

मेघपुर मे खेचरो का निवास था। वहाँ सभी जिनधर्म का पालन करते थे। वहाँ का राजा लोकपाल था। अभ्र पटल को देखने के पश्चात् राजा को वैराग्य हो गया और उसने मुनि दीक्षा धारण कर ली। एक बार जब मुनि आहार को गये तो दही एव चूर्ण का आहार लेने से उन्हे भस्म व्याधि हो गयी। व्याधि के प्रभाव से वे आहार के लिए निरन्तर घूमने लगे। एक बार वे गधोत्कट सेठ के यहाँ गये। उनकी क्षुधा बहुत सा कच्चा पक्का आहार करने पर भी शान्त नही हुई। लेकिन जीवन्धर के हाथ से आहार लेते ही उसकी व्याधि दूर हो गयी। इससे वह मुनि जीवन्धर से बडा प्रभावित हुआ और वही ठहर कर उसे छद पुराण, नाटक, ज्योतिष आयुर्वेद आदि सभी विद्याएँ सिखला दी। मुनि ने जीवन्धर को उसके माता-पिता के सम्बन्ध मे वास्तविकता से परिचय कराया। अन्त मे वे मुनि वहाँ से अपने गुरु के पास प्रायश्चित लेने के लिये चल दिये।

इसके पश्चात् जीवन्धर के पराक्रम की कहानी प्रारम्भ होती है। सर्व प्रथम उसने भीलो का उत्पात शान्त किया और उनसे गायो को छुडा कर राजा को वापिस

लौटा दी। इससे वह गोप बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने अपनी लड़की के साथ जीवन्धर का विवाह कर दिया। इसके पश्चात् जीवन्धर ने सुघोष वीणा बजा कर गंधर्वदत्ता से विवाह किया। इसके पश्चात् उसने मरते हुए स्वान को णमोकार मंत्र सुनाया जिससे मरने के बाद वह यक्ष हुआ। उन्मत्त हाथी को वश मे करने के पश्चात् उसे सुरमंजरी जैसी सुन्दर कन्या प्राप्त हुई। सहस्त्रकूट चैत्यालय के कपाट खोलकर राजकन्या से विवाह किया। पद्मावती का विष उतार कर उसका वरण किया। एवं आधा राज्य भी प्राप्त किया। इसके पश्चात् उसने और भी कितनी ही सुन्दर कन्याओं से विवाह किया और अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। अपने पिता के शत्रु काष्टांगार को मार दिया। अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर एक दीर्घ समय तक राज्य का सुख भोगा। अन्त में वैराग्य धारण करके निर्वाण प्राप्त किया।

काव्य कला

जीवन्धर चरित एक प्रबन्ध काव्य है। इसका नायक जीवन्धर है लेकिन प्रतिनायक एक नही कई हैं जो आते है और चले जाते हैं। प्रस्तुत रास सर्गों में विभक्त नही है किन्तु जब कथा को मोड देना पडता है तो "एह कथा इहां रही" कह दिया जाता है। इससे पाठकों का थोड़ा ध्यान बट जाता है।

रास के सभी वर्णन अच्छे हैं। कवि ने अपने काव्य को सरस बनाने के लिये कभी प्रकृति का, कभी मानव का, और कभी वन्य प्रदेशों का सहारा लिया है। जीवन्धर की माता विजया का जब कवि सौन्दर्य का वर्णन करने लगता है तो वह पूर्ण श्रृंगारी कवि बन जाता है—

मस्तक वेणी सोभतुए, जाणे सखी भार।
सिंयइ सिंदूर पूरतीए, कंठइ रूडइ हार।
काने कुंडल झलकतांए, किडि कटि मेखल।
चरणे नेउर पिहिरतीए, दीसंता निम्मंल।
रंभास्तभ सरी खडीए, बिन्यइ छि जघ।
हंसगति चालइ सदा ए, मध्यइ जसी संघ ॥४४॥

तृष्णा का कभी अन्त नहीं। समुद्र का जल सूख सकता है लेकिन तृष्णा का अन्त फिर भी नहीं हो सकता। इसी को कवि ने कितने ही उदाहरण देकर समझाया है—

समुद्र जल नवइ भाजइ, तिरसा नृपा विदि किम थाइ विरस ।
विपया शक्त प्रामइ नर नास, अनुक्रमि काया विनास ।।१५।।

मोटी काया हस्ती तणी, मन दव सथाइ रे वणी ।
खाई पड्यु सहि बहु दु ख, तेहनि पामइ लवलेस नु सुख ।।१६।।
जिह्वा लोलप मछ दुख सही, काटि वीध्यु लोही वहि ।
अरू परु तडफ उकु मरइ, तेह जीव काया नवि घटइ ।।१७।।

कवि के समय मे जिन विद्याओं का पठन-पाठन होता था उन्ही का उसने जीवधर की शिक्षा के प्रसग मे वर्णन किया है जो निम्न प्रकार है—

कुण कुण शास्त्र भणावीयाए, वृत्त नइ छंद पुराण ।
नाटक योतिक वैदक ए, भरइ नइ तर्क्क प्रमाण ।
मत्र विद्या नर लक्षणाए, राजनीति अलकार ।
अश्वपरीक्षा गज रत्नए सा भण्यु छि लिप्पि अठार ।।३१ ।

वेद विद्या भणावीउए, आव्यु तातनि पास
विनोद करइ गुरू शिष्य सु, भोगवइ भोग निवास ।।३२।।

वसत ऋतु आती है तो चारो ओर फूल खिल जाते हैं भौरें गुजारते हैं तथा शीलत मन्द सुगन्ध हवा चलने लगती है । इसी वर्णन को कवि के शब्दो मे देखिये—

सखी एकदा मास वसत, आव्यु मननी अति रलीए ।
मजरी आबे रसाल, केसूयडे राती कलीए ।।१।।
सखी केतकी परिमल सार, मोगरा केला तिहा अति घणीए ।
सखी दडिम मडप दाख, रभास्तभ राइण घणीए ।।२।।

सखी कमल कमल अपराग, आस्वादन मधुकर करइए ।
सखी कोकिला सुस्वर नाद, हस हसी शब्द धरइए ।।३।।

सखी मलयाचल सभूत, शीतल पवन वाइ घणाए ।
सुख करइ कामीय काय, स्पृस तु रात्रि दिवस सुणउए ।।४।।

जीवधर को देख कर गुणमाला उसके विरह मे खान-पान स्नान आदि सभी भूल जाती है—

मदिर आवी ताम, स्नान मज्जन नवि धरइए ।
रजनी न धरइ नीद्र, दिवस भोज नवि करइए ।।३७।।
न धरइ सार शृंगार, आभूषण ते नवि घरिए ।
नवि यामइ काय निवृत्ति, शीतोपचार घणा करइंए ।।३८।।

इस तरह रास के सभी वर्णन सुन्दर हैं । तथापि यह एक कथात्मक काव्य है लेकिन शैली मे आकर्षण है तथा वह प्रभावयुक्त है । छन्दो के परिवर्तन से रास के अध्ययन मे रोचकता आती है । यह एक गेय काव्य है जिसे मच पर गाया जा सकता है । कवि का भी रास काव्य लिखने का संभवतः यही उद्देश्य रहा है ।

रास मे दूहा, चउपई एव वस्तु बध छन्द के अतिरिक्त ढाल यशोधरनी, ढाल आणदानी, ढाल सुंदरीनी, ढाल साहेलडीनी, राग धन्यासी, राग राजवल्लभ, ढाल सखीनी, ढाल सहीनी—राग गुडी, ढाल नोरसूयानी, ढाल भामाहूलीनी, ढाल वणजारानी का उपयोग हुआ है ।

इस काव्य मे स्वर्ण मुद्रा के लिये 'दीनार' शब्द का प्रयोग हुआ है ।[1] इसी तरह अन्य शब्दो का प्रयोग निम्न प्रकार हुआ है—

आया—आव्यु[2] (२३।१३२)
आवी (२५)
पाया—प्रामी[3] (३६)
प्रामीय
[4]तुम्हारी—तुम्ह

१. पंच दीनार दीधा मन रंग, भोग इच्छा तणइ मन रंग ।
अस्तगत प्राम्यु तव सूर, कामीनि सुख करवा पूर ।।१०।।
२. पुरुष न आव्यु सामार
३. राय तणु प्रामी सनमान ।३१। प्रामीय शिष्या अति मनोहार
४. दुर्बल दीसइ तुम्ह काय ।।२।।१३३

[1]विनय किया—वीनव्यु

[2]उस, उसका, उसकी—तिणी, तेह, तेह्नी

शब्दो के आगे 'नी' 'नु' लगा कर उनका प्रयोग किया गया है। जैसे कर्मनि, पुत्रनु', नायनु, पुत्रीनु इत्यादि।

इस प्रकार जीवंधर रास १७वी शताब्दि के प्रथम पाद में रचे जाने वाले काव्यो का प्रतिनिधि काव्य है जिसमे तत्कालीन शैली के सभी रूप देखे जा सकते हैं। राजस्थानी, गुजराती एव हिन्दी इन तीनो का मिश्रित रूप कही देखना हो तो हम त्रिभुवन कीर्ति के रास काव्यों मे देख सकते हैं।

रास का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि भाग

आदि जिणवर आदि जिणवर प्रथम जे नाम
जुग आदि जे अवतर्‌या, जुग आदि अणसरीय दीक्षा।

जुग आदि जे पामीया केवल ज्ञान तणीय, शिक्षा युग आदि जिणि प्रगटीयु।
धर्म्माधर्म विचार तास चरण प्रणमी, रचउ रास जीवधर सार।

अजित आदि तीर्थंकरा, जे अछि त्रिणिनि वीस।
कर्म्म कठोर सवे खपी, हूया ते मुगतिना ईश ॥२॥

केवल वाणी सरसती, भगवती करू पसाउ।
निर्म्मल मति मुझ आपयो, प्रणमु तुम्ह घी पाउ ॥३॥

सिद्ध आचार्य जेहवा, उपाध्याय वली साधु ॥४॥
निज निज गुणे अलकर्‌या, ते मुझ देज्यो साधु।
श्री उदयसेन सूरी पाए नमी, रचउ कवित विशाल।
जीवधर मुनि स्वामिनु, सौख्य तणु गुणमाल ॥५॥

---

१. सत्यधर जाई वीनव्यु।

२. तिणी नगरी वाणिज्य वसइ, गवोत्कट तेह नाम।
सुनदा स्त्री तेह्नी, मूंड पुत्र जण ताम ॥३७॥

अन्तिम भाग

सात तत्व पुण्य पाप, काल निर्णय तिहा करइ ।
त्रिसठि पुरषाक्षान, पचास्तिकाय उच्चरइ ॥४२॥

श्रावक नियती धर्म्म, भेदाभेद सहूइ कही ।
विहारी तणी इच्छाइ, देस विदेस जाइ सही ॥४३॥

द्रोण मगध तिलंग, मालव द्रावड गुर्ज्जर ।
पचाल माहोभोट, कर्णाट कावोज कस्मीर ॥४४॥

तिहां रही अक्षर पंच, ते प्रकृति क्षय करी ।
प्राम्या सिद्ध नउ ठाम, अष्ट गुणा भला वरी ॥४५॥

तिहा नही रोग वियोग, रूप वर्ण गव नही ।
जिहा नही जामण मर्ण, नारीय पुत्र जिहा नही ॥४६॥

जिहां नही रोग वियोग, रागद्वेष जिहा नही ।
जीवंधर मुनि राय, ते स्थानिक प्राम्यु सही ॥४७॥

जे मुनिसइ पंच, तप्य करी स्वर्गि गया ।
तप करी सवे नारि, स्त्री लिंग छेदी देव हुआ ॥४८॥

महीयलि थाई नर, चारित्र नइं वली प्रामसइ ।
करीय कर्म्म नउ क्षय, तेस विमुक्ति जाय सइ ॥४६॥

नदींग्रड गछ मझार, रामसेनान्वयि हवा ।
श्री सोमकीरति विजयसेन, कमलकीरति यशकीरति हवउ ॥५०॥

तेह पाटि प्रसिद्ध, चरित्र भार धुरिंधरो ।
वादीय भजन वीर, श्री उदयसेन सूरीश्वरो ॥५१॥

प्रणमीय ते गुरु पाय, त्रिभुवन कीरति इम वीनवइ ।
देयो तम्ह गुणग्राम, अनेरी काई वाछा नही ॥५२॥

कल्पवल्ली मझार सवत सोलछहोत्तरी ।
रास रचउ मनोहारि, रिद्धि हयो सघह घरि ।।५३।।

दूहा

जीववर मुनि तप करी, पहुतु शिवपद ठाम ।
त्रिभुवन कीरति इम वीनवइ, देयो तुम्ह गुणग्राम ।।५४।।

इति जीवधर रास समाप्त

२. जम्बूस्वामी रास

कविवर त्रिभुवनकीर्ति की यह दूसरी काव्य कृति है जो राजस्थान के शास्त्र भण्डारो मे उपलब्ध हुई है । प्रस्तुत कृति भी उसी गुटके मे लिपि वद्ध है जिसमे कवि की प्रथम कृति जीवधर रास सग्रहीत है । जम्बूस्वामी रास उसकी सवत् १६२५ की रचना है अर्थात् प्रथम कृति के १६ वर्ष पश्चात् छन्दोवद्ध की हुई है । १६ वर्ष की अवधि मे त्रिभुवनकीर्ति ने साहित्य जगत को और कौन-कौन सी कृतियां भेट की इस विषय मे विशेष खोज की आवश्यकता है । क्योकि कोई भी कवि इतने लम्बे समय तक चुपचाप नही बैठ सकता । लेकिन लेखक द्वारा राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारो के जो विस्तृत खोज की है उसमे भी अभी तक कवि की दो कृतिया ही मिल सकी है ।

जम्बूस्वामी रास एक प्रवन्ध काव्य है जिसमे जैन धर्म के अन्तिम केवली जम्बूस्वामी का चरित्र निवद्ध है । पूरा काव्य रास शैली मे लिखा हुआ है तथा भाषा एव शैली की दृष्टि से जीवधर रास से जम्बूस्वामी रास अधिक निखरा हुआ है । प्रस्तुत रास दूहा, चउपई एव विभिन्न रागो मे निबद्ध है । कथा का विभाजन सर्गो मे नही हुआ है किन्तु उसमे भी उसी प्राचीन शैली को अपनाया गया है ।

जम्बू स्वामी के वर्तमान जीवन का वर्णन करने के पूर्व उनके पूर्व भवो का वर्णन किया गया है । कवि यदि पूर्व भवो के वर्णन को छोड भी जाता तो भी काव्य की गरिमा मे कोई विशेष अन्तर नही आता । लेकिन क्योकि प्राय प्रत्येक जैन काव्य मे नायक के वर्तमान के साथ-साथ पूर्व भवो के वर्णन करने की परम्परा रही है इसलिये कवि ने उस परम्परा से अपने आपको अलग नही कर सका है ।

कवि ने काव्य का प्रारम्भ भगवान महावीर की वन्दना से किया गया है। सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एव सर्वसाधु परमेष्ठी का स्मरण करने के पश्चात् अपने गुरू उदयसेन को नमस्कार किया है।[1] जम्बूद्वीप मे भरत क्षेत्र और उसमे मगध देश तथा उसकी राजधानी राजगृह थी। राजा श्रेणिक राजगृही का सम्राट था। चेलना उसकी पटरानी थी। चेलना लावण्यवती एव रूप की खान थी कवि ने उसका वर्णन करते हुये लिखा है—

ते घरि राणी चेलना कही, सती सरोमणि जाणु सही।
समकित भूक्षउ तास सरीर, धर्म ध्यान धरि मनधीर ॥१६॥

हंसगति चालि चमकती, रूपि रंभा जाणउ सती।
मस्तक वेणी सोहि सार, कठ सोहिए काडल हार ॥२०॥

काने कुंडल रत्ने जड्या, चरणे नेउर सोवन घड्या।
मधुर वयण वोलि सुविचार, अग अनोपम दीसि सार ॥२१॥

एक दिन विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर का समवसरण आया। राजा श्रेणिक पूरी श्रद्धा के साथ सपरिवार उनके दर्शनार्थ गये। राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से निम्न शब्दो मे निवेदन किया—

राइ, जिनवर पूछीया जी, कहु स्वामी कुण एह।
विद्युन्माली देवता जी, जिन जीइ कहु सहू हेत हो स्वामी ॥

भगवान महावीर ने राजा श्रेणिक के प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा कि वर्द्धमानपुर मे भवदत्त और भावदेव दो ब्राह्मण विद्वान् थे। नगर मे कुष्ठ रोग फैलने के कारण अनेक लोग मारे गये। एक बार वहा सुधर्मा स्वामी पधारे। उन्होने तत्वज्ञान एव पुण्य-पाप के बारे मे सबको बतलाया। भवदत्त ने उनसे वैराग्य धारण कर लिया। कुछ समय के पश्चात् भवदत्त ने भवदेव के सम्बन्ध मे विचार कर वह घर

---

१. श्री उदयसेन सूरी वर नमी, त्रिभुवन कीर्ति कहि सार।
रास कहु रलीया मणु, अक्षर रयण भडार ॥

आया। भवदत्त के उपदेश से भवदेव ने भी वैराग्य धारण कर लिये लेकिन उसका मन अपनी स्त्री की ओर से नहीं हट सका। स्त्री ने मुनि से अपनी व्यथा कही। इस अवसर पर नारी के प्रति कवि ने वे ही विचार प्रकट किये हैं जो अन्य जैन कवियो के हैं।

दया रहित अति लोभणी, धर्म न जाणि सार।
दयामणी दीसि सही, रूठी क्रूर अपार ॥१२॥

नारी रूप न राचीय, गुण राचउ सहु कोइ।
जे नर नारी मोहीया, ते नवि जाणि लोय ॥१३॥

भवदत्त ने तपस्या करके स्वर्ग प्राप्त किया और फिर वहा से पुण्डरीक नगरी के राजा के यहा सागरचन्द्र नामक राजकुमार हुआ। तथा भवदेव ने बीतशोका नगरी के शिवकुमार राजकुमार के रूप मे जन्म लिया। राजा के नाम चक्रधर महापद्म था। भवदेव ने शास्त्रो का ज्ञान अर्जन किया। एक बार सयोगवश उसी नगर मे एक अवधिज्ञानी मुनि का आगमन हुआ। सभी लोग उनके दर्शनार्थ गये। शिवकुमार को मुनि को देखते ही पूर्व भव का स्मरण हो गया। इससे उसे वैराग्य हो गया और घोर तपस्या करने के पश्चात् वह मृत्यु के पश्चात् छठे स्वर्ग मे विद्युन्माली नामक देव हुआ। सागरचन्द्र को भी घोर तपस्या के पश्चात् तीसरे स्वर्ग की प्राप्ति हुई। वही विद्युन्माली सात दिन पश्चात् राजगृह नगर के सेठ अर्हदास के जम्बूकुमार नाम से पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ।

मगध देश राजग्रहि अर्हदास घिर सार।
जिनमती कूखि अवतिरि जबूकूमर भवतार ॥३८॥

जम्बू कुमार की माता का नाम जिनमति था जो अत्यधिक लावन्यवती शीलवती एव पीनपयोधरा थी। एक रात्रि को जिनमति ने पाच स्वप्न देखे जिनका निम्न प्रकार फल वतलाया गया—

जबू फल देख्यउ तम्हेव नारि, पुत्र हसि घिर जबूकुमार। १०॥
निरधूम अग्नि देख्यउ तम्हे सुणउ क्षय करसि सवे करम महतणु।
शाल क्षेत्र देख्यु अभिराम, लक्ष्मीपति होसि गुणधाम ॥११॥
जल पूर्‌यु सर दीठउ सार, पाप तणु करसि परिहार ॥
रत्नाकार देख्यु तिणिवार, जन बोधी भव तरसि पार ॥१२॥

जम्बूकुमार का जन्म आषाढ शुक्ला अष्टमी के शुभ दिन हुआ। सारे नगर मे उत्सव मनाये गये। वाजे वाजे। मन्दिरो मे पूजा की गयी। कवि ने जन्मोत्सव का विस्तृत वर्णन किया है—

नृत्त करि करि नृत्यगनाए, गीत गाइ रमाल।
वाजित्र वाजि अति घणाए, ढोल ददामा कसाल ।।६।।

तिवली तूर मादल घणाएं, भेर वाजि वर चग।
इणी परिजन महोत्सवाए, श्रेष्ठि घिरहुउ रग ।।७।।

वचपन मे ही जम्बूकुमार ने विविध शास्त्र, एव विद्याए सीखली तथा कला मे वह पारंगत हो गया। जवूकुमार की सुन्दरता देखते ही वनती थी। जो भी कुमारी उने देखती वही उसकी चाहना करने लगती तथा माता-पिता के भाग्य का सराहना करती कि जिसके यहा ऐसा पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ है। उसी नगर मे सागरदत्त, धनदत्त, वैश्रवण एव वणिकदत्त श्रेष्ठि रत्न थे। चारो के ही एक एक कन्या थी जिनके नाम पद्मावती, कनकश्री, विनयश्री एव लक्ष्मी थी। चारों ही सुन्दरता की खान थी—

च्यार कन्या अछि अति भलीए, रूप सोभागनी खाणि।
पृथु पीनपयोधरा वोलि अमृत वाणि ।।३२।।
कटियत्र अति रूडीए मृग नयणी गुणवत।

अक्षय तृतीया के दिन जम्बूकुमार का विवाह इन चारो कन्याओ से निश्चित हो गया। वसन्त ऋतु आने पर राजा श्रेणिक, नगर सेठ जम्बूकुमार एव उनकी होने वाली पत्निया सभी वन क्रीडा के लिये गये। उस समय राजा श्रेणिक का हाथी विगड गया और कराल काल वन कर चारो ओर उत्पात करने लगा। हाथी ने अनेक वृक्षो को तोड डाला, फूलो को रोद डाला। उसको देख कर सभी प्राण वचाकर भागने लगे। लेकिन जम्बूकुमार ने उसे सहज ही वश मे कर लिया। इमसे उसकी वीरता की चारो ओर प्रशसा होने लगी।

कुछ समय पश्चात् एक विद्याधर राजा श्रेणिक के पास आया तथा कहने लगा कि भविष्य वाणी के अनुसार केरल देश के राजा की राजकुमारी के आप पति होंगे। लेकिन हसद्वीप के राजा ने उस राजकुमारी को लेने के लिये उस पर चढाई

कर दी। इस विपत्ति मे वह राजा श्रेणिक की सहायता चाहता है। जबूकुमार वही राज सभा मे थे। उन्होंने विद्याधर के प्रस्ताव को स्वीकार करके राजा श्रेणिक की अनुमति मागी। तथा सैन्य दल के साथ दक्षिण की ओर चल पडे। जबूकुमार के विध्याचल पर आये और वहा की शोभा का अवलोकन किया—

सैन्य सहित तिहा आवीउ, विध्यांचल उत्तग।
जीव घणा तिहा देखीया, विस्मय पाम्यु मन चग ॥३६॥

पिक केकी वाराहनि, हरण रोझ गोमाउ।
हस व्याघ्र गज सावरा, मृग वष महिष न काय ॥३७॥

भिल्ली भिल्लज देखीया, ते आयुध महित अपार।
सैन्य हाथ देखी करी, नाठा ते तिणी वार ॥३८॥

आगे चल कर उन्होंने जिन मन्दिरो की वन्दना की। अन्त मे जबूकुमार सेना के साथ केरल पहुचे। नगर से दूर ही उन्होंने पडाव किया और प्रतिद्वन्दी रत्नचूल विद्याधर को समझाने के लिये अपना दूत भेजा। दूत ने राजा को विभिन्न प्रकार से समझाया लेकिन समझ नहीं सका। दोनो की सेनाओ मे घोर युद्ध हुआ। कवि ने रास काव्य मे युद्ध का अच्छा वर्णन किया है। युद्ध मे सभी तरह के बाणो का प्रयोग हुआ, हाथी, घोडे, रथ एव पैदल सभी सेनायें एक दूसरे से खूब लडी।

तिहा क्रोध करीनि ऊठीया, मुकि बाण अपार।
तिहो मेघ तणी धारा परि, बरसि तिणी वार।
तिहां सिंध तणी परि गाजतां, मेह लइ नही ठाम।
तिहा छत्रीस आयुध लेईनि, राइ करि सग्राम।

अन्त मे युद्ध मे जम्बूकुमार की विजय हुई। चारो ओर उसकी जय जय होने लगी। नगर प्रवेश पर जम्बूकुमार का जोरदार स्वागत हुआ।

राइ नगर सणगारउ, नगर कीउ प्रवेस।
नगर स्त्री जोइ घणु, करती नव नवा वेस। १२॥

काम रूप देखी भलु, विस्मय प्रामी नार ।
धन जननी धन ए पिता, जे घर एह कुमार ।।१३।।

इसके पश्चात् रत्नचूल विद्याधर ने जम्बूकुमार को एव राजा श्रेणिक को अपने यहा आमत्रित किया। राजा श्रेणिक ने जबूकुमार की खूब प्रशसा की तथा उसका सम्मान किया। खेचर पुत्री के साथ विवाह होने पर श्रेणिक एव जम्बूकुमार दोनो ही वहा से लौट गये और विध्याचल पार करके स्वदेश आ गये। मार्ग मे उन्हे सुधर्माचार्य के दर्शन हुये। श्रेणिक एव जम्बूकुमार दोनो ही उनके चरणों मे बैठ गये। तत्वोपदेश सुना और अन्त मे जम्बूकुमार ने अपना भव पूछा। सुधर्माचार्य ने उसके पूर्व भव का पूरा चित्र उसके सामने रख दिया। उससे जम्बूकुमार को वैराग्य हो गया लेकिन सुधर्माचार्य ने घर पर जाकर आज्ञा लेने की बात कही।

जम्बूकुमार ने माता-पिता के सामने जब वैराग्य लेने का प्रस्ताव रखा तो वे दोनो ही मूर्च्छित हो गये।[1] जम्बूकुमार को बहुत समझाया गया। स्वर्ग सुख के समान घर को छोडने के विचार का परित्याग करने को कहा। लेकिन जम्बूकुमार ने किसी की नही सुनी। चार कन्याओ को जम्बूकुमार के निश्चय की सूचना दी गयी तो वे भी विलाप करने लगी। अन्त मे यह तय हुआ कि जम्बूकुमार चारो कन्याओ के साथ विवाह करेगा तथा एक-एक दिन मे घर मे रह कर फिर दीक्षा ग्रहण करेगा।[2]

जम्बूकुमार के विवाह की जोरदार तैयारी की गयी। बजे बजे। गीत गाये गये। बन्दी जनो ने प्रशंसा गीत गाये। जम्बूकुमार चचल घोडे पर सवार होकर

---

१ वचन सुणी मुर्छागति हुई, नाखी वाय ते विठी थई।
रूदन करि दुख आणि घणउ, पुत्र प्रसंसि माता सुणउ ।।

२ एक रात्रि एक दिवस परणानि वली एह ।
अह्म समीपि तु रहितु, नवि छाडि गेह ।।१७।।

वचन सुणी कन्या तणा, कन्या नावलि तात ।
अर्हदास घिर आवीया, कुमर प्रति कहि बात ।।१८।।

एक दिवस परणी करी, घिर रहु एक दिन ।
पछि दीक्षा लेय जो, जु तुह्म हुइ मन ।।१९।।

तोरण के लिये गये। विवाह मे विविध प्रकार के पकवान बनाये गये। विवाह सम्पन्न हुआ और जम्बूकुमार चारो पत्नियो के साथ अपने घर चला। रात्रि आयी। नव विवाहित पत्नियो के हाव-भाव से जम्बूकुमार का मन लुभाना चाहा लेकिन वे किंचित भी सफल नही हो सकी। जम्बूकुमार ने एक-एक पत्नी को समझाया। प्रत्येक स्त्री ने कथाएँ कही और गृहस्थी का सुख भोगने के पश्चात् वैराग्य लेने की बात कही लेकिन जम्बूकुमार ने सबका प्रतिवाद किया और वैराग्य लेने की बात को ही उत्तम स्वीकार किया।

उसी रात्रि को जम्बूकुमार के घर विद्युत चोर चोरी करने के विचार से आया। नगर कोटवाल एव दण्डनायक के भय से वह जम्बूकुमार के पलग के नीचे जाकर लेट गया। एक ओर जम्बूकुमार जब अपनी नव-विवाहित पत्नियो को समझा रहा था तो उस चोर ने भी उनके उत्तर प्रत्युत्तर को सुनने मे मस्त हो गया। विद्युत चोर भी जम्बूकुमार से अत्यधिक प्रभावित हो गया और उसके भी जगत् को निस्सार जान कर वैराग्य धारण करने की इच्छा हो गयी।

प्रात काल होते ही जम्बूकुमार को नवीन वस्त्राभूषण पहिनाये गये। पालकी मे बैठ कर वह दीक्षा लेने चल दिया। नगर मे हजारो नर-नारी जम्बूकुमार के दर्शनार्थ उपस्थित हुये और उसकी जय जयकार करने लगे। उसकी माता जिनमती आकर रोने लगी। वह मूर्च्छित हो गयी। अश्रु धारा बहने लगी—

पुत्र आगिल माता रही, करि रूदन अपार।
बार बार दुख धरि, करि मोह अपार॥

— — —

जल विण किम रहि माछली, तिम तुझ विण पुत्र।
मुझ मेहली वीसासीनि, काइ जाउ वन सुत॥

लेकिन जम्बूकुमार अपने निश्चय पर दृढ था। वह माता को कहने लगा—

पुत्र कहि माता सुणु, ए ससार असार।
दिक्षा लेवा मुझ देउ, काई करू अतराय॥११॥

अन्त मे माता-पिता, सास-श्वसुर सब से आज्ञा लेकर जम्बूकुमार सुधर्मास्वामी के चरणो मे जा पहुँचा तथा उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। जम्बूकुमार निर्ग्रन्थ बन गये। उनके साथ विद्युत्प्रभ एव उसके साथी, अर्हद्दास एव उसकी माता जिनमती, पद्मश्री आदि उसकी चारो पत्नियो ने भी जिन दीक्षा धारण करली।

कुछ वर्षों के पश्चात् जम्बू उसी नगर मे आये। मुनि जम्बूस्वामी के दर्शनार्थ हजारो नर नारी एकत्रित हो गये। सेठ जिनदास के यहा मुनिश्री का आहार हुआ। आहार के प्रभाव से रत्नो की वर्षा हुई। कुछ समय पश्चात् सुधर्मास्वामी को निर्वाण प्राप्ति हुई और उसी दिन जम्बूस्वामी को कैवल्य हो गया। इन्द्र ने गन्धकुटी की रचना की। जम्बूस्वामी ने सभी को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एव सम्यक्चारित्र को जीवन को उतारने, बारह व्रत, भोजन क्रिया, अष्टमूलगुण, दशधर्म, षट् आवश्यक कार्य आदि पर विस्तृत प्रकाश डाला। पर्याप्त विहार करने के पश्चात् जम्बूस्वामी एक दिन विपुलाचल पर्वत पर आये और वही से निर्वाण प्राप्त किया। इन्द्रादिक देवो ने जम्बूस्वामी का निर्वाण महोत्सव मानाया। जम्बूस्वामी के पिता अर्हद्दास ने छटठा स्वर्ग प्राप्त किया। उनकी माता जिनमती स्त्री पर्याय को छोड कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग मे इन्द्र हुई। जम्बूस्वामी की चारो स्त्रियो ने भी इसी प्रकार स्त्री पर्याय का विनाश कर स्वर्ग मे जाकर देव हुई। विद्युच्चोर ने घोर तप कर सर्वार्थसिद्धि प्राप्ति की।

इस प्रकार कवि ने जम्बूस्वामी रास मे जम्बूस्वामी का जिस व्यवस्थित शैली मे जीवन चरित्र प्रस्तुत किया है, वह अत्यधिक प्रशंसनीय है। कवि का प्रस्तुत काव्य कथा प्रधान है। इसलिए इसमे कही-कही कथा भाग अधिक है तो कही-कही उसमे काव्य प्रधान अश भी देखने को भी मिलता है।

मूल्यांकन

जम्बूस्वामी रास का रचना काल संवत् १६२५ है। उस समय तक बहुत से रास काव्य लिखे जा चुके थे। और रासो काव्य की दृष्टि से वह उसका स्वर्ण युग था। ब्रह्म जिनदास जैसे महाकवियो ने पचासो रास लिख कर रास शैली का निर्माण किया था। ब्रह्म जिनदास के पश्चात् भट्टारक ज्ञानभूषण, विद्याभूषण एव रायमल्ल ने जिस परम्परा को जन्म दिया था उसी पर त्रिभुवनकीर्ति ने अपने दोनो रास काव्यो की रचना की। इन रास काव्यो मे कथा प्रवाह बराबर चलता रहता हैं। और उसी प्रवाह से कवि कभी कभी काव्यमय वर्णन भी प्रस्तुत करने मे सफल होता है—

जम्बूस्वामी रास का नायक है जम्बूकुमार जो राजगृही के नगर सेठ अर्हत दास का पुत्र है। जम्बूकुमार के जीवन मे वीररस, शृगार एवं शान्त रस का समावेश है। वह बचपन मे ही महाराजा श्रेणिक के उन्मत हाथी को सहज ही वश मे कर लेता है। १५-१६ वर्ष की आयु मे वह सेना लेकर केरल के राजा की सहायतार्थ जाता है और उसमे अपनी अपूर्व वीरता से विजय प्राप्त कर लेता है। एक ओर विद्याधरो की सेना दूसरी ओर जम्बूकुमार की सेना। दोनो मे घनघोर युद्ध होता है। स्वय जम्बूकुमार विभिन्न प्रकार के शस्त्रो का प्रयोग करता है। और अन्त मे युद्ध मे विजय प्राप्त करता है। वह वीर हैं और किसी भी शत्रु को हराने मे समर्थ है। जम्बूकुमार का जीवन शृंगार रस से भी ओत-प्रोत है। बचपन मे वह वसन्तोत्सव मनाने के लिए नगर के बाहर उद्यान मे जाता है और वहाँ वसन्तोत्सव का आनन्द लेता है। हैं। वैराग्य लेने से पूर्व अपने माता पिता के अनुरोध पर चार कन्याओ से विवाह बधन मे बधता है। सुहागरात्रि को वे उनसे मिलता है। उनकी पत्नियाँ क्या थी स्वर्ग सुन्दरिया थी जो विभिन्न हाव-भाव से एव अपने तर्कों से जम्बूकुमार से गृहस्थ जीवन परिपालन आग्रह करती है।[1] सभी पत्निया एक एक करके जम्बूकुमार से विभिन्न दृष्टान्तो से गृहस्थ जीवन की उपयोगिता पर प्रकाश डालती हैं तो जो भविष्य के सुख का त्याग करते हैं वह उनकी दृष्टि मे प्रशसनीय कार्य नही है।[2] जम्बूकुमार एक एक पत्नी को अपने अकारय प्रमाणो से निरूत्तर कर देता है। इसी बीच उसे विद्युच्चोर मिलता है।[3] वह भी जम्बूकुमार को वैराग्य लेने मे सहायक बनता है।

---

१. कामाकुल ते कामिनी करि ते विविध प्रकार।
अ ग देखाडि आपणा, वली वली जम्बूकुमार।
गीत गान गाहे करी, कुमर उपाई राग ॥५॥

२ निस्पल फल मूकी करी, जे फल वांछि अन्य।
ते मुख काइ नवि लही, चितवि आपणि मन ॥३॥१२०॥

३ मनरलीय भमीउ उत्तर दक्षण पूरव पश्चिम ए दिश ए।
करणाट सिंघल द्वीप केरल देश चीणक ए दिशि।
कुंतल देस विदर्भ जनपद सह्य पर्वत आमीउ ॥१॥
भसपच पाटण अहीर कुंकण देश कछि आवीउ।
सोराष्ट देसि किष्कध नगरी गिरनारि पर्वत भावीउ ॥

जम्बूकुमार यौवन प्राप्ति के पूर्व ही वैराग्य धारण कर लेता है और अन्त मे कैवल्य प्राप्त कर निर्वाण का महापथिक बनता है। उसका अधिकाश जीवन शान्त रस से समाविष्ट रहता है

भाषा

रास की भाषा गुजराती प्रभावित राजस्थानी है। क्रिया एव क्रिया एव् क्रियापदो मे दोनो एक साथ चलती हैं। क्रिया पदो मे आव्यु (३३।१६३) चाल्यु (५।१६३) पूछीया (६।१६३) आवीया (१०।१६४) पाम्यु (३६।१७३) आवीउ १६।१६४) जाइ, आवि (१५।१६४) लीधा दीधा (२३।१६५) का प्रयोग काव्य में प्रमुख रूप से हुआ है। वैसे रास की भाषा, अत्यधिक सरल एव सहज रूप से लिखी हुई है। उसमे कृत्रिमता का अभाव है। शब्दो को तोड़ मरोड कर प्रयोग करने मे कवि की जरा भी रुचि नही है।

छन्द

रास गेय काव्य हैं। सभी छन्द गेय हैं और कवि ने उसे गेय काव्य बनाने का पूरा प्रयास किया है। रास के मुख्य छन्द, दूहा, चुपई, राग, गुडी ढाल साहेलडीनी, ढाल यशोधरनी, ढाल मिथयामोनी, ढाल मालतडानी ढाल सखीनी, ढाल सहीनी, राग आसाउरी, राग सन्यासी, राग विराडी, ढाल दमयतीनी, ढाल मोहपराजतनी, राग सामेरी, ढाल भवदेवनी, ढाल विवाउलानी, ढाल हिंडोलानी राग देशाख, ढाल आणदानी, ढाल वणजारानी, ढाल दशमी यशोधरनी आदि विविध ढालों, रागो का प्रयोग किया गया हैं। इन रागो से प्रस्तुत रास पूर्णत. गेय काव्य वन गया है।

सामाजिकता

प्रस्तुत रास मे तत्कालीन सामाजिक प्रथाओ का भी वर्णन उपलब्ध होता है।

नेम निर्वाण जिहा पाम्या, राजीमतीइ तप ग्रही।
तिहा आवी जिणवर पाय प्रणमी, मानव भव सफल ग्रही ।।२।।

अर्बदाचल मेवाड देस लाड मरहठ पामीउ।
चित्रकोट गुजराति देस मालव सिंधु देशि कामीउ।
काशमीर करहाट देस विराट हु भ्रम्यु अति घणउ।
परिभ्रमण कीधा द्रव्य कारणी पार न पाम्यु तेह तणु ।।३।।

पुत्र जन्मोत्सव पर अनेक प्रकार के आयोजनो का सम्पन्न होना, उपाध्याय के यहा विद्यार्थियों का अध्ययन, सभी तरह की विद्याओ, कला एव अन्य विद्याओ मे पारगता प्राप्त करना, विवाह के अवसर पर वाजो का वजना, स्त्रियो द्वारा मगल गीत गाना, नृत्य करना, बन्दीजनो द्वारा गुणानुवाद करना, घोडे पर चढकर विवाह के लिये प्रस्थान करना, दहेज मे सोना चादी, रत्नो के आभूषण देना, विवाहोत्सव पर विविध प्रकार के व्यजन तैयार करना, आदि प्रथाओ के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके तत्कालीन समाज का कुछ कुछ परिचय प्राप्त किया जा सकता है। नारी को त्यागने के प्रति जैन काव्यो मे उत्साह वर्धक अंश रहता है। नारी के त्यागने पर मुक्ति मिल सकती है। क्योकि नारी और गृहस्थी का तारातम्य सम्वन्ध है है। यदि किसी के जीवन मे नारी है तो वैराग्य का अभाव है। साधु के जीवन मे प्रवेश करने के पूर्व नारी का परित्याग नितान्त आवश्यक है इसलिये प्रत्येक जैन कवि ने अपने काव्यो में नारी की प्रशसा के साथ साथ उसकी निन्दा भी उसे ससार परिभ्रमण का कारण मान कर की है। प्रस्तुत काव्य भी इस से अछूता नही बचा और यहाँ भी त्रिभुवनकीर्ति ने नारी के प्रति निम्न विचार प्रस्तुत किये हैं—

कूड कपटनी कोथली, नारी नीठर जाति।
नसकि देखी रूयडउ, करि पियारी तात ॥१०॥

सीयल रयण नवि तेह गमि, हीयडा सुंदरी मोह।
रस सुंरमि अनेरडी, अन्य चडावि दोह ॥११॥

दया रहित अति लोभणी, धर्म न जाणि सार।
दयामणी दीसि, सही रूठी क्रूर अपार ॥१२॥

नारी के सौन्दर्भ के प्रति अरुचि पैदा करके मानव मे वैराग्य की भावना उत्पन्न करना ही जैन काव्यो का मुख्य उद्देश्य रहा है। काव्यो के रचयिता स्वयं जैनाचार्यों एव सन्तो ने इसको पहले अपने जीवन मे उतारा है और यही वात काव्यो मे प्रस्तुत की है। जम्बूस्वामी भी अपनी नवविवाहित ऐसी पत्नियो का त्याग करते हैं जिनके विवाह की मेहदी भी नही सूखी थी तथा विवाह का ककण हाथो मे ही वधा था। लेकिन यदि निर्वाण पथ का पथिक वनना है तो इन सवका परित्याग करना पड़ेगा। इसी त्याग के कारण एक 'साधु' सम्राट द्वारा पूजित होता हैं इन्द्रो एव देवो द्वारा आराध्य होता है।

भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति जैन सन्त थे। त्याग उनके जीवन मे उतरा हुआ था। इस प्रकार के सन्त जल में कमलवत रहते है। वे अपने भक्तों को पाप के कार्यों का त्याग करने एवं पुण्य के कार्यों को अपनाने के लिए कहा करते हैं। यद्यपि पाप एव पुण्य दोनो ही ससार का कारण है लेकिन पुण्य से उत्तम गति, उतम देह, ऐश्वर्य एव मम्पत्ति सभी तो मिलती है। इसलिए ऐसे कार्यों को करते रहना चाहिए जिससे सतत पुण्य का उपार्जन होता रहे। प्रस्तुत काव्य मे कवि पुण्य की प्रशसा भी इसीलिये निम्न शब्दो मे करते हैं—

पुण्य धरि घोडा नीलास, पुण्यि घिर लक्ष्मी नु वास।
पुण्यि घिरि रिधि अविसार, एसहु पुण्य तणु विस्तार ।।२४।।

प्रस्तुत काव्य जवाछ नगर के शान्तिनाथ चैत्यालय मे रचा गया था। इसकी एक मात्र पांडुलिपि जयपुर के दिगम्बर जैन तेरह पथी वडा मन्दिर के शास्त्र भडार मे गुटका संख्या २५५ के पत्र संख्या १६१ से १९० तक सग्रहीत है। प्रस्तुत पाँडुलिपि संवत् १६४४ फागुण शुक्ला अष्टमी की लिखी हुई है। लिपि स्थान वडवाल नगर का आदिनाथ जिनालय था। लिपिकर्त्ता थे ब्र० सामल जो काष्ठा सघ मे नन्दीतटगच्छ के विद्यागण के भट्टारक विश्वभूषण के शिष्य थे।[1]

---

१. संवत् १६ ४४ वर्षे फागुण मासे शुक्ल पक्षे अष्टम्यां शुक्रवासरे वडवाल नगरे आदिनाथ चैत्यालये श्रीमत्काष्ठासघे नदीतटगच्छे विद्यागणे भट्टारक विश्वभूषण तद् शिष्य ब्र० सामल लिख्यते।

जम्बूस्वामी रास

रचनाकाल – संवत १६२५

रचनास्थान—जवाछ नगर

अथ जम्बूस्वामी रास लिख्यते

मगलाचरण

वीर जिणवर २ नमु ते सार ।
तीर्थंकर चुवीसमु वाँछित फल बहु दान दातार ।
वालपणि रिधि परिहरी, धरीय सयम भार सार ।
रुद्र पूरीसह अति सही, करी वली तप अघोर ।
हूया ते मुगति नाराजीया कर्महणी कठोर ॥१॥

दूहा—तीर्थंकर त्रेवीस जे पूरवि हूया ते सार ।
तास चरण प्रणमी करी, कवित करू मनोहार ॥२॥

सिद्ध सूरि उवज्झायना, प्रणमी साधु मुनिंद ।
हृदय कमल विकासवा, जाणउ अभिनव चद ॥३॥

केवल वाणी रूयडी, मनधरी सारद माय ।
निर्मल मति मुझ आपज्यो, प्रणयु तमचा पाय ॥४॥

श्री उदयसेन सूरी वर नमी, त्रिभुवनकीर्त्ति कहि सार ।
रास कहुँ रलीयामणु, अक्षर रयण भडार ॥५॥

भवीयण जन तमे साभलु, चरित्र जम्बूकुमार ।
सार सौक्ष जम लहु, वाँछित फल वहु सार ॥६॥

मगध देश की राजधानी राजगृही का वर्णन

चुपई—सायर द्वीप असंख्या जाण, तेह मध्य जबू द्वीप वखाण ।
लक्ष योजन कु डल आकार, त्रिगुणी परिधि अछि विस्तार ॥७॥

मेर सुदर्शन मध्यि कह्यु, सहश्र नवाणु ऊंचु रह्यु ।
सहश्र योजन भू मध्यि जाण, पच वर्ण रत्न मिव वखाण ॥८॥

मेर थकी दिक्षण त्रिभाग, भरत क्षेत्र वसि तिहा लाग ।
पचसि योजन छत्रीस, छह कलावर जाणु ईश ।।६।।

मगव देश अछि तिहा चग, सविहू देश माहि मन रग ।
राइण केल अनिसहकार, दाडिम द्राख तणउ नही पार ।।१०।।

ठाम ठाम दीसि प्रासाद, झालरि ढोल दादामा नाद ।
कनक कलस ध्वजा लहकत, ठाम ठाम मुनिवर महत ।।११।।

मटब धोख करबट छि घणा, पुर पाटण नगर नही मणा ।
ठाम ठाम पर्वत उत्त ग, मुनिवर ध्यान धरि रही अग ।।१२।।

देश मध्य मनोहर ग्राम, नयर राजग्रह उत्तम ठाम ।
गढ मढ मदिर पोल पगार, चउहटा हाट तणु नही पार ।।१३।।

धनवत लोग दीसि तिहा घणा, सज्जन लोक तणी नही मणा ।
दुर्ज्जन लोक न दीसि ठाम, चोर चरड नही तिहा ताम ।।१४।।

घरि घरि वाजिन्त्र वाजि चग, घिर घिर नारी धरि मन रग ।
घिर घिर उछव दीसि सार, एह सहू पुण्य तणु विस्तार ।।१४।।

राजा श्रेणिक एवं चेलना रानी का वर्णन

तिणि नयर श्रेणिक छि राय, सवि भूपती जीता भडवाय ।
दान करी सुर वृक्ष ममान, याचकनि देह बहुदान ।।१६।।

धर्म तणु राय करि विस्तार, पाप तणु करि परिहार ।
समकित रयण भूक्षउ शरीर कामदेव सम रूपि धीर ।।१७।।

ज्ञान विज्ञान जाणि सवि भूप, जीवा जीवा जाणि स्वरूप ।।
प्रथम तीर्थंकर अनागत सार, कर्म ताणुउं करि परिहार ।।१८।।

तै घरि राणी चेलना कही, सती सरोमण जाणु सही ।
समकित भूक्षउ तास सरीर, धर्म ध्यान धरि मन धीर ।।१९।।

हस गति चालि चमकती, रूपि रभा जाणउ सती ।
मस्तक वेणी सोहि सार, कठ सोहिए काउल हार ।।२० ।

काने कु डल रत्ने जडया, चरणे नेउर सोवन घड्या ।
मधुर वयण बोलि सुविचार, अग अनोपम दीसि सार ।।२१।।

राय तणी राणी छि इसी, सुख विलसि ते हमु उल्हसी ।
तेह् सरसु भोगवह सुख भोग, तेह सरसु भवि लहि वियोग ।।२२।।

काल गउ नवि जाणि राय, राज्यपालि जिन पूजि पाय ।
चिहु प्रकार देइ बहु दान, मन अहिंकार न धरि मान ।।२३।।

पुण्यि वरि घोडा नीलास, पुण्यि घिर लक्ष्मी तु वास ।
पुण्य घिर रिधि अविसार, ए सहू पुण्य तणु विस्तार ।।२४।।

भगवान महावीर के समवसरण का आगमन

दूहा—एक दिवस विपुलाचलि, आव्या वीर जिणद ।
समोसरण धनदि रचउ सीख लेइ तव इद ।।२५।।

रयण सुवर्णह रूप्पमि, धूली गढ ए च्यार
गढ गढ प्रति सोभति पोल अछिच्यार च्यार ।।२६।।

मानस्तभ अति रूयडा सोहि च्यार उत्त ग ।
वायव सिद्ध जा लह लहि, आह्वानन करि चग ।।२७।।

निग्र थ आदि अति भली, बार सभा माहंत ।
चतुर्निकाई देवता, तिहा अछि अनत ।।२८।।

मध्य सिंघासण विसणि, विठा जिनवर भाण ।
सप्त भंगी वांणी हुई, योजन एक प्रमाण ।।२९।।

भामंडल पूठि भलु, दिनकर कोडि समान ।
छत्र त्रय अति रूयडा पच, धरि वली ज्ञान ।।३०।।

एक दिवस वनपालक, आव्यु वनह मझार ।
छह रतना फल देखीनि मन माहि करि विचार ॥३२॥

श्रेणिक द्वारा भ. महावीर की वंदना

समोसरण जिन वीरनुं, आव्यु विपुलगिरि राय ।
हरष धरी मन आपणि, देइ पचाग पसाय ॥३३॥

सिंघासन थी उतरी, ते दिश नमीउ राय ।
आणद भेर देइ करी, वीरनि वदण जाय ॥३४॥

वस्तु —तिणि अवसर २ राय सुजाण, भाव धरी मन आपणि स्नान करी ।
वस्त्राग पिहरी सामग्री सवि सज करी ।
निर्मल भाव मन माहि धरी ।
पट हस्ती श्रंगरीनि चाल्यु सवि परिवार ।
अष्ट प्रकार पूजा लेई, करतु जय जय कार ॥१॥ ॥३५॥

राग गुडो ढाल साहेलडोनी

वीर जिणेसर वादवा जी, चाल्यु श्रेणिक भूप ।
भाव धरी मन आपणे जी, जाण तु तत्व स्वरूप ।
हो स्वामीय गुरू वदण जाइ, वीर तणा गुण गाई रे साहेलडी ॥१॥ ॥३६।

गज विसी राजा चालीउ जी, साथि सहू परिवार ।
वाजित्र वाजि अति घणा जी, सख्या रहित अपार ॥ हो स्वामी ॥२॥ ॥३७॥

मेगल माता अति घणा जी, राजवाहन चकडोल ।
वाय वेग तुंरगमाजी, तेह अछि बहू मूल हो स्वामी ॥जग॥३॥३८॥

मस्तक छत्र सोहामणुं जी, चमर ढलि विहु पास ।
दान देइ राजा अति घणु जी, याचक पूरि आस हो स्वामी ॥जग॥४॥३९॥

मान धरंतु अति घणु जी, लागु जिनवर पास ।
त्रण प्रदक्षणा देईनिजी, वांदि मन उल्हास हो स्वामी ॥जग॥५॥४०॥

अष्ट प्रकारी पूजा करी जी, स्तवन करि रे नरिंद ।
जग गुरू जग गुरु राजीउजी, जगत्रय सेवि जिणद हो ।।स्वामी।।६।।४१।।

जिन जीइ धर्म प्रकासीउ जी, कहीउ तत्व स्वरूप ।
चिहुगति ना सुख दुख कह्या जो, ते सत्रि सुणीया भूप हो स्वामी ।।७।।४२।।

देव एक तिहा आवीउ जी, अपछरा च्यार सहेत ।
देखी मन माहि चमकीउ जी, पूछि देव नु हेत हो स्वामी ।।जग।।८।।४३।

राजा श्रेणिक की जिज्ञासा

राइं जिनवर पूछीया जी, कहु स्वामी कुण एह ।
विद्युन्माली देवता जी, जिनजीइ कहु सहू हेत हो स्वामी ।।जय।।९।४४।

आज थकी दिन सातमि जी, चवसि एहज देव ।
मन माहि सदेह प्रामिउ जी, पूछि श्रेणिक हेव हो स्वामी ।।जग।।१०।४५

पूरवि तह्यो इम कहु जी, षट मास इह ज आयु ।
कठमाला म्लानज हुइ जी, तेह हुइ तुछ आयु हो स्वामी ।।जग।।११।।४६।।

देव आवी पूजा करी जी, विठउ सवि परिवार ।
एतलि राइ पूछीउ जी, देवनु सहूइ विचार हो स्वामी ।।जग।।१२।।४७।।

साभल राजा तुझ कहु जी, देवनु सहूइ विचार ।
एक मना सहू साभलु जी, जिम लहु सोख्य अपार हो स्वामी ।।जग।१३।४८।।

भ० महावीर द्वारा समाधान

वस्तु वंध—सुणु राजन सुण राजन देव चरित्र ।
भवदत्त भवदेवनु कहु चरित्र, मन आणद आणी ।
तप जप सयम आचरी धरीय ध्यान मन ज्ञान जाणी ।
आज थकी दिन सातमि स्वर्ग थकी चवी सार ।
देव देवी सुख भोगवी, मध्य लोक अवतार ।।१४।।४९।।

वर्द्धमानपुर नगर वर्णन

ढाल यशोधरनी

जवू द्वीप भरह क्षेत्र मध्यि अति सोहि ।
वर्द्धमानपुर नाम सार भवीयण मन मोहि ॥१॥५०॥

मिथ्यात्वी द्विज अतिघणाए, तेह नयर मझार ।
वेद स्मृति यज्ञि करीए हणि जीव अपार ॥२॥५१॥

स्वरग मारग तिणि कारणि ए, करि धर्मज एह ।
जीव तत्व अजीव तत्व, नवि जाणि तेह ॥३॥५२॥

मिथ्यात्वी द्विज एक वसि, तेह नयर मझार ।
आर्यवसु तसु नाम भलु, सोम सर्मा नार ॥४॥५३॥

तास तणी कुखि उपनीए, भवदत्त भवदेव ।
सास्त्र सवे भणावीयाए, पाम्या योवन तेव ॥५॥५४॥

अष्टादस वरसह तणु ए, हुउ भावदेव ।
वार वरस तणो उलघूए, हुउ भवदेव ॥६॥५५॥

एक दिवस आर्यवसू ए, पापह परिभाव ।
कुष्ट घणु तेह नीसरयुउ पाम्यु दुख दाव ॥७॥५६॥

जीवत आस्या परहरीए, काष्टह घणा मेली ।
चिहा करी प्रवेश कीउ, साथि स्त्री सहेली ॥८॥५७॥

पितृ तणा दुख पुत्र करि, नवि जाणि सर्म ।
घिर रह्या सुख भोगविए, नवि जाणि धर्म ॥९॥५८॥

एकदा मुनिवर आवीयाए, सौधर्म्मा स्वाम ।
ज्ञानवंत यती नायकु ए तेज तणु धाम ॥१०॥५९॥

दश लक्षण धुर धर्म धरि, त्रण रत्न भण्डार ।
च्यारि कषायनि त्रण सत्त्य, ते रहित ससार ॥११॥६०॥

भवदत्तादिक नगर लोक, आव्या तेणि ठाम ।।
मुनिवर वादी पाय पूजी, बिठा सविताम ।।१२।।६१।।

मुनिवर बोल्यु विहूय परि, श्रावक यती धर्म ।
सात तत्व पुण्य पाप भेद, कहु तेहज मर्म ।।१३।।६२।।

धर्म प्रभावि जीव, लहि स्वरग अवतार ।
पाप प्रभावि नरक माहि, छेदन दुख अपार ।।१४।।६३।।

जाइ आवि जीव एकलुए, चिहु गति मझार ।
एकलु सुख दुख भोगवि ए, जीव इणि ससार ।।१५।।६४।।

मुनिवर वाणी साभली, भावदेव चमक्यु ।
वैराग पाम्यु अति घणु ए, ससार थी सक्यु ।।१६।।६५।।

दिक्षा लीधी जिण तणी ए, सवि मूकी सग ।
चारित्र पालि निर्मलुए, मन धरीय सवेग ।।१७।।६६।।

एकदा मुनिवर चिंतविए, भ्राता भवदेय ।
मिथ्यात्व मत माहि पड्यु ए, प्रतिबोधु हेव ।।१८।।६७।।

गुरू वादी एक शिष्य लेइ, चाल्यु मुनि तेह ।
भव देव घिर आवीउ, दीठउ तव गेह ।।१९।।६८।।

उछव देखी अति घणुए, पूछि भावदेव ।
कर ककण कुण कारणिए, बोलि भवदेव ।।२०।।६९।।

वर्द्धमान पुर माहि द्विज, दुर्मख नागदेवी ।
तेह तणी धी नागलए, स्वजने परणावी ।।२१।।७०।।

साभली मुनिवर कम कम्युए, साभलि वछ वात ।
धर्म विना जीव नवि लहिए, इद्रादिक ता तउ ।।२२।।७१।।

वचन सुणी अति बीहनुए, श्रावक व्रत लीधां ।
समकिति लीधउनिर्मलउए, मूलगुण दीधा ।।२३।।७२।।

मुझ घिर स्वामी आहार लेई, पवित्र करू गेह ।
आहार लेई मुनिवर कहिए, अखय अन्न एह ॥२४॥७३॥

आहार लेई धर्म वृधि कही, चाल्यु नत खेव ॥
कमडल लेई पूठ थकी, चाल्यु भवदेव ॥२५॥७४॥

मारग जाता चिंतविए, किम जाउ गेह ।
ककण केरा काज सवि, किम करूंय तेह ॥२६॥७५॥

मारग जाता देखविए, सरोव नर वन वृक्ष
स्वामी जाणउ मुझ गेह, मुझ मडप दक्ष ॥२७॥७६॥

वोलि मुनिवर सुणु वछ, नही मंडप गेह ।
चालिवि मुनि आवीयए, विठा तिहा तेह ॥२८॥७७॥

देखी मुनिवर वोलिया ए, भाई प्रति वोधी ।
दिक्षा लेवा ल्यावीउ, भवदेवह सोधी ॥२९॥७८॥

वचन सुंणी मन चितविए, हवि करूं केम ।
वाघ दोतड विचि पड्यउ, ए जीव धरूं केम ॥३०॥७९॥

लाज आणी मन आपणिए, मागि व्रत हेव ।
ससि दिक्षा मुनिवरिए, दीधी भव देव ॥३१॥८०॥

कामिक तप अतिघणु ए करि मन आणी ।
नागला रूप सौभाग्य कला, मन माहि जाणि ॥३२॥८१॥

वर्द्धमान पुर संघ सहित, आव्या मुनि ताम ।
ध्यान धरी मुनिवर सहुए, विठा निज ठाम ॥३३॥८२॥

आहार लेवा नगर भणी, चाल्यु भवदेव ।
चैत्यालुं तव देखीउं ए ससि हूउ हेव ॥३४॥८३॥

वस्तु–तेह मुनिवर तेह मुनिवर आव्यु पुर मध्य
नेह धरी मन आपणि, नागला नारी उपरि अपार ।
नगर माहि वली पिसंता, देक्षु चैत्य नवु उधार ।
देखी प्रसाद रूयडउ, मन चिंति मुनिराय ।
चालीनी तिहा आवीउ, दीठी तिहा एक नारि ॥३५॥८४॥

दोहा— क्षीण गात्र अति दूबली जोवानि नही लाग ।
मुनिवर वादी नागला, विठी अग्रं वि भाग ॥१॥८५॥

धर्मवृद्धि मुनि इम कही, पूछि पूर्व विचार ।
भवदत्त भवदेव द्विज, किसु करि व्यापार ॥२॥८६॥

वचन सुणी कहि नागला, मुनि हूया भवतार ।
सामली मुनि इम वौलीउ, नागला नारि विचार ॥३॥ ८७॥

यौवन पायी अति घणु, परण्यु भवदेव ।
नारि तेह वडा किसु करि, किम रहकि आधार ॥४॥८८॥

वचन अलापिउ लक्षु, जाण्यु ए भवदेव ।
स्थितिकरण करू घणु, प्रतिवोध मुनि हेव ॥५॥८९॥

वचन सुणी मुनिवर तणां, वोलि नागला नारि ।
रे रे मुनिवर तुझ कहु, साभलि वचन उदार ॥६॥९०॥

जिन दिक्षा जिन दर्शन, प्रामी धरम सयोग ।
विपय सुख मन माहि धरी, कुण इछि वर भोग ॥७॥९१॥

समकित चिंतामणि समु, प्रामीनि ममहार ।
विपय सुख दुर्गति तणा, दु ख देइ अपार ॥८॥९२॥

स्वरग मुगति सुख दायनी, प्राणी दिक्षा सार ।
नयरतणी दाता सही, कुण ई छिए नारि ॥९॥९३॥

कूड कपटनी कोयली, नारी नठिर जाति ।
नरकि देखी रूयडउ, करि पियारी तात ॥१०॥९४॥

सीयल रयण नवि तेह गमि, हीयाडा सु धरी मोह ।
रस सु रमि अने रडी, अन्य चडावि दोह ॥११॥९५॥

दया रहित अति लोभणी, धर्म न जाणि सार ।
दया मणी दीसि सही, रूठी क्रूर अपार ॥१२॥९६॥

नारी रूप न राचीय, गुण राचउ सहू कोइ ।
जे नर नारी मोहीया, हो नवि जाणि लोय ॥१३॥९७॥

नवे द्वारे अशुचि चविमल पुस्यु तस देह ।
असत्य भाषि सदा, सत्य न बोलि तेह ॥१४॥९८॥

इशा वचन ज साभली मास्यु मुनिवर लाज ।
अधो मुख जोह घणउ, नवि सरयुउ मुझ काज ॥१५॥९९॥

जे पूछिति नागला, ते मुझनि तु जाण ।
देह कुछित मुझ देखीनि, मम कर मोह अयाण ॥१६॥१००॥

मोहि नर दुर्गति लहि, प्रामी दुखनी खाणि ।
मोह करि जे प्राणीया, करि सवि जीव नीहाणि ॥१७॥ १०१॥

द्रव्य हतु जे ताहरू, खरचीनि मनोहार ।
चैत्य कराव्यु रूयडउ, पुण्य तणु आधार ॥१८॥१०२॥

परिग्रह सहूइ परिहरी, श्रावक व्रत धरी सार ।
हणि स्यानिक तप जप करि, रहती जिन आधार ॥१९ ॥१०३ ॥

एहवी मुझनि जाणीनि, चचल चित्त मम थाय ।
निश्चल मन करे आपणु, सेवि जिनवर पाय ॥२०॥१०४॥

वचन सुणी नारी तणा लाज लही अपार ।
नाव समान मुझ तु हूई, उत्तारवा भव पार ॥२१॥१०५॥

जे नारी सहूइ कहि ते ए नारन होइ ।
स्वरग मुगति सुख दायनी, एह समान न कोइ ॥२५॥१०६॥

क्षमा क्षमतव्य कही, आव्यु वनह मझार ।
गुरु चरणे प्रणमी करी, मागि संयम भार ॥२३॥१०७॥

माव चारित्र लेई करी, तप जप करि अघोर ।
राग द्वेष सहू परिहरि, विषय निवारि चोर ॥२४॥१०८॥

वि मुनिवर अति रूपडा, ध्यान धरि बन माहि।
सयम पालि निर्मल, धरीय ते मन उछाह ॥२५॥१०९॥

अवमानि विपुलाचलि, आव्या वे मुनिराय।
अणसण लेई ध्यान सू, मुमि वे मुनिकाय ॥२६॥११०॥

वस्तु वेह मुनिवर वेह मुनिवर करी तप घोर।
सप्त सागरनि आयु खि तृतीय स्वरग अवतार।
प्रामो समकित पालि निर्मलु चारित्र भावि।
स्वरग गामीय सुख भोगवि वे अति घणु कीडा करि अपार।
काल गउ जाणि नही भोग लही सुख सार ॥२७॥१११॥

ढाल–मिथ्यामोती

जंवू द्वीपि अति भलु ए, पूर्व विदेह विक्षात तु।
उत्सर्प्पणी अवसघणीए, काल तणी नही वात तु ॥१॥११२॥

सलाका पुरुपह उपजिए, अतर नही तिहा हेततु।
कोड पूरवु नु आयु खुए, पच सिघ नु देहतु ॥२॥११३॥

द्रव्य मिथ्यात्व तिहा नहीए, दीसि सास्वतु काल तु।
पच ज्ञान तिहा सास्वताए, सास्वता तत्व रसाल तु ॥३॥११४॥

विदेही मुनिबर अतिघणाए, मुनि दीसि रिधिवंत तु।
मोक्ष मारग एक जाइए, सचि सौख्य अनत तु ॥४॥११५॥

व्यसन एक तिहा नही, एक नवि दीसि तीहा कुरीति तु।
सत्य भाषि नर अति घणाए, नवि दोसि तिहा ईत तु ॥५॥११६॥

तस मध्यि देसह भलउए, पुकलावती तसु नाम तु।
मटव घोष करबट भरयु ए, नगर दीसि ठाम ठाम तु ॥६॥११७॥

पुडरीकणी नगरी भलीए, देशह तेह मझारतु।
चैत्य चैत्याला अति घणा ए, बन उपवन अपार तु ॥७॥११८॥

ध्यान धरि मुनि अति घणाए, स्वरग मुक्ति तणि हेतु तु।
पुण्यवत नर अति भलाए, नारी नर शीलवत तु ॥८॥११९॥

तेह नगरी नु राजीउ ए, वज्रदत तेह नाम तु।
धीर प्रतापी अति भलु ए, सोहि अभिनवु काम तु ॥१२०॥

तस पट राणी रूयडीए, विशालाक्षी तस नारि तु।
भवदतु जीव जे अछिए, त्रीजा स्वरग मझार तु ॥१०॥१२१॥

तिहाँ थकी चवी उपनुए, तास यपरि अवतार तु।
सागरचन्द्र नामि भलु ए, दिन दिन वाधि अपार तु ॥११। १२२॥

वीतशोका नगरी भली ए, तेह देस माहि जाण तु।
मणि माणिक पुरी अछिए रत्न तणी ते खाणि तु ॥१२॥१२३॥

तेह नगरी नु राजीउए, चक्रधर महा पद्म तु।
षट खण्ड ते भोगविए चौद रत्न तेह छद्म तु ॥१३॥१२४॥

नवह निधि घिर अति भलीए, सहस बत्रीस राय तु।
छन्नू सहस अते घरीए, सेवि तेह न पाय तु ॥१४॥१२५॥

अठार कोड तुरंगमाए, लक्ष चउरासी नाग तु।
एतला रथ चदन तणा ए, पायदल तणु गही भाग तु ॥१५॥१२६॥

छन उप कोडि ग्राम अछिए, सहम बत्रीसह देस तु।
त्रण कोडि गोकल अछिए, एक कोडि हल हेसतु ॥१६॥१२७॥

राज रिद्धि सुख भोगविए, पुत्र रहित राय तु।
पुत्रनी वाछा जव करिए, सेवि जिनवर पाय तु ॥१७॥१२८॥

भवदेव चरजे अछिए, स्वरग थकी चवी हे ततु।
शिव कुमार नरमि भलु ए, पुत्र हुउ तस गेह ॥१८॥१२९॥

बीज चंद तणी परिए, दिन दिन वाधि देह तु।
आठ वरस जव वु लीयां ए, भणवा मुक्यु तेह तु ॥१९॥१३०॥

शास्त्र सवे भणावीउए, प्राम्यु ज्ञाननु सच तु।
विवाह मेली परणावीए, कन्या सुभसि पंच तु ॥२०॥१३१॥

तिहुं सरसा सुख भोगविए, क्रीडा करि अपार तु ।
एह कथा हवि इहां रही ए, अवर सुणु विचार तु ॥२१॥१३२॥

सागरचद्र नामि भलु ए, सुख भोगवि समान तु ।
अवधि ज्ञानी मुनि आवीयाए, आव्यु नगर उद्यान तु ॥२२॥१३३॥

नगर लोक कुमारसु ए, चाल्या सब परिवार तु ।
मुनि वांदी धर्म साभलीए, पूछि निज भवसार तु ॥२३॥१३४॥

पूरव भव मुनि वर कह्या, ए प्राम्यु अति वैराग्य तु ।
दिक्षा लेई मुनि तप करिए, करतु जीवनु माग तु ॥२४॥१३५॥

विहार करंतु आवीउ ए, वीतशोक मुनिराय तु ।
राज द्वार पासि आवीउ ए, सेठि प्रणम्या पाय तु ॥२५॥१३६॥

पडघाई घिर आणीउ ए, अहार दीउ अपार तु ।
रत्न वृष्टि तिहा हुई ए हुउ तिहा जयकार तु ॥२६॥१३७॥

कोलाहल हुउ घणाउए कुमरि सुणीउ ताम तु ।
मुनि साहमु जव जोई ए, जाति समर तिणि ठाम तु ॥२७॥१३८॥

पूरव वृतात ह जाणीउ ए, आव्यु मुनिवर पास तु ।
देखी मुनिवर मूरछ्यु ए, चेत रहित नीसास तु ॥२८॥१३९॥

स्वजन मिली तिहा आवीयाए पूछि मातनि तात तू ।
कुण कारण तु मूरछ्यु ए, अम्हनि कहु सहू वात तू ॥२९॥१४०।

दिक्षा लेउ अह्मो रूयडीए, तप करसू अह्मो माय तु ।
सुणीय वचन विलखी हुई ए, कुश मावली अनिराय तु ॥३०॥१४१॥

तात निवारि पुत्रनि ए, दिक्षा नु नही काल तु ।
जिन दिक्षा दोहिली अछिए, घिर रही व्रत पालतु ॥३१॥१४२॥

सुणी वचन तातह तणाए, घिर रहु कुमार तु ।
तप करि तिहा अति घणु ए, नीरस लेइ आहार तु ॥३२॥१४३॥

विषय सुख सहू परिहरिए, परिहरि नारी सग तु ।
राग द्वेष सहू परिहरिए, ध्यान धरि मनरग तु ॥३३॥१४४॥

वरस चउरासो सहश्र लगि, तप करयु अपार तु ।
अन्त काल दिक्षा धरीए, सयम पाली सार तु ॥३४॥१४५॥

सुभ ध्यानि काल करीए, छट्ठा स्वारग मझार तु ।
विद्युत्माली देव हूउ ए, इद्र तणु अवतार तु ॥३५॥१४६॥

सागर दशनि आयुषिए, नगि जाणि गत काल तु ।
च्यार देवीसउ मन रलीए, भोगवि सौख्य रसाल तु ॥३६॥१४७॥

सागरचन्द्र तप करीए, पाली अणसण सार तु ।
तिणि स्वर्गि प्रेते इहूउए, भोगवि सोक्ष अपार तु ॥३७॥१४८॥

वस्तु—सुणु श्रेणिक सुणु श्रेणिक एह कथा सार ।
विद्युन्माली देवता च्यार नारिसु इहां आव्यु ।
आज थकी दिन सातमि चवीय भवह अवतार ।
पावि मगध देश राजग्रहि अर्हदास घिर सार ।
जिनमती कूखि अवतरि जबूकुमार भवतार ॥३८॥१४९॥

चुपई—जवूद्वीप भरत मझार, नयर राजग्रह उत्तम ठार ।
राजकरि तिहा श्रेणिक राय, सवि भूपति प्रणमि तस पाय ॥१॥१५०॥

नयर धुरंधरि श्रेष्ठी वसि, अर्हदास नामि उल्हसि ।
धर्मधुरा धरि मन धीर, समकित भूख्यउ तास शरीर ॥२॥१५१॥

दाता धरमीनि गुणवत, राज्य मान अति शीलवत ।
च्यार अहार देइ बहू दान, मन अहिकार न धरि मान ॥३॥१५-॥

तस घिर राणी शीलि सती, चद्र वदना नामि जिनमती ।
पीन पयोधर मदनावास, बिबाधर कोकिल सकास ॥४॥१५३॥

नव योवन पूरि ते नार, कठ सोहिए काउल हार ।
शीलाभरण भूखयउ तस देह, दिन दिन पति सू अधिक सनेह ॥५॥१५४॥

एक दिवस सूती जिनमती, पश्चिम रयणी देखि सती ।
पंच स्वपन देखा अभिराम, नयणे नीद्र न आवि ताम ॥६॥१५५॥

पहिलि जंबू वृक्ष विशाल, परिमल सहित फल फूल रसाल ।
बीजि निरधूम अग्नि अगीठ, शाल क्षेत्र त्रीजि घणउ मीठ ॥७॥१५६॥

सरोवर चुथि दीठउ जाम, हस सारस क्रीडा करि ताम ।
पचमि समुद्र दीठउ तिहा सार, हूउ प्रभात जागी तिणि वार ॥८॥१५७॥

अर्हदास आगलि कही वात, पच स्वपन देख्या विक्षात ।
सुणी वचन वन जाई नाह, मुनिवर प्रणमी पूछि साह ॥९॥१५८॥

सुणी वचन बोलि मुनि रही, स्वपन फलाफल जाणउ सही ।
जबू फल देख्यउ तम्हेव नारि, पुत्रहसि विर जबूकुमार ॥१०॥१५९॥

निरधूम अग्नि देख्यउ तम्हे सुणउ, क्षय करसि सवे करमह तणु ।
शील क्षेत्र देख्या अभिराम, लक्ष्मीपति होसि गुणधाम ॥११॥१६०॥

जल पूरयु सर दीठउ सार, पाप तणु करसि परिहार ।
रत्नाकर देख्यु तिणि वार, जन बोधी भव तरसि पार ॥१२॥१६१॥

बरस सोले त्यजी घर वार, च्यारि नारि छडी परिवार ।
दीक्षा लेई तप करसि सार, चरम देही होसि भवतार ॥१३॥१६२॥

सुणी वचन हरख्यु अर्हदास, स्वजन सहित आव्यु आवास ।
सुखवलसि नारीनि नाह, काल गयु नवि जाणि साह ॥१४॥१६३॥

आउ अति तडित्माली देव, स्वरग थकी चवी ते खेव ।
जिनमती उपनु गर्भ, दिन दिन वाधि तेहज दभ ॥१५॥१६४॥

गर्भ करी सोहि जिनमती, उत्तम डोहला धरती सती ।
त्रिवलय भग न पामि देह, सुख विलसि रमनी निज गेह ।।१६।।१६५।।

मन वछित पूरि भरतार, ए सहू पुण्य तणु विस्तार ।
पुण्यि नर पामि घणी रिधि, पुण्यि घिरि हुइ सहू सिधि ।।१७।।१६६ ।

मास नव पूरा थया जसि, पुत्र जनम हुउ घिर तसि ।
आषाढ घिर अजू पालि पाख, आठिम दिन जाणउ ए साथ ।।१८।।१६७ ।

वस्तु—पुत्र जन्म पुत्र जन्म अति मनोहार ।
घिर घिर उछव अति घणा, घिर घिर वर्त्तिय मंगल च्यार ।
स्वजन जन सहू हरषीउ, नयर लोक अति अपार ।
बदी जिन विडदावली, बोलि अति घणी सार ।
हरष हूड हीइडि घणु अर्हदास तस नारि ।।१९।।१६८।।

ढाल मालंतडानी

घिर घिर उछव अति घणाए, मालतडे घिर घिरमंगलच्यार सुणु सुदरे ।
नयर लोक सहू हरषीउए । म उछव करि रे अपार ।।१।।

घिर घिर गुडी उछलीए । म तलीया तोरण सार ।
बदी जिन बोलि वणु ए, मा० विउदा वलीय कुमार ।।२।।१७०।।

जय जय शब्द करि घणु ए ।मा०। आकासि रही देव ।
दुंदभि नाद करि घणु ए ।मा०। रतन वृष्ठि करि खेव ।।३।।१७१।।

नारि अक्षाणा लेई लेई ए ।मा०। आवि श्रेष्ठ आवास ।
वधावीनि इम कहीए ।मा०। जीव जे कोडि वरस ।।४।।१७२।।

नयर सहू सणगारीइए ।मा०। वलीय विसेखि हाट ।
चउहटा सवे सणगारीइए ।मा०। घिर गवाक्षनि वाट ।।५।।१७३।।

नृत करि करि नृत्यगनाए ।मा०। गीत गाइ रसाल ।
वाजित्र वाजि अतिघणां ए ।मा०। ढोल ददामा कसाल ॥६॥१७४॥

निवली तूरमा दल घणाए ।मा०। भेरि वाजि वर चग ।
इणी परि जनम महोत्सवए ।मा०। श्रेष्ठि धिरहूउ रग ॥७॥१७५॥

जिन मदिर पूजा रचिए ।मा०। पूज जिनवर देव ।
चउविह दान देइ घणाउए ।मा०। सदगुरुनी करि सेव ॥८॥१७६॥

इणी परिदश वासरहूयाए ।मा०। उछित्र सहितअपार ।
सोयणा अणसारि करू ए ।मा०। जवूय नाम कुमार ॥९॥१७७॥

वीजना चद्र तणी परिए ।मा०। दिन दिन वाधि वाल ।
एणी परि अष्टवर सहूयाए ।मा०। सु दर सिगुण माल ॥१०॥१७८॥

जिनवर बिंव पूजी करी ए ।मा०। भणावा मेल्यु कुमार ।
जैन उपाध्याय भणावताए ।मा०। प्रामीउ भणवा पार ॥११॥१७८॥

कुण कुण सास्त्रज जोईयांए ।मा०। कुण कुण ग्रंथनी जाति ।
कुण कुण भासज जोईया ए ।मा०। कुण कुण जाणि वात,॥१२॥१७९॥

व्याकर्ण शास्त्रज वली भण्यु ए ।मा०। साहित्य तर्क प्रमाण ।
योतिक वैदिक ते भण्यु ए ।मा०। छदनि काव्य पुराण ॥१३॥१८०॥

चौदह विद्या नर लक्षण।ए ।मा०। जाणि लिप अठारा ।
सर्व कलावती सीखीउ ए ।मा०। जाणि सास्त्र विचार ॥१४॥१८१॥

धिर आवी क्रीडा करिए ।मा०। रायना पुत्र सघात ।
राज लीला करि घणी ए ।मा०। धर्म तणी करि वात ॥१५॥१८२॥

रूपि काम देव समुए ।मा०। वल करी सिंध समान ।
समुद्र समु गभीर छिए ।मा०। नवि धरि कोवनि मान ॥१६॥१८३॥

यशकीर्ति न घणउ विस्तरू ए ।मा०। भूमण्डल जग माह ।
वन जातां देखी करी करीए ।मा०। पौर नारी मन माहि ।।१७।१८४।।

विरहानल व्यापी घणु ए ।मा०। करिगछि विविध प्रकार ।
पगनु नेउर कठि धरिए ।मा०। कठ तणु पगे हार ।।१८।।१८३।।

किहिडि तणी कटि मेखलाए ।मा०। कठ धरी तिणि वार ।
मस्तक वेणी सोहामणाउ ए ।मा०। किड घरि सुविचार ।।१६।।१८६।।

आपणु पुत्र मुकी करी ए ।मा०। पुरनु पुत्र घरेव ।
घरनां काम मूकी करी ए ।मा०। चालि जे वात तखेव ।।२०।।१८७।।

रूपदेखी कुमर तणुए ।मा०। प्रामि मोह अपार ।
मन सकल्प धरि घणु ए ।मा०। देखि रूप कुमार ।।२१।।१८८।।

माहो माहि एकसु कहिए ।मा०। वोलि एहवी वात ।
घन जननी कुमर तणी ए ।मा०। धन धन एहनु तात ।।२२।।१८९।।

जो थिर पुत्र एह अछिए ।मा०। सरया सवे तेह नां काम ।
शीलवंत स्त्री जे अछिए ।मा०। तेह लेइ एहलु नाम ।।२३।।१९०।।

कामा कुल वोलि इसु ए ।मा०। ते करीइ तप सार ।
अन्य जन्म एह समुए ।मा०। प्रामीइए भर्त्तार ।।२४।।१९१।।

आपणु यसकीत्ति न सहूए ।मा०। सांभलि आपणे कान ।
इणी परि थिर सुस्वि रहिए ।मा०। धरतु धरमनु ध्यान ।।२५।।१९२।।

उत्तम पुत्र एकि भतुए ।मा०। भार धरि कुल जेह ।
घणे भुंडे सु कीजीइए ।मा०। खांपण आणि जेह ।।२६।।१९३।।

श्रेणिक रायनि बापसुए ।मा०। स्नेह धरि रे कुमार ।
सुख विलसि थिर रह्या ए ।मा०। भोगवि सोक्ष अपार ।।२७।।१९४।।

तिणि नयर विवहारीउए ।मा०। सागरदत्त ते नाम ।
पद्मावती कूखि भलीए ।मा०। पदूमश्री सुता नाम ।।२८।।१९५।।

धनदत्त बीजु भलुए ।मा०। कनकमाला तस नारि ।
कनकश्री पुत्री भलीए ।मा०। सर्व कन्या माहि सार ।।२९।।१९५।।

वैश्रवण त्रीजउ भलीए ।मा०। विनयमाला स्त्री जाण ।
विनयश्री दुहिता भली ए ।मा०। बोलि मधुरी वाणि ।।३०।।१९६।।

वणिकदत्त चउथउ अछिए ।मा०। विनयवती तस नारि ।
लक्ष्मी दुहिता तस घिर ए ।मा०। जाणि परम विचार ।।३१।।१९७।।

चार कन्या अछि अति भली ए ।मा०। रूप सोभागनी खाणि ।
पृथु पीन पयोधरा ।मा०। बोलि अमृत वाणि ।।३२।।१९८।।

कटियत्र अति रूडीए ।मा०। मृग नयणी गुणवंत ।
स्वरग थी च्यारि अवतरीए ।मा०। जाणि पूर्व वृतात ।।३३।। १९९।।

सास्त्र सवि भणावीया ए ।मा०। कन्या केरे तात ।
कला गुण सहू सखिवीए ।मा०। हुई छि लोक विक्षात ।।३४।।२००।।

पुत्र पुत्री जण्या विना ए ।मा०। पूरवि बोल्या बोल ।
अर्हंदास धिर आवीया ए ।मा०। मनसु धरी रगरोल ।।३५।।२०१।।

आसण विसन धणां दीयाए ।मा०। मान दीधारे अपार ।
मीठा मधुरा बोलीयाए ।मा०। ते बिठा तिणि ठाम ।।३६।।२०२।।

दूहा—ते च्यार तिहां बोलीया, अर्हंदास प्रतिसार ।
जंबूकुमार ए पुत्रीया, योग्य अछि भरतार ।।३७।।२०३।।

इशा वचन जव साभली, मनसु धरी उल्लास ।
स्त्रीय सहित आलोचियो, प्रमाण कहि अर्हंदास ।।३८।।२०४।।

उत्तम जोसी तेडीउ, लगन लीउं तिणी वार ।
अखय तृनीया नु दिन, उत्तम जाणी सार ।।३९।।२०५।।

निज मदिर च्यारि गया, हरष धरि मन मर्सहि ।
धिर जाई धिर आपणि, उछव करि विवाह ।।४०।।

अर्हंदास धिर इणी परि, उछव हुइ अपार ।
मडप खाल्या रूपडा, अति घणी विस्तार ।।४१।।२०७।।

तोरण बाध्या रूपडा, चद्रो या चुसाव ।
मुगता फलना भु वखा, पुष्पतणी नरमाल ।।४२।।२०८।।

इणी परि उछव पच घिरि, गीत गान अपार ।
महोछव हुइ अति घणु, को नवि लाभय पार ।।४३।।२०९।।

वस्तु—वसत आव्यु वसन्त आव्यु अति हाली रग ।
कामीजन मनरजनु, पथीजन उद्वेष करतु ।
कोकिल कलिरव अति, हूया मधुप शब्द अधिक ।
धरता मंडप अतिघणा, दान करी वरसत ।
विवाह उछव जोयवा, आव्यु मास वसंत ।।४४।।२१०।।

ढाल सखीनी

सखी आव्यु मास वसंत, वन वन वृक्षत मुरीयाए ।
चपक चूत रसाल, केसूयडा घणा आवीयाए ।।१।।२११।।

मलयाचल संभूत वाइ, सु गध वाइ घणाउए ।
सुखकरी कामी काय, पंथी जन दुख तणउए ।।२।।२१२।।

सखी कोकिल पचम राग, हसी हसी सबद करीए ।
आव्या वृक्ष असख्य, घन सकाम पूर धरिए ।।३।।२१३।।

सखी आव्यु जाणी वसत, क्रीडा करिवा वन भणीए ।
नगर लोक समेत, साथि सेना अति घणीए ।।४।।२१४।।

वन क्रीडा वर्णन

सखी श्रेणिक राय सुजाण, रमवा वन भणी चलीउए ।
चेलणा सहू परिवार, जबू कुमार वली भावीउए ।।५।।२१५।।

सखी वन आव्या सहू कोइ, वसत क्रीडा करि भलीए ।
सरोवर झीलि लीक, जबूकुमर झीलि वलीए ।।६।।२१६।।

सखी क्रीडा करि चिरकाल, सरोवर कठि आवीयाए ।
सज करी वाहन सर्व, नगर भणी सवे चालीयारे ।।७।।२१७।।

सखी भेरी मुगल नाद, ढोल ददमा अति घणाए ।
रण काहण रणतूर, पारन पामु तेह तणु रे ।।८।।२१७।।

हाथी का पागल होना

सखी तिणि दिन श्रेणिक नाग, साकलि ओडी मन रलीए ।
चाल्यु नगर मझार, दुष्ट पणु धरतु वली रे ।।९।।२१८।।

सखी वन माहि आव्यु नाग, वन वृक्ष ऊपाडी यारे ।
ताल तमाल कदंब, सल्लकी कपित्थ ऊजाडीयारे ।।१०।।२१९।।

जबू भंबीर अशोक, सहिकार नारिंग वलीए ।
खर्जूर कदली द्राख, क्रमुक चपक पाडलीए ।।११।।२२०।।

श्रीखड दाडिम विलूनाल, केर राइण खरीरे ।
नागवेल वर बोल, आखोड वदाम बुलमरीरे ।।१२।।२२१।।

सखी धुव खरणी गिरमाल, वहेडा महूडा आंवलीरे ।
लीवू इ लीवक थार, बीजोरी वीली वलीरे ।।१३।।२२२।।

सखीए लाल वग प्रमुख, वन वृक्ष सहू भाजीयारे ।
पंखी सवे अनेक तिहुना माला टालीयारे ।।१४।।२२३।।

सखी महामद पूरयु नाग, अकुशनि मानि नही रे ।
त्रास विन रनि नार, राजादिक लोका सहूरे ।।१५।।२२४।।

सखी दह दिशि नाग लोक, श्रेणिक सु भूपति मवेरे ।
नाग नर नि नारि, प्राण राखु ए मुनविरे ॥१६॥२२५॥

सखी को जपि नवकार, आराधन केत्रि दे डरे ।
सन्यास लेइ केवि, के वि अणसण लेइरे ॥१०॥२२६॥

जम्बुकुमार द्वारा हाथी को बश में करना

सखी दुजयं जाणी नाग, जवकुमार आव्यु वली रे ।
नाग प्रति कुमार दृष्टि, देइ मननी रली रे ॥१८॥२२७॥

युद्ध करि तेह साथ, अकुस घाय मूकि रही रे ।
साग तणा वली घाय, कु डल घाय चूकि नही रे ॥१९। २२८॥

सखी निरमद कर वली नाग, पग देई ऊपरि चड्यु रे ।
फेरवीनि चिरकाल, मुष्ट प्रहारि सुनड उरे ॥२०॥२२९॥

जीतु तेवली नाग, जय लक्ष्मी तिहा पामी उरे ।
पुष्प वृष्टि करि देव, ए तलि श्रेणिक आवीउरे ॥२१॥२३०॥

सखी करीय प्रसंसा सार, मनसु स्नेह घरि घणउरे ।
पुण्यि लाछ भडार, पुण्यि घिर घोडा सुणु रे ॥२२॥२३१॥

पूज्यु श्रेणिक राइ, अर्द्धासन देइ वली रे ।
महोछव सहित कुमार, नगर माहि आवि रली रे ॥२३॥२३२॥

सखी नगर नारि तिनी वारि, वृद्धा त्रि गुम्वि रही रे ।
जोती जवूकुमार, तृपति न पामि ते सही रे ॥२४ ।२३३।

सखी इणि पिरि आव्यु आवास माय वाप स्वजन मिल्यु रे ।
पूछि क्षेम समाधि, कहु नाग तम्हे किम कलु रे ॥२५॥२३४॥

सखी जिम जिम जीतु नाग ते ते पिर सघली कही रे ।
सुखि रहि मदिर माहि, दिन जाता जाणि नही रे ॥२६॥२३५॥

दूहा—एह कथा हवि इहा रही, अवर सुणु तम्हो वात ।
विमान विसी एक आवीउ, विद्याधर विख्यात ।।२७।।२३६ ।

गगनगति विद्याधर का आगमन

गगन, मारग थी मदसि, आव्यु सदसि मझार ।
प्रणमी श्रेणक रायनि, बिठउ ते तिणीवार ।।२८।।२३७।।

विग्र चित्त ते जाणीउ, पूछि श्रेणिक राय ।
कुण कामि इहा आवीउ, वासि कुं कुण ठाम ।।२९।।२३८।।

सामलि राजा तुझ कहू, सहश्र श्रग गिरि ठाम ।
खेचर नु हु राजीउ, गगनगति मुझ नाम ।।३०।।२३९।।

तिणि पर्वत मुझ वासडउ, हू आव्यु जिन काज ।
ते वात तुझ हु कहु, धोमलि तुं मह राज ।।३१।।२४०।।

ढाल सहीनी-रागगुडी

मलयाचल दक्षिण दिसि, केराना नगरी तिहा अछि ।
धन कण सपति पूरीय, ते भली सहीए ।।१।।२४१।।

मृगाक विद्याधर भूपती, तस घिर राणी मालती ।
रूप सौभाग्य गुणो आगलीए, सहीए ।।२।।२४२।।

तेह तणी कूखि उपनी, यौवन करी वली नीपनी ।
विलासवती नाम रूयडड, ए । सहीए । ३।।२४३।।

द्रढ पीन पयोहरा, कनक वर्ण काया वरी ।
मृग नयणी हस गति गामिनीए । सहीए । ४।।२४४।।

एक दिवस रूप देखीय, मन चिंत्ति राय पेखीय ।
वन जाई ज्ञानी मुनि पूछीउए । सहिए ।।५।।२४५।।

कुण वर होसि एहनु, मुनिवर वोलि राय निसुणउ ।
श्रेणिक भूपति वर एह नु । सहीए ।।६।।२४६।।

एसुं मन निश्चि धरी, थिर रहि सुखी करी
ए तलिए अन्य कथातर चालीउए । सहीए ।।७।।२४७।।

हंस द्वीप द्वीपांपती, रतन चूलि तिहा खग पती ।
सपताग राज राय सुख भोगविए । सहीए ।।८।।२४८।।

स्याम दाम भेदि करी, कन्या मागी तिणि खरी ।
तेह नि मृगाक कि नवि दीधीए । सहीए ।।९।।२४९ ।

कोप करी सेना मेली, देस नयर सवे भेलीय ।
पछिए केरला नगरी आवीउए । सहीए ।।१०।।२५०।।

रतनचूल भय मन धरी, नगरी गढ नि अणुसरी ।
स्वीकीय सैन्यइ रहु ते वलीए । सहीए ।।११।।२५१।।

काहलि संग्राम राय करिसि, रतन चूल सुं वली भडसि ।
एहवुं ए पूरव वृत्तात तुझ कहु ए ।।१२।।२५२।।

मान तणु धन जेह नि, सवे पदारथ तेह नि ।
मान रहित मूउ अति भलउए । सहीए ।।१३।।२५३।।

एहवुं कहीनि क्षण रही, चालवा उवम करि सही ।
ए तलि जबूकुमार बोलीउए । सहीए ।।१४।।२५४।।

क्षण पडखु विद्याधरु, जंबूकुमार कहि खेचरू ।
सैन्य लेई श्रेणिक आवसिए । सहीए ।।१५।।२५५।।

हसी करी खग इम कही, सग्राम मारग नवि लहि ।
वामनु हस्ति चंद्र किम ग्रहिए । सहीए ।।१६। २५६।।

सउ योजन मारग दूर, भूचर जावा नवि सूर ।
खेचर पाषि कोइ नवि जाइए । सहीए ।।१७।।२५७।।

भूपति विस्मय प्रामीया, चित्राम लिक्षा दामीया ।
श्रेणिक चिंतातुर तव हूउए । सहीए ।।१८।।२५८।।

हवडा राइ कहि किम करू, किम काया किम जीव घरू ।
अति घणु कष्ट हू प्रामीउए । सहीए ।।१९।।२५९।।

जंबुकुमर द्वारा जाने का प्रस्ताव

चिंतातुर रा देखीउ, जवुकुमारि पेखीउ ।
वोलीए सांभलि राय तुझ कहूए । सहीए ।।२०।।२६०।।

मुझ आदेश देउ राय, खग साथि जाउ तिणि ठाय ।
काजए करसु राइ तह्य तणउए । सहीए ।।२१।।२६१।।

कुमर वचन खग साभली, विस्मि प्राम्यु ते वली ।
रतन चूल आगवि, आवीसु करीए ।।२२।।२६२।।

वचन सुणी तव मन रली, मुझ लेई जाउ खग वली ।
वैरी जीपी मृगाक राज देउ ए । सहीए ।।२३।।२६३।।

तव भाणेज श्रेणिक देई, जय लक्ष्मी तबहु लेइ ।
आपणि नगर वेगि आवसुए । सहीए ।।२४।।२६४।।

श्रेणि पर्वत कुण भेदि, दुर्जय विरि कुण छेदि ।
वलवंत साथि बालक कुण भडिए । सहीए ।।२५।।२६५।।

श्रेणिक राइ इम कहि काल जीव घणा ग्रहि ।
एक सघ शबद गजत्रा सि थणाए । सहीए ।।२६।।२६६।।

एक गरूड बहू अहिदलि, एक जीव संमति रलि ।
एक एक केवली लोक सहू देखिए । सहीए ।।२७।।२६७।।

एक अगनि वन सहू दहि, एक जीव दुख सहि ।
एक जीव मुगति रमिए । सहीए ।।२८।।२६८।।

एक समुद्र जाल बहू, सचि एक दोप गुण बहू ।
वचि एहवी अद्भुत वाणी, खग सुणीए ॥२६। २६६॥

सग्राम जाणी मर मीय, जबू श्रेणिक प्रणमीय ।
विमान लेईवि सैनि लेई चालीए । सहीए ॥३०॥२७०॥

जंबुकुमार का प्रस्थान

वस्तु—ताम श्रेणिक ताम श्रेणिक कही तिणी वार ।
भो भो क्षत्रय्र सज थई जरह जीणसनाह लेइ ।
यान वाहन सय सज करी चतुरग सैन्य सुहृय लेइ ।
विविध वाजित्र वाजतां, आव्या ते तेणि ठाम ।
रत्नचूल खगं जीपवा, श्रेणिक चालि ताम ॥३१॥२७१॥

दूहा—केत लाग चदने चड्या, के तला अस्वारोह ।
सनाह लेई केतला, छांडीनि घरना मोह ॥३२॥२७२॥

सेना वर्णन

पायक आगलि चालीया, सेना सवे चतुरंग ।
समुद्र सरीखीए अछि, रणस्थानिक नही भग ॥३३॥२७३॥

सैन्य सागर तिहां चालता, जल स्थल एकज होइ ।
सम विसम पथा सहू, ते सवे सरखा जोइ ॥३४॥२७४॥

ढोल ददांमा दरवडी, रण काहल रणतूर ।
पच शवद वाजि घणा, जाणे सायर पूर ॥३५॥२७५॥

सैन्य सह तिहा आवीउ, विंध्याचल उत्तग ।
जीव घणा तिहां देखीया, विस्मय पाम्यु मन चग ॥३६॥२७६॥

कपि केकी वाराहनि, हरण रोझ गोमाउ ।
हस व्याघ्र-गज सावरा, मृग वृष महिप निकाय ॥३७॥२७७॥

भिल्ली भिल्लज देखीया, ते आयुध सहित अपार ।
सैन्य साव देखी करी, नाठा ते तिणी वार ॥३८॥२७८॥

तिहा थी सैंन्यज चालीउ, आव्यु कुर गिरि ठाम ।
जिन प्रासाद छि ऊपरि, ते देख्या अभिराम ॥३९॥२७९॥

जिन पूजी जिनवर नमी, मुनि प्रणमी वली पाय ।
पयाश्रम विनाम वा, विश्रामि तिहा राय ॥४०॥२८०॥

राग धन्नासी

के नर समायक करि, के जपि नवकार ।
के जंबुकुमार नी, बोलि क्षाति अपार ॥४१॥२८१॥

तिणि अवसर विमान थी ऊतरी, जंबू कुमर विधाधरू रे ।
केरला नगरी विन्यि आव्या, सैंन्य देख्यु तेणेवा रूरे ॥१॥२८१॥

जंबूकुमर खग प्रति बोलि ए, सैंन्य कहिनु अछि रे ।
रतन शिखिर विद्याधर वैंरी, गढ़वीटीपडउ अछि रे ॥२॥२८२॥

मृगाक विधाधर आपणउरे, स्वामी गढ माहि इणि राक्षु रे ।
वचन सुणी कुमार ज बोलि, क्षण एक विमान तेराखुरे ॥३॥२८६॥

गनन मारगथी ऊतरी रे, हेठउ सैंन्य सागर माहि आव्यु रे ।
विधाधरे जब तेहज दीठउ । दैंत्य दानव भन भाव्यु रे ॥४। २८४॥

द्वार आवी प्रतिहारज कहीउ रतन चूलनि किहि जोरे ।
मागाकि मोकल्यु दूतज आव्यु, इणि स्थान्कि तम्हो घर जोरे ॥५॥२८५॥

नुति स्तुति कर्‌या विना विटउ, सिंह समान तव दीठु रे ।
दैंत्य दानव मानव नही, एह दूत पणउ किम मीठउरे ॥६॥२८६॥

विस्मि प्राम्यु बोलि विधाधर कुण कामि इहा आव्यु रे ।
साभलि रतन चूलह तुझ कहु, न्याय मूंकी कोई चालाव्यु रे ॥७॥२८७॥

रूप सुंदरी स्त्री तम तणि घिर, तेह तणु नही पार रे ।
एक मृगाक पुत्री तिणि कारणि, ए आग्रह नही सार रे ॥८॥२८८॥

मान मुंकी मृगाकज, प्रणमी सुख भोग वुधिर जाइ रे ।
मानि दुजोर्धन नासज, प्राम्यु मानि दुर्गति जाइ रे ॥६॥२८६॥

वापि कन्या श्रेणिक दीवी, ते तुझनि किम देइ रे ।
मोह छाडी आस्या परी, मुकी परस्त्री सुख कुण वेई रे ॥१०॥२६०॥

पर स्त्री कारण रावण राणि, नरक माहि दुख सहिरे ।
वचन सुणी रतन चूलज, कोप्यु इसा वचन काइ कहिरे ॥११॥२६१॥

कोप करी रतन शिखिरज, बोल्यउ तुझ स्वामी भूमि गोचरी रे ।
रावण विधाधर रामि जीतु, तु सूं कीजि खेचरी रे ॥१२॥२६२॥

भूमिचर सिघ खेचर वाय, सतु सुं कीजि खेचरी रे ।
सिघ सियाल सरसा नवि होइ, तुसुं भला भूमि गोचरी रे ॥१३॥२६३॥

क्रोध करी रतनचूल ज ऊठउ, लेउ लेउ दूतज एहजरे ।
सजथाई खेचर सवे, ऊव्या वल जाण्या विना तेहरे ॥१४॥२६४॥

होठ उसी क्रोध करी, कुमर खडग धरी तव उठ्यउरे ।
आयुध सघला कुमरनि, आघा गमनगति तव तूठडरे ॥१५॥२६५॥

दूहा राग आसाउरी

जवुकुमार द्वारा युद्ध करना

जवू कुमर तव ऊठीउ, खडग धरी तिणी वार ।
युध करि खेचर समुवलह न लाभि पार ॥१॥२६६॥

ते आगलि नवि को रहि, जुद्ध करवा नही जाण ।
कोटी भट्ट कहीइ सदा, कवण सहि ते बाण ॥२॥२६७॥

जवू कुमरि एकलि रिण, सग्रामि सेन ।
क्षण एकि विधाधर भग पमाड्या तेण ॥३॥२६८॥

जंवू तिणि अवसरि विधाधरा, माहोमाहि चवति ।
ए बल नही मृगांक नु, ए बल दूत न हति ॥४॥२६६॥

दत्य दानव को देवता, ए बल तेहज होइ ।
इसु निस्यउ मनसु धरी, जुद्ध करि सहु कोइ ॥५॥३००॥

तिणि अवसर मृगाकनि जई कहु वली केण ।
श्रेणिक मोकल्यु को नर जुद्ध करि वली तेण ॥६॥३०१॥

एहवा वचन ज साभली, देवडा वीरण भेर ।
सैन्य सवे लेई आवीउ, मन करी निश्चल मेर ॥७॥३०२॥

केतला समकित लेईनि, अणसण लेई केवि ।
रिण सग्रामि आविया जरह जीण धरी खेव ॥८॥३०३॥

मोहो माहि अति घणउ, सुभट करि सग्राम ।
कंपि कायर हाथ थी, लोह पडि तिणि ठाम ॥९॥३०४॥

पति जुद्ध तिहा हुइ, कायरनि करि भीति ।
जे सग्रामि वाउला, तेहसु करि सम प्रीति ॥१०॥३०५॥

आरति पामी केतला, पुत्रि कलित्र वली मोह ।
पच थावर तिर्यंच गति, मरी करी उपजि छोह ॥११॥३०६॥

रौद्र ध्यानि मरी केतला, मरी करी नरकि जाम ।
धर्म ध्यानि मरी केतला, देव मनुष्य गति थाय ॥१२॥३०७॥

वाणे चक्रि मुदगरि खडग तो मरनि पास ।
कु त घेनुनि साग सु, उभय सैन्य हइ नास ॥१३॥३०८॥

रत्नचूल कुमर सु, युद्ध करि अपार ।
मुइ थकी तव देखीउ, मृगाकराय तिणी वार ॥१४॥३०९॥

कुमरि मुकी अवन्रि, रत्न शिखिर आव्यु भूमि ।
नाग चड्युए कुण अछि मृगाक पुछि एमि ॥१५॥३१०॥

गगनगति हम उच्चरि, तम विरीए जाण ।
एसु जाणी युधह करि को नवि मूकि माण ।।१६।।३११।।

छत्रीस आउध लेईनि तिहाँ करि सग्राम ।
अवसर लही नाग पास, सुमृगाक वाध्यु ताम ।।१७।।३१२।।

आठ सहश्र खग जी पीनि, कुमर आव्यु भुइ लग ।
जुद्ध करता देखी करी, विस्मय पाम्यु खग ।।१८।।३१३।।

वस्तु बंध

तिणि अवसर तिणि अवसर विद्याधर सहू कोइ
विस्मय प्राम्या अति घणउ, माहो माहि करिए वात ।
ए सामान्य नर नवि अछिए सीकरी तेहनी सवे क्षात ।
जुद्ध करता देखी करी विस्मय पाम्य खग ।
आठसहस खग जीपीनि, कुमर आव्यु भूइ लग ।।१६।।३१४।।

राग विराडी ढाल दमयंतिनो

सग्राम भूमिज देखीय पेरवीय रौद्र रूप इम चिंतवए ।
निरापराध ए खेचरा भूचरा मारयामि इम चिंतविए ।।१।।३१५।।

निरदय भाव ते मनधरी परहरी दयाभाव ते अति घणुए ।।
ए वडउ कर्ममि काइ करूं, करूय भोगव जीवतु आपणउ ए ।।२।।३१६।।

पूरवि जीव जे करम करि ते करम इह लोकि जीव भोगविए ।
इसु चित्त कोमल जव कर्यउ तव आगिल आवी खग इम चविए ।।३।।३१७।।

साभलि कुंमर तुझ कहुं तुझ विण आठ सहश्र खग कुण हणिए ।
दूत वचन मृगांक सुणी सग्राम कीधु, गगन गति इम भणिए ।।४।।३१८।।

रतन सिखर प्रस्ताव लही, साहीय नाग पासि बाधीउ ए ।
इसा वचन जव साभली क्रोधिय कुमरि बाणज साधीउ ए ।।५।।३१९।।

महा उरग मणि कुण ग्रहि कुण काल मुख पिसीनी सरिए ।
मद पूरयउ गज कुण धरि, कुण पुरष सिंह सावो सग्राम करिए ॥६॥६२०॥

जिनधर्म पाखि सुख नही पापिय नरग माहि जीव दुख सहिए ।
मुझ छता मृगाकज साहीय, देसन परमाहि कुण रहिए ॥७॥६२१॥

खडग घरी मुझ आगलि कुण रहि गगन गति मुझ तुम्हो कहउए ।
कुमर वचन खगपति सुणी, सुणीय सज्ञा सेना इम लहीए ॥८॥३२२॥

उभय सैन्य तत्र सज थई जरह जीण लेइय आव्यु अति भलाए ।
रण काहल रण वाजीया गाजीया ढोल नीसाण एकलाए ॥९॥३२३॥

रतनचूल रण आवीउ भावीउ जबूकुमारनि अति रलीय ।
उभय सैन्य तिहा एक थई, थईय युद्ध करि सवे एकलाए ॥१०॥३२४॥

हस्ती-हस्तीसु भडि असवार असवार साथि अति घणउए ।
रथवत रथवत सुकरि, करिय संग्राम पार विना घणउए ॥११॥३२५॥

रतनचूल पासी आवीउ आवीय कुमर कहि विद्याधरूए ।
मृगाक साही मुझ आगलि जीवतु किम रहे सतु खेचरूरे ॥१२॥३२६॥

आठ सहस्र खगमि मारी याहवि तुझ तणु वारू अवीउए ।
जु तुझ माहि वल अछि पछि काउ विद्याधर ल्यावीउए ॥१३॥३२७॥

एणे राके मारे काइ अछि आपणविन्य जुध करूंयकलाए ।
एसा वचन जल साभलि रण सग्राम करिय विन्यि ते अति भलीए ॥१४॥३२८॥

दूहा—रण काहल रण वाजीया वागा ढोल नीसाण
वाणगा भेर तिहा अति घणा कोनवि लाभि माण ॥१५॥३२९॥

ढाल मोह पराजतनी—राग सामेरो

तिहां कोध करीनि ऊठीया, मुकि वाण अपार ।
तिहा मेघ तणी धारा परि वरसि तिणिवार ॥१॥३३०॥

तिहा सघ तणी परिगाजतां, मेहलइ नही ठाम ।
तिहा छत्रीस आयधु लेईनि, राइ करि संग्राम ।।२।।३३१।।

तिहा सबल वैरी तव जाणिनी, समरि देव बाण ।
तिहा नाग वाण राइ मूकीउ, कुमर हूउ जाण ।।३।।३३२।।

तिहां गुरड वांण कुमरी धरी, मेरू तिणि वार ।
तिहा अगनि वांण वैरीघरि, मउ क्यु उ सैन्य कुमार ।।४।।३३३।।

तिहा अगनि सघलि हुई, हूउ हाहाकार ।
तव जरह जीण वलि घणां, वलि रयण अपार ।।५।।३३४।।

तेह समाववा मूकीउ, कुमरि मेघ वाण ।
तिहा गाज वीज करी, आवीउ आव्यु धन प्राण ।।६।।३३५।।

तव वाय वाण राइ प्ररीउं, कुमर प्रति हेव ।
तिहां पवनि मेघनि वारीउ, हरख्यउ सहू सेव ।।७।।३३६।।

तव कटक सहु नासी गउं, नाग सवे भूप ।
तिहा हा हा कार हूउ घणु, हूउ वली कोप ।।८।।३३७।।

आकासि नारद रही, नीच्यु तिणी वार ।
देव सवे तिहा नाचीया, वोल्या जय जय कार ।।६।।३३८।।

युद्ध में जम्बु कुमार की विजय

दहा—नाग पास मूकी करी, साहउ रतनचूल ।
सैन्य सवे भंग पामीउ, जिम नासि मृगतूल ।।१०।।३३९।।

जय जय शब्द तिहां हउ, मूकाव्यू मृगांक ।
हरप हूउ हीयडि घणउ, को नवि लाभि वक ।।११।।३४०।।

नगर प्रवेश

रांइ नगर सणगारउ, नगर कीउ प्रवेस ।
नगर स्त्री जोइ घणु, करती नव नवा वेस ।।१२।।३४१।।

फाम रूप देखी भलु विस्मय प्रामी नार ।
घन जननी धन ए पिता, जे घिर एह कुमार ॥१३॥३४२॥

जस महिमा निज आपणउ, साभल तु गुणग्राम ।
मृगाक सभा माहि आवीउ, बिठउ ते निज ठाम ॥१४॥३४३॥

कुमर कहि रत्नचूलनि, सांभल तु महाराय ।
तू राजा मोटु अछि, सेवि तुझ खगराय ॥१५॥३४४॥

मीठे वचन सतोषिनि, कुमरि मुक्यउ तेह ।
नगर पधारू आपणि, काज करू निज गेह ॥१६॥३४५॥

एसां वचन जव साभली, रत्न चूल कहि वात ।
श्रेणिक राजा नोयवा, आवु तम सघात ॥१७॥३४६॥

केतला दिन तिहां रही, विमान रची तिणि वार ।
पचसि रच्या भला, दीसता मनोहारा ॥१८॥३४७॥

रतनचूल तब चालीउ, मृगाक कुमर वली साथ ।
गगनगति वली रूयइउं, कन्या छिवली साथ ॥१९॥३४८॥

कुराल गिरि सहू आवीया, श्रेणिक छि जहां राय ।
हरष वरी हीयडि घणु, प्रणमि श्रेणिक पाय ॥२०॥३४९॥

ढाल भवदेवनी राग धन्यासी

आकास विमान मूकी करी, हेग आव्यु सहू ताम ।
जम्वू कुमर राय तिहा निल्यारे, मिलि सुहू लेई नाम ॥१॥३५०॥

कुरल गिरि सहू आवीया, भेटउ श्रेणिक राय ।
हरष घरी मन आपणि रे, प्रणाछि श्रेणिक पाय ॥२॥३५१॥

कुसल कल्याण सहू पूछीउरे, पूछि सग्राम नी वात ।
पूर्व वृत्तात कुमरि कह्य रे, तिहूनी वोलि सविक्षात ॥३॥३५२॥

कुमरि खग उलखावीयारे, रतनचूलि घरी आदि ।
श्रेणिक राय प्रससीयारे, तिहु प्रति बोली साद ।।कुरल।।४।।३५३।।

मृगाक सुता तिहा परणी उरे, श्रेणिक राय सुजाण ।
सहूइ खग चलावीयारे निज निज मदिर प्राण ।।कुरल।।५।।३५४।।

तिहा थी श्रेणिक चालीउरे, आव्यु विंध्याचल ताम ।
विलासवतीनि देखाल तुरे, विविध कुगति तिणि ठाम ।।
विंध्या चल सहू आवीया ।।६।।३५५।।

विंध्याचल वर्णन

हरण रोझ गज सावरा रे, मृग मयूरनि सेह ।
कपि महषि सिंघ अति भला, देखालतु स्त्रीयनि तेह ।।कुरल।।७।।३५६।।

तिहा थी श्रेणिक चालीउरे, साथि जम्बूकुमार ।
सैन्य सवे साथि अछिरे, देख्यु सौधर्म्माचार्य ।।कुराल।।८।।३५७।।

नगर उद्यान सहू आवीयारे, भेटउ सौधर्म्मा स्वाम ।
हरप हूउ हैयडि घणउरे, प्रणमि मुनिवर पाय ।।९।।३५८।।

तप जप ध्यानि आगलु रे, पचसि शिष्य समेत ।
ज्ञानवत मुनिवर अछिरे, तत्व तणउ जाणि हेतु ।।१०।।नगर।।३५९।।

सौधर्म्म मुनियर वादीयारे, विठु श्रेणिक राय ।
धर्म वृघि मुनिवर कही रे, प्रणमि जबू पाय ।।११।।नगर।।३६०।।

वस्तु—तिणि अवसर तिणि अवसर जम्बूकुमार ।
प्रणमी मुनिवर चरण युग, विठउ ते वली अग्रवि भाग ।
कुमरि मुनिवर पूछीया, स्वकीय भव लही लाग ।
साभलि वह तुझ हु कहु, स्नेह तणी वली वात ।
एक चित्त मनधरवी, पूरव भव सहू क्षति ।।१।।३६१।।

पूर्व भव वर्णन

चुपई—मगघ देश देशा माहि सार, वर्द्धमान पुर उत्तम ठाम ।
भवदत्त भवदेव बाउव कही, समकित पामी दिक्षा लही ।।१।।३६२।।

तप जप संयम पामी कला, तृतीय स्वरग हूया भला ।
स्वणा तणा सुख भोगवी सार, मध्य लोक हूउ अवतार ॥२॥३६३॥

भवदत्त चर जेह तु सुरेन्द्र, वज्रदत घिर सागर चद्र ।
भवदत्त चर जे स्वरग मझार, महा पद्म घिर शिव कुमार ॥३॥३६४॥

वैराग्य वस धरी दिक्षा तेह, स्वरग छठि अवतरीया वेह ।
इद्र प्रतीद्र हूया तिहा रही, देव देवी सुख भोगवि सही ॥४॥३६५॥

साभलि बछ अम्हारी वात, मगध देश सवाहन क्षात ।
सुप्रतिष्ठ राजाछि भलु, दान शील सयम गुण निलउ ॥५॥३६६॥

तस घिर राणी शील सती, सुलक्षणा नामि गुणवती ।
सागरचन्द्र चर जे सार, तस कूखि हूउ अवतार ॥६॥३६७॥

नव मास पूरे हूउ सूत, सौधर्म्म नामि दीउ तव पुत्र ।
दिन दिन वृद्धि विर रहउ, अनुक्रमि विद्या सवे लह्यु ॥७॥३६८॥

एक दिवस विपुला वीर, आव्या जाण्या राइ धीर ।
जिन वादी जिन पूजी पाय, विठउ नरपति तिणे ठाय ॥८॥३६९॥

धरम वली प्रामी वैराग, दीक्षा लेई कीधु माग ।
तप जोगि गणधर पदलही, देक्षउ मुनिवर सव्यु सही ॥९॥३७०॥

हू वैरागि वासउसार, लीधी दिक्षा मि भवतार ।
पचम गणधर हूउ वली, बिहार करम करि मन रली ॥१०॥३७१॥

आव्यु एणा नगरोद्यान, ध्यान रहू मूकी वली मान ॥
मुझ देखी तुझ उपनु नेह, पूरव भव सस्कारज एह ॥११॥३७२॥

साभलि वछ तुमारी बात, भवदेव ब्राह्मण विक्षात ।
लही वैराग दीक्षा घरी जेह, तृतीय स्वरग हूउ वली तेह ॥१२॥३७३॥

स्वरग तणा सारा सुख लही, शिव कुमार हूउ ते सही ।
तप जप ध्यान सूवउ तिणि धरी, अंत काल जिणि दीक्षा करी ।।१३।३७४।

अणशण पाली स्वरग मझार, विद्युत्माली हूउ भरतार ।
च्यार देवी सु लही सयोग, तिहुसर सुवली सही भोग ।।१४।।३७५।।

दस सागर ते जीवी आय अग अनोपम रूडी का म ।
तिहा थकी चवी सुरसार अर्हंदास धिर जवूकुमार ।।१५।।३७६।।

स्वरग देवी च्यारि जे हती, तिहा थकी चवी ते सती ।
जू जूउज नमहूउ तेह तणु, समुद्रदत्त आदि ते सुणु ।।१६।।३७७।।

नव यौवन पूरी ते नारि, आज थकी दिन दशमी सार ।
चिहुनि परणी लही सयोग, तिहु सरसउ तु लहे सवियोग ।।१७।।३७८।।

जे पूछी ते तुझ कही वात, पूरव भव तणीय क्षात ।
वचन सुणी प्राम्यु वैराग्य, धिर जावा नही ए लाग ।।१८।।३७९।।

जंबुकुमार का दीक्षा के लिये निवेदन

दिक्षा मागी मुनिवर पास, ससार तणी छोडी आस ।
वचन सुणी मुनिवर कही वात, धिर जाई तम्हे पूछउ तात ।।१९।।३८०।।

माय बाप हुया वहूवार, स्वजन बघउ एणि ससार ।
तु माता तु तातज कही, भव संसार उतारू सही ।।२०।।३८१।।

प्रथम ससार भमता अह्मो, पडता राखु स्वामी तम्हो ।
हवडा काइन कस समाल, हु छु स्वामी तम्हारू बाल ।।२१।।३८२।।

माता पिता से आज्ञा मांगना

गुरु वचने धिर जई कुमार, माय तात मिल्यु तिणि वार ।
दुख करि माता तिहा रही, पुत्र प्रसंसि माता सही । २२।।३८३।।

सुणउ माता अम्हारी वात, अह्मे दिक्षा लेसु सुणु तात ।
वचन सुणी मूर्छा गति हुई, नांखी वाय ते बिठी थई ।।२३।।३८४।।

रदन करि दुख आणि घणउ, पुत्र प्रसंसि माता सुणउ ।
वार वार स्वरगि सुख भोग, भोग लही लहि वियोग ।।२४।।३८५।।

तुहि नृपति न पाम्यु सार, दुख सह्या एणि ससार ।
हिवडां दिक्षा लेउं वन रही, पच महाव्रत पालु सही ।।२५।।३८६।।

पूरव भव मातानि कह्या, पुत्र थकी माताइ लह्या ।
सुणु हो पुत्र सुखी हउ जेम, इसु आदेश दीउ वली तेम ।।२६।।३८७।।

दूहा—तिणि अवसर तिणे श्रेष्ठी ए, मोकल्या पुरुष ज वेह ।
कन्या घिर जाई कहु, कुमर लेइ तप हेव ।।१।।३८८।।

तिणे जाई तिहु नि कहु, पूरव सहू वृतात ।
वज्रपात तिहु नि हुउ, वात सुणी वली कत ।।२।।३८९।।

अन्य मन माहि चितवि, अन्य हूइ तिणि वार ।
शुभ शुभ जीव भोगवि, कर्म तणि अनुसार ।।३।।३९०।।

दूत वचन जव साभली, बोली कन्या सार ।
ताहरी मागी कन्या का, कुण परणिए नारि ।।४।।३९१।।

जाति शुध जे स्त्री हुइ, ते नवि वांछि अन्य ।
एक बाप एकह गुरु, एक एक कुल धन्य ।।५।।३९२।।

एणि जन्म एह वर, अन्यह तात समान ।
ए सुनिस्यउ मन सु करी, मूकि नही ते मान ।।६।।३९३।।

एक रात्रि एक दिवस परणी नि वली एह ।
अम समीपि जू रहितु नवि छाडि गेह ।।७।।३९४।।

वचन सुणी कन्या तणां, कन्यानो वलि तात ।
अर्हदास घिर आवीया, कुमर प्रति कहि बात ।।८।।३९५।।

एक दिवस परणी करी, घिर रहू एक दिन ।
पछि दिक्षा लेय जो, जु तम्ह हुइ मन ॥९॥३९६॥

वचन सुणी सुसरा तणा, बोलि जम्बूकुमार ।
लाज आणि मन आर्पाण, हाय भणी तिणी वार ॥१०॥३९७॥

ढाल वीवाउलानी

जंबू कुमार का विवाह

अर्हंदास आदि चइहु घिरे, उछव हु अपार रे ।
मडप घाल्या अति रूयडा, सोहि घिर घिर सार रे ॥१॥३९८॥

चन्द्रोया तिहा वाधीया, सावीय पट्टकूल पट्टरे ।
तोरण को रणी अति भलो, रयण मि ऊब स्वा थहरे ॥२॥३९९॥

कुशम माला तिहा लहि लहि, मह मह परिमल पूर दे ।
ममर भमि तिहां अति घणा, परिमल लीणावे सूर रे ॥३॥४००॥

वाजित्र वाजि ते अति घणा, ढोल ददामा नीसाण रे ।
तिवलीय तूर सोहामणा, जाजिय वाजिय जाण रे ॥४॥४०१॥

गीत गाइ वर कामिनि, भामिनी करि रंग रोलरे ।
नृत्य करि वर कामिनि, भाभीय भामणा रंग रे ॥५॥४०२॥

धन धन जननीय एह तणी, धन धन एह तु तात रे ।
धन धन जिणि कुल ऊपनु, धन धन एह नी जात रे ॥६॥४०३॥

वंदी जन विरदाललो, वोलिय कुमरनी सार रे ।
लगन तणु दिन आवीउ, भावीउ ते तिणी वार दे ॥७॥४०४॥

चपल चंचल अश्व चडीय, चालीउ जवू कुमार रे ।
तिणी चडी अति सोभीउ, जाणउ इद्र अवतार रे ॥८॥४०५॥

सासूइ कीधा पूषणा, पूरयीउ वर तिणे ठाम रे ।
माहिरामाहि आणीउ, आचार करीय ते ताम रे ॥९॥४०६॥

हस्त मेलापक तिहा हूउ, हूउ छि जय जय कार रे ।
च्यारि कन्या तिहा परणीउ, जिनदास तणु कुमार रे ॥१०॥४०७॥

दूहा—च्यार कन्या तिहा परणीउ, चिहु श्रेष्ठीनी ताम ।
हरप धरी हीयडि घणउ, बोलि ते गुण ग्राम ॥११॥४०८॥

ढाल बीजी वीवाउलानी

च्यार कन्या तिणी वार, परणीड जबूकुमार ।
मुसरि आपी परिद्धि, पामीउ अति घणी सिधि ॥१॥४०९॥

आपीया माणक मोती, कनक प्रवाला सजोती ।
रयणामि हार दीनार, आपीया सोवन सार ॥२॥४१०॥

बाजूबंध विरखी आप्या, रयण सघासन थाप्या ।
सासुए वर वधाव्यु इणी परि, बहू द्रव्य लाव्यु ॥३॥४११॥

सुसरि आप्यु भडार, आप्सु सार शृंगार ।
अति धण सतोपीए, बोलिय गुण ग्राम तेह ॥४॥४१२॥

जमण जमि मनोहार खाजा लाडूय सार ।
विविध प्रकार पकवान, जमणजमि घणि मान ॥५॥४१३॥

बहूवर दीधी आसीस, जीव जे कोडि वरीस ।
उछव उहित अपार, वाजिभ वाजता सार ॥६॥४१४॥

दिवसह पश्चिम भाग, चालीउ जाणीय भाग ।
च्यार कन्या तव लेई, आव्यु मदिर सोइ ॥७॥४१५॥

मदिर मचक ताम, बिठउ ते तिणि ठाम ।
धरी मन हरष आनद, वाध्यु धरमनु कद ॥८॥४१६॥

दूहा—तिणि अवर अस्ताचल, अस्तज पाम्यु सूर ।
अंधकारि सहू व्यापीउ, कोह नवि दीसि भूर ॥१॥४१७॥

पदमनी खडनि चक्रमा, विरह करतु तेह ।
कामी जननि कामिनी, तेह सु धरतु नेह ॥२॥४१८॥

घिर घिर दीपक प्रगटीया, नभ उग्यउ तव चद ।
अंधकार सहू नासतु, करतु उद्योत आणद ॥३॥४१९॥

स्वजन आदेसि कन्यका, आवी तेह पल्यक ।
जबूकुमार पासि रही, पामी तेह नु अक ॥४॥४२०॥

प्रथम मिलन

कामाकुल ते कामिनि, करि ते विविध विकार ।
अंग देखाडि आपणा, वली वली जबूकुमार ॥५॥४२१॥

गीत गांन गाहे करी, कुमरउ पाइ राग ।
अधिक वैरागि वासीउ, ते किम पामी राग ॥६॥४२२॥

तिणि अवसर ते चिंतविए, ससार असार ।
सार वस्तु कांइ नही, कामिनी काय मझार ॥७॥४२३॥

दुर्गति दाता कामिनी, बाघिण सापिण एह ।
नव द्वारे अशु अवितो, ते सरसु सउ नेह ॥८॥४२४॥

जे स्त्री आठइ लाधी घीया, ते नर छूटि केम ।
जउ माया छोडि सही, तु नर छूटि एम ॥९॥४२५॥

ढाल हिंडोलानी—राग मारूणी
परस्पर वार्तालाप

पदमस्त्री सखीयां कहि सांभलि मोरी बात ।
वधिर आगि लगाँन, जिसु जीविडलारे अध आगिल जे सु नृत्यु ॥१॥४२६॥

तु इम जाणि तप करी, स्वरगज थाउ देवि ।
तिहा अह्मो देवागना, जीवड लारे इ सुय कहि ते देवि ॥२॥४२७॥

निस्पल फल मूकी करि जे फल वाछि अन्य ।
ते मूरख कोइ नवि लहि, जीवडलारे चिंतवि आपणि मन ॥३॥४२८॥

एह ऊपरि कथा कहुं सांभलि तुं कत सार ।
घनदत्त एकहालिक, जीवड लारे परणीउ एकज नारि ।।४।।४२६।।

ते नारी एक सुत हूउ मरणज पामी नारि ।
वृद्ध पणि वीजी वरी, जीवडलारे कामा कुल तेणी वार ।।५।।४३०।।

एक दिवस सूतां विन्यि पल्यंक, रात्रि मझार ।
पराग मुखी नारी हुइ जीवडलारे साभलि तु भरतार ।।६।।४३१।।

प्रथम पुत्र जे तुझ अछि, ते हनि तुह जमार ।
तु आपण सुख भोगवउ, जीवडलारे एम वोलि ते नारि ।।७।।४३२।।

सबल पुत्र तुझ तणु, मुझ पुत्र करि सेव ।
लु आपणा यु किम मिलि, जविडलारे इणि मारि सुख हुइ हेव ।।८।।४३३।।

कठिन वचन जव साभली, बोलि घनदत्त वात ।
बस राखिं ग्रह उद्धरि, जीवडलारे ते किम मारीय सुत ।।९।।४३४।।

राज डंड वली ऊपजि, पाप हुइ अपार ।
ए कर्म कीम कीजीइ, जीवडलारे सांभलि नारि विचार ।।१०।।४३५।।

हल आगिल तेहनि घरी, हलनि चउडि तेह ।
इणिमां तंतर मार जे, जीवडलारे काई नही हुइ तुझ गेह ।।११।।४३६।।

समीप थकी पुत्रि सुणी सघली तिहुंनी वात ।
शाल क्षेत्र ऊखेडीनि, जीवडलारे वाव सुणा णवला तात ।।१२।।४३७।।

इसे दृष्टाते वूझव्यु वूझ्युं ते वली बाप ।
निस्पल फल मूकी करी, जीवडलारे कुण वछि सताप ।।१३।।४३८।।

स्वाधीन सुख मूकी करी, स्वरग वाछि जे सार ।
ते हालि कसम जाणीइ, जीवडलारे तिम जाणउ एह कुमार ।।१४।।४३९।।

वचन सुणी नारी तणा, बौलि जबू कुमार ।
एह समु मुझ काई करू, जीवउलारे सुणु एक कथातर सार ॥१५॥४४०॥

विध्याचल मोटु गज मरणज प्राम्युं एक ।
नदीय नीरि तांण्यउ वली, जीवडलारे काखि छिघाउ सेक ॥१६॥४४१॥

ते ऊपरि एक वायस विठउ, ग्रामिख लोभ ।
समुद्र माहि जाई पड्यु जीवडलारे पामी ग्रति घणउ लोभ ॥१७॥४४२॥

करा करा करि घणु जीवानि नही लाग ।
गज वायस विन्यि पड्या जीवडलारे समुद्र मध्यि विभाग ॥१८॥४४३॥

मास लोलप वायस मूउ पडीड समुद्र मझार ।
तेह सरीखु हु नही, जीवडलारे नहि पंड्यु एणि ससार ॥१९॥४४४॥

कनकश्री बोली वली सामलि कत मुझ बात ।
कैलासगिर थी वानरि, जीवडलारे कीउ वली झपापात ॥२०॥४४५॥

शुभ ध्यानि ते वली मउ, विद्याधर हुउ चग ।
एकदा मुनिवर वादीया जीवडलारे तिणि भव कहु मन रग ॥२१॥४४६॥

एकदा स्त्री सहित सु, ग्राव्यु तेणि ठाम ।
पूरव कथांतर स्त्री कही, जीवडलारे मरण करुं एणि ठाम ॥२२॥४४७॥

वचन सुणी भरता तणा, रदन करि वली नारि ।
स्त्रीय निखेधउ ते पडउ, जीवडलारे कपि हूउ प्रोढि ग्रपार ॥२३॥४४८॥

स्वीकीय सुख मुकी करी, वांछि देवज सुख ।
ते नर गजनी परि जीवडलारे प्रामि ग्रति घणु दुख ॥२४॥४४९॥

ते नर सरखु हू नहीं, सांमलि नारि विचारि ।
विंध्याचल पर्वत भलु, जीवडलारे वानर एक उदार ॥२५॥४५०॥

कामातुर पीड्यु सही जे, जणि वानरी पुत्र ।
तेहनि मारि ते वली, जीवडलारे अजाणति रह्यु एक सुत ॥२६॥४५१॥

ते कपि यौवन प्रामीउ, जननी सुकरि सग ।
वृद्ध वानर तिणे देखीउ, जीवडलारे जुध करतां प्राम्यु भग ॥२७॥४५२॥

ते पूठि वानर थउ, नाग वानर वृघ ।
गहन वन माहि जाई रह्यु, जीवडलारे नीसरू तेह अवघ ॥२८॥४५३॥

क्षुधा तृषा पीड्यु वली सरोवर आव्यु तेह ।
पंक माहि रकतु वली, जीवडलारे प्रामीउ मरणज तेह ॥२६॥४५४॥

विषायतुर जे नर हुइ, कपि मरि यामि मृत्यु ।
विषय कर्द्दम माहि पड्यउ, जीवडलारे हु नही कएसी कात ॥३०॥४५५।

विनयश्री बोलिइसु साभलि तुं मुझ कत ।
सखनाम दारिद्री एक, जीवडलारे दरिद्र करि रे एकात ॥३१॥४५६॥

उदर आटउ देई घणउ. दिन दिन दमकउ एक ।
एकठउ करी मुइ खेपवि जीवडलारे नवि खाइ काइ ते रक ॥३२॥४५७॥

तिणि वन को एक नर रूप टका भूइ मध्य ।
घातीनि यात्रा गउ, जीवडलारे दरिद्री लही पाम्यु सिधि ॥३३॥४५८॥

लोभ थकी दरिद्री तिहा पुनपि खेप्यु ताम ।
पात्रा करी पूरव नर, जीवडलारे काढि लेउ गउ ताम ॥३४॥४५६॥

स्त्रीनु वचन लेई करी, खणवा लागउ दाम ।
पुनरपि कुंभ सोनी भरयु, जीवडलारे प्रामीउ तेणि ठाम ॥३५॥४६०॥

लोभ थकी तिहा सातीउ, प्राम्यु हरपज तेह ।
वन सचित पूरव धन, जीवडलारे वली भोगवु एह ॥३६॥४६१॥

कष्ट करी दिवस प्रति दम कु मूकि एक ।
धूरत एक देखीउ जीवडलारे गलवी लेइ गउ छेक ।।३७।।४६२।।

एक दिन तिणि जोइउ गलु देक्षु सर्व ।
दुख करिते अतिघणु जीवडलारे पूरव गयु मुझ द्रव्य ।।३८।।४६३ ।

द्रव्य लह्यु विलसि नही, लहु नवि भोगवि सुख ।
लोभ थकी सखनी परि. जीवडलारे ते नर प्रामि दुख ।।३९।।४६४।।

वस्तु—तेण अवसर तेण अवसर जवू कुमार ।
सुणीय वचन वली बोलीउ साभानि नारी मुझ बात ।
ते सुरसुहु नवि अछु करू नही ससारपात ।
ए कथातरि तुझ कहुं सांभलि नु वलि नार ।
सार सौक्ष जिम भोगवु ससृत पामु सार ।।१।।४६५।।

राग रागिरी

सामलि नांरि एक कथा रे, लुब्ध दत्त एक सार ।
एक दिवस व्यापार गउ रे, चाल्यु आव्यु वन माहि रे ।
भवीयण धर्म्म करू एक सार, धरमि सिव सुख पामीइरे ।
धरमि अरथ भडार रे, प्राणी धर्म्म करू एक सार ।।१।।४६६।।

वणिक पूठि एक गज थउरे, यम रूपी तेह जाण ।
वणिक नासी ते आवीउरे, कूप काठि ते सुजाण ।।२।।४६७।।

कूप तढि एक वट वृक्ष रे, वउवाई साई तेह ।
मूषक कालु ऊजलु रे, वडवाई कापि वेहरे ।।३।।४६८।।

चिंतातुर श्रेष्ठी हुइ रे हुय करू हवि केम ।
कष्ट पड्यु दु ख भोगवुरे मरण पाम्यु वली ए परे ।।४।।४६९।।

हेठउ तिण जब जोईउरे, आजगिरि देख्यु ताम ।
चिहु पासे सर्प देखीयारे, कसाय रूपी एह नाम रे ।।५।।४७०।।

इसीय चिंता माहि पड्यउरे, गज आव्यु तिणि ठाम ।
आवीय वट हलावीउरे, मघउ पड्यु मुखह ताम रे ॥६॥४७१॥

मक्षिका ऊडी अति घणी रे, आवी लागी तास देह ।
दुख देई ते अति घणा रे, कुण सहि दुख तेहरे ॥७॥४७२॥

तिणि अवसर एक खगपतीरे, आव्यु तेणि ठाम ।
कष्ट पड्यु नर देखीउ रे, बोलि विद्याधर ताम रे ॥८॥४७३॥

साभलि नर इहा थकी रे, काढु तुझनि हेव ।
परवस दुख काई भोगवी रे, इसुय कहि तेणि खेवरे ॥भवी॥९॥४७४॥

मधु विंद लोभि लोलिउरे, वाछि बीजी वार ।
ता लगि रहु तम्हे खगपति रे, इसु य कहि निरधार रे ॥१०॥४७५॥

वचन सुणी खग बोलीउरे, साभलि मूढ गमार ।
मधु विंदु सुखकरी लेखविरे, दुख न देखि अपार रे ॥११॥४७६॥

विंदु बीजु मुख नवि पडि रे, तुरषा तुर वली तेह ।
दुख घणा पामीउ रे, खग गउ आपणि गेह ॥१२॥४७७॥

वडवाई कापी मुख किरे पडीउ कूप मझार ।
पडतु गिरि ते गल्यु रे, दुख सह्या अपार रे ॥१३॥४७८॥

लवलेस सुख कारणि रे, दुख न जाणि गमार ।
एणि ससार नहू पडउ रे, नारि सुणु विचार रे ॥१४॥४७९॥

रूपश्री एसु बोलीउ रे साभलि कत मुझ बात ।
एक कथा कहु रूयडी रे, सर्प्प तणी विक्षात रे ॥१५॥४८०॥

एक दिवस मेघ आवीउरे गाज वीज करी भार ।
सात दिवस वृष्टि करी रे, थोडी हुई पछि धार रे ॥१६॥४८१॥

क्षुधा पीड्यु एक नीसरयु रे कोट वाहिर चकलास ।
भमता देखीउ रे महा भुयगम वासरे भवीयण धर्म करु एक सार ॥१७॥४८२॥

चल चपल जिह्वा अछि रे, मेल्हतु विष तणी झाल ।
कुंडल वाली जव रह्युउ रे, जाणउ एहज काल रे ॥१८॥४८३॥

देखी कांकिडउ चिंतविरे, ए आगिल जीव केम ।
इसुय चिंती ते चालीउरे, नकुल तिणि छिद्र एमरे ॥१९॥४८४॥

पूठि थकी अहि चालीउरे, ते गउ छिद्रज माहि ।
चकलास पाम्यु मूंकीउरे, नकुल तणि गउ गेहरे ॥२०॥४८५॥

नकुलि अहि तव मारीउ रे, भक्ष कर्‌यु तणि ठाम ।
चकलास पांम्यु मूंकीउरे, सर्प्प पाम्यु दुख ताम रे ॥२१॥४८६॥

स्वाधीन सुख नवि भोगवि रे, ते नर प्रामि दु.ख ।
सर्प तणी पिरि अतिघणा रे, काइ नव पामि सुख रे ॥२२॥४८७॥

ते सरषु स्त्री हु नही रे, बोलि जंबु कुमार ।
शीयाल कथा कहु रूयडी रे, साभलु तम्हो सहू नार रे ॥२३॥४८८॥

दूहा—जंबुक एक रात्रि वली आव्यु नगर मझार ।
वली वर्द्द एक देखीउ, मरण पाम्यु एक वार ॥१॥४८९॥

मस लोलप सीयालीउ, वलद पजर मध्य भाग ।
मास खाई तिहां रह्यु, नवि लह्यु रात्रि विभाग ॥२॥४९०॥

दिनकर ऊग्यु जाणीउ, जावानि नही लाग ।
पच सात जोवा मिल्या, न लहि जावा माग ॥३॥४९१॥

हृदय माहि इम चिंतवि, खूटउ मुझ तणु आयु ।
रजनी मामु जु किमि तु रासु, वली काय ॥४॥४९२॥

एक पुरुष तिहा आवीउ, लीधा करणनि पूछ ।
दत पाडि वीजि लीया, वसीकरण तिणि अछि ।।५।।४६३।।

जीवत आश्या परहरी, मारयु ते शीयाल ।
स्वान वायस भक्षण कर्‌यु, तव पाम्यु वली काल ।।६।।४६४।।

विपयासक्त जे नर हुइ ते सहि दुख अपार ।
नरक तिर्यं च माहि रलि, कहा नवि लहि सुख सार ।।७।।४६५।।

ढाल थूल भद्रनी—राग देशाख

एक अवसरि रे विद्युच्चर आव्यु वली, काम लता रे घिर थी रात्रि मनरली ।
पुर भमतुरे आव्यु जवू घरि भणी, जिहा सुतुरे नारी सुकुमार सुणी ।।१।।४६६।।

धन देखी रे मनमाहि चित रही, धन लेवु रे एह तणु चिति सही ।
तिहां साभली रे कथा तिहुनी अति धणी, विस्मइ प्राम्यु रे चोर मनसुते सुणी ।२।४६७।

तिणि अवसर रे माय आवी कुमर तणी, सवेग वासु रे तप लेई जाइ वन भणी ।
इसुं जाई रे माता तिहा रही, देक्षउ प्रभवु रे माताइ तिहा सही ।३।४६८।

पूछिउ कुण रे चोर छउ माता हू वली, आव्यु चोरी रे करवा प्रभवू कही रली ।
धन लेउ रे नगर तणा उमि अति घणउ, तुझ मिंदर रे धन लेवा आव्यु सुणु ।४। ४६९।।

बोलि जिनमती रे जे जोइ लेउ तम्हो, विग्र चित रे काइ अछु माता तम्हो ।
मुझ पुत्र रे एक छि भाई तम्हो, सुणु दिक्षा ले वारे ऊपरि भावछि अति वणु ।५।५००

इणि कारण रे विग्र चित्त घणी अछउ, तिणि कारण रे वार वार रे जोउ अछुं ।
बोलि प्रभवु रे विद्या मुझ कनि घणी, मोहस्तभन रे मेलापक भंजन तणी ।६।५०१।

दिघि दर्शन रे सुप्त प्रवोधन अजन, केम रूठा रे केम मनावीइं भजन ।
मुझ विद्या रे जु मोह पाडउ एवली माय, आवीरे तुग्र कह्लि इसु सांभली ।७।५०२।

पुत्र पूछि रे कुण कारण आव्या इहा, तुझ मामुरे दिवस घणे आव्युउ इहा ।
लीधउ प्रभवि रे वेस वणिकनु अति भलु, आव्यु मदिर रे माहि विठउ एकलु ।८।५०३।

कुण ठाम थी रे आव्या मामा तम्हे कहु, बोलि प्रभवु रे साभलि भोणेजहु कहु ।
घणउ भमीउ रे व्यापार कारणि हु वली, तुझ आगिलइरे कहु सामलु मन रली ।६।५०४

चडावु

विभिन्न देशों के नाम

मन रलीय भमीउ उत्तर दक्षण पूरव पश्चिम ए दशि ए ।
करणाट सिंघल द्वीप केरल देश चीणक ए दिशि ।
कुंतल देस विदर्भ जन पद सह्य पर्वत प्रामीउ ।
नर्बदा नारि विंध्य पर्वत तिहा आव्यु मामीउ ।।१।।५०५।।

भरुयच पाटण आहीर कुंकण देश कछि आवीउ ।
सौराष्ट्र देसि किष्कध नगरी, गिरनारि पर्वत भावीउ ।।२।।५०६।।

नेम निर्वाण जिहा पाम्या राजीमतीइ तप ग्रही ।
तिहां आवी जिणवर पाय प्रणमी, मानव भव सफल ग्रही ।।३।।५०७।।

अर्बदाचल मेवाड देस लाड मरहठ पामीउ ।
चित्रकोट गुजराति देस मालव देशि कामीउ ।।४।।५०८।।

कासमीर करहाट देस विराट हुं भम्यु अति घणउ ।
परिभ्रमण कीधा द्रव्य कारणि, पार न पाम्यु तेह तणु ।।५।।५०९।।

चालि

बोलि प्रभवु रे सांभलि जवू तुझ कहुं इणि ससार रे सुख दुर्लभ जीव सहू ।
सुख प्रामी रे भोगवि जे पुरख नही, त प्रामी रे दुख सहि इहां रही ।।१।।५१०।।

तप लेई रे परलोकि सुख लहि ते मूरख रे काइ न जाणिइ सुं कहि ।
जीव पारषि रे सुख दुख कुण भोगवि, जीव पाखि रे पुण्य पाप कुणसभवि ।।२।।५११।।

देह माहि रे पंच भूते जीव हवउ, पच भूते रे गई जीव तिहां चवउ ।
इम जाणि रे पुण्य पाप को नवि लहि, इसु जाणि रे ससार सुख मोक्ष कहि ।३।५१२।।

परस्पर वार्तालाप

बोलि जंवू रे साभलि प्रभवा तुझ कहु, जु एह देह रे पच भूते करी लहुउ ।
माता पिता रे पाखिए रेह नवि हूउ, कुंभ नीपनु रे पच भूते करी इम कहु ।४।५१३।।

तुं ज्ञानी रे ए कुभ कार्इसि नही जीव मोहि रे ससार माहि पडि सही ।
जीव घरमि रे स्वरग मुगति लहि वली ।
जीव पापि रे नरक दुख भोगवि भली ।।५।।५१४।।

जीव पाखि रे सुख दुख कुण भोगवि, जीव पाखि रे पाप पुण्य कुण सभवि ।
बोलि जवू रे पूरव भव सहू आपणा मि पूरवि रे सुख दुख सह्यां घणां ।।६।५१५।।

कहि प्रभवु रे साभलि जंवू तुझ कहू, एक उटि रे वन भमता कूप लहुं ।
कूप काठि रे मघ ऊजालु वृभि अछि, तिहा ऊडी रे मक्षक व लगी देह पछि । ७।५१६।।

मधु मक्षणु रे कीधु करभि मन रली, आघेरु रे जेतलि तेहज वली ।
कूप मध्यि रे पडीउ तेहज वापडउ, मधु लोभि रे मरण प्राम्यु उटडउ ।।८।५१७।।

दुख सहीयांरे अति घणा तिणि प्राणीइ इसु जाणी रे सवर मन माहि आणीइ ।
बोलि जवू रे सांभलि प्रभवा ए तुझ कहू एक वाणीउरे व्यवसाय करि वहू ।।९।५१८।।

चडावु

व्यवसाय वणिक एक चाल्यु देस देसि ते भमि ।
लोभिय लीणउ तेह प्राणी दुख घणा ते खमि ।।
सहस्र हूउ लाख वाछि लाख नु धणी कोड ए ।
कोड पामी राज पाम्यु तुहि तृपति न ओडए ।।१।।५१९।।

पथी जाता तृषा पीडउ जल किहा किम मिलउ ;
अरण्य पडीउ इसु चिंति केमइ हाथी नीकलउ ।
नीसरु जे तलि चोर देखउ मूसीयधन सहूइ लीउ ।
तृपा पीडिउ रात्रि सूता स्वपन माहि जल पीउ ।।२।।५२०।।

जाग्यु रे जे तलि काइ न देखि, किहा सर किहा जल ।
जिह्वा रे स्वादन करि प्राणी काइ नवि लहि बल ।
जिह्वा रे स्वादन वरत तेहनी तृषा तेहनी नवि गई ।
तृषा पीडउ मरण पाम्यु दुख भोगवि तिणि लई ।।३।।५२१।।

दूहा—विद्युच्चर इम बोलीउ साभलि जबू कुमार ।
वणिक एक तस कामइनी यौवन प्रामी सार ।।१।।५२२।।

निज द्रव्य लेई नीकली मिलीउ धूरत एक ।
स्नेह बांधी तेह सुवली सुख विलसि अनेक ।।२।।५२३।।

तिहां रहती वली अन्य सु लब्द हुइ तिणीवार ।
बिहू सरसां सुख भोगवि को नवि जाणी पार ।।३।।५२४।।

जरि वृतातह जाणिउ कपट धरी मन माहि ।
पूर्व वृतात तलवर कही मन सु धरी अति दाह ।।४।।५२५।।

आजि रात्रि तम्हो आव जो, लाभ हसि मुझ गेह ।
इसु कहीय घिर आवीउ, सयन सूतु वली तेह ।।५।।५२६।।

कामाकुल ते कामिनी, सूती सिज्या जई सार ।
तिहा धूरति सहू देखीउ, स्त्रीय चरित तिणि वार ।।६।।५२७।।

रात्रि सकेति आवीउ, नगर तणु रक्षपाल ।
नगर लोक जागवतु, आव्यु तिहा कोटपाल ।।७।।५२८।।

जार सिप्या थी ऊठी करी आवी धूरत पास ।
तल रक्षक वली आवीउ धूरत तणि आवास ।।८।।५२९।।

आवी धूरत बोलीवीउ कुण अछि तुझ गेह ।
हु नवि जाणउ बोलीउ कोई ग्रहउ वली तेह ।।९।।५३० ।

लुष्ट मुष्ट करी बाधीउ जार ग्रह्यु तिणि ठाम ।
राजभय थी नीकल्यु, धूरत स्त्री लेई ताम ।।१०।।५११।।

नदी काठिवि आवीया धूरत चिंति एम ।
एह मूकी वसु लूटोनि चिति जाउ केम ॥११॥५३२॥

साभलि स्त्री तुझ हुं कहुं, द्रव्य हुइ वली जेह ।
मुझ हाथि आपु तम्हे, पछि उतारू एह ॥१२॥५३३॥

लोभ पणि वसु आपीउ, धूरत पाम्यु सुख ।
एकाकिनी मूकी तिहां रदन करि धरि दुख ॥१३॥५३४॥

एतलि एक सियालिणी मांस धरी मुख एम ।
रही रही जोइ तिहा हवि करसिए केम ॥१४॥५३५॥

मास मूकी पूठि थई मछ गउ चल ठाम ।
ग्रध्र मांस लेइ गउ, रही रही जोइ ताम ॥१५॥५३६॥

हे नारी तिसुं करूं निज मारी भरतार ।
जैसा थि तुं नीकली, ते गउ तुझ भार ॥१६॥५३७॥

नारी संबुक प्रति कहि मुझ थु डाह पण तुझ ।
उभय भ्रष्ट हुई वली किसु य कहु वली मुझ ॥१७॥५३८॥

वस्तु—तेण अवसर तेण अवसर जंबू कुमार ।
विद्युच्चर प्रति बोलीउ साभलि मामा मुझ बात ।
असती जबुक ते समु कांई तु मुझ बात ।
ए ससार असार छिइ सु जाणु सहू कोइ ।
एक कथा कहु रूयडी सहू सांभलु तम्हो लोइ ॥१॥५३९॥

ढाल आणंदानी

जबु स्वामी बोलीउ आणंदानी
साभल प्रभवा बात तु वणिक एक वाहण चड्यु ।
द्रव्य लेइ सघाततु ।आ०॥१॥५४०॥

विधिध वस्तु लेई करी ।आ०। द्वीपातर गउ तेह तु ।
वस्तु वेची तिहा आपणी ।आ०। विविध वस्तु लीधी तेह तु ॥२॥५४१॥

हस्ती घोडा अति घणां ।आ० मणि मणक लीया ताम तु ।
मनसु चिंति घर जई ।आ०। भोगवु' राजनि ग्राम ।।३।।५४२।।

रतन पाम्यउ अति रूयडउ ।आ०। हरषहूउ मन माहि तु ।
वाहण पूरी निज आपणा ।आ०। आवीउ समुद्रह माहि तु ।।४।।५४३।।

समुद्र माहि जव आवीउ ।आ०। रतन पडउ तिणि वार तु ।
हा हा कार तिहा हूउ ।आ०। दुख करि वारो वार तु ।।५।।५४४।।

वाहण खेडि ते नाउडी ।आ०। तिहु प्रति बोल्यु साह तु ।
वाहण राखउ तम्हो आपणउ ।आ०। रतन पड्यु जल माहि ।।६।।५४५।।

ते जोउ तम्हो इहा रही ।आ०। बोलि नौ खड तामतु ।
साथ लहूउ ए वाणीउ ।आ०। किम लाभि रत्न एणि ठामतु ।।७।।५४६।।

वायवेग वांहण जाइ ।आ०। समुद्र अछि अपार तु ।
रत्न पड्यउं इहा किम जाडि ।आ०। मूरख तु य गमार तु ।।८।।५४७।।

तिम ससारह जलनिधि ।आ०। माणस जन्म ए रत्न तु ।
हस्त थकी जव ए गयु ।आ०। नव लहीइए नर रत्न तु ।।६।।५४८।।

वचन सुणी चोर बोलीउ ।आ०। सामलि जंबू कुमार तु ।
विंध्याचल एक भील रहि ।आ०। पारधि करि रे अपार तु ।।१०।।५४६।।

उष्ण कालि गज आवीउ ।आ०। पाणी पीवा सर ताम तु ।
वाण मूकी र्तिण भीलडि ।आ०। मारीउ गज तिणि ठाम तु ।।११।।५५०।।

सर्प डसु भील मूउ ।आ०। धर्तुषि मूउ तव काल तु ।
तिणि स्थानिक ते त्रण पड्या ।आ०। एतलि आव्यु सीयाल तु ।।१२.५५१

हस्ती भिल्ल महि देखीउ ।आ० धनुष देखु तिणि ठाम तु ।
हरष हूउ सीयालीया ।आ०। भव्य प्राम्यु घणु ताम तु ।।१३।।५५२।।

षट मास ए गज हसि ।आ०। मास एक मानव जाण तु ।
एक दिवस ए अहि अछि ।आ०। मन चिंतिए सु अयाण तु ।।१४।।५५३।।

भाग्यवत जीव मुझ समु ।आ०। को नही एणि ससार तु ।
प्रथम घनुष गणए मखु ।आ०। ए सहू पछि आधार तु ।।१५।।५५४।।

घनुष प्रत्यंचा खाइतां ।आ०। तालुउ फूटउ तेह तु ।
मरण पाम्यु ते बापडउ ।आ०। दुख तणा हूउ गेह तु ।।१६।।५५५।।

विद्यमान सुख परहरि ।आ०। जे वांछि स्वर्ग सुख तु ।
लोभ थकी ते बापडउ ।आ०। अति घणा पामि ते दुख तु ।।१७ ।५५६।।

वचन सुणी ते बोलीउ ।आ०। जंबू नाम कुमार तु ।
सांभलि प्रभवा तुझ कहुं ।आ०। कवाडी एक निराधार तु ।।१८।।५५७।।

काष्ट वेच्चिते अति घणां ।आ०। दिन दिन पर ति तेह तु ।
कष्ट करी उदर भरि ।आ०। एकदा वन गउ तेह तु ।।१९।।५५८।।

उष्ट काल पीड्यु घणउ ।आ०। लेई लेई आवि काष्ट तु ।
ताप पीड्यु ते अति घणु ।आ०। आवीय सुतु ते वाट ।।२०।५५९।।

स्वपन माहि तिणि देखीउ ।आ०। जाणि भोगवु राज तु ।
राज लीला करुं अति घणी ।आ०। वली करुं आपणु कांज तु ।।२१।५६०।

छत्र चमर वली भोगवुं ।आ०। सिंहासन रहु ताम तु ।
सेवक बहू सेवा करि ।आ०। भोगवु देस ग्राम तु ।।२२।।५६१।।

राजपुत्री वली भोगवु ।आ०। भोगवुं सौख्य अपार तु ।
स्वपन माहि ए सुख देखतु ।आ०। जगवु स्त्रीइ भरतार ।।२३।।५६२।।

जाग्यु नवि देखि कोइ ।आ०। कोघ हुउ तेणी वारतु ।
स्वपन सुख जे देखीह ।आ०। ते नवि काइ सार तु ।।२४।।५६३।।

कृष्ण वर्ण्णा अति भीखणा ।ग्रा०। दीसती विकराल तु ।
इसी स्त्री आगिल रही ।ग्रा०। कावडीइ देखी तिणि काल तु ।।२५।।५६४।।

कोप करीनि बोलीउ ।ग्रा०। काइ जगाव्यु रंड तु ।
दुख करि मनसु घणु ।ग्रा०। वस्त्र तणु नही खड ।।२६।।५६५।

स्वपन सरीखां जाणवा ।ग्रा०। ससार तणाए सुख तु ।
जे नर नारी मोहिया ।ग्रा०। ते नर प्रामि दुख तु ।।२६।।५६६।।

दूहा—वचन सुणी चोर बोलीउ, साभलि जवू कुमार ।
नृत्य कला एक पूरीउ, नाटक कीउ एक सार ।।१।।५६७।।

एक दिवस राय मदिरि वेश्या लेई वहुत ।
नृत्य करि तिहा रूयडउ हाव भाव संयुक्त ।।२।।५६८।।

विलास विभ्रम करि घणा, देखाली वली नेह ।
लोक तणा मन रीझवि, नृत्य करता तेह ।।३।।५६९।।

संतु वउ राजादिइ कणक कंचण दीनार ।
मणि मुक्तफल अति घणा, नृपति देइ तिणि वार ।।४।।५७०।।

राजा सनमान लही सुख विलसि घण उ तेह ।
रजनी सूता चेतवि, द्रव्य लेई जाउ एह ।।५।।५७१।।

द्रव्य लेई जब नीसर्‌यु, ग्रहीउ अन्य सघात ।
लुष्ट मुष्ट करी वाघीउ, पाम्यु अति घणउ घात ।।६।।५७२।।

राज डंड राजा दीउ पाम्यु दुख अपार ।
लोभ करि जे लोभीउ, इणी परि दुख भार ।।७।।५७३।।

ढाल साहेलडीनी (राग धन्यासी)

वचन सुणी तव बोलीउ, जवू संभलि प्रभवाहो वात ।
नयर वाणारसी राय लोकपाल, तेहनी छि वहू क्षात ।।
साहेलडी वोलि जवू कुमार, एह संसार असार ।।सा०।।१।।५७४।।

तस घिर राणी रूपनी खाणे, कमला तेहनु नाम ।
नव यौवन पुरी ते नारी, काम बाणे पीडी ताम ।।सा०।।२।।५७५।।

आठ मद करी पूरी राणी, नवि जाणि काई विवेक ।
निर्लज नारी कुलनी खापण, आणि अति घणु एक ।।सा०।।३।।५७६ ।

एकदा धाव प्रति कही राणी, माय जोउ मुझ अग ।
काम बाणे मुझ पीडी काय प्राम्याछि अति घणउ भग ।।सा० बोलि ।।४।।५७७।।

को एक पुरप इहा तम्हे आणउ, आणीनि मुझनि मेलु ।
वचन सुणी दासी इम बोलि, जे कहि ते तुझ भेलु ।सा० बोलि ।।५।।५७८।।

रूपि करी काम सरीखु नीसरयु अग्र विभाग ।
स कोमल अग अनोपम काय ए, अछि तेडवा लाग ।।सा० बोलि ।।६।।५७९।।

नव यौवन पूरू सुदर रूप स्वर्णकार चग नाम ।
ते देखि मन विह्वल हूउ एहा तेडउ एणि ठाम ।७।।५८०।।

धात्रिका जाई तेडीउ तेह आणीउ राणी पास ।
राय तणी सेय्या जब मूक्यु पूरसि ए मुझ आस ।।सा० बोलि ।।८।।५८१।।

स्नान मज्जन चदन पुष्प पिहरी, लेई सार शृगार सजयई जब ।
आवी हो राणी वाजित्र बागा तव ।सा० बोलि ।।९।।५८२।।

छत्र चमर सामत सहित, अवीउ राजा हो ताम ।
चग लेई सचारीइ नाख्यु गुप्त राखउ तेणि ठाम ।।१०।।५८३।।

राणीनि मदिर राय पधार्‍या, भोगवि सौक्ष अपार ।
षट मास चग रह्यु तेणि ठाम, भोगवि दुखनु भार । सा० बोलि ।।११।।५८४।।

पाडु राग दुरगध शरीर, पामीउ तेहनु अग ।
राय आदेसि सोधाउ कुड, जलखाल नीसर्‍यु चग ।।सा० बोलि ।।१२।।५८५।।

अंग पखालउ नदी जाइ तेणि, आवीउ नगर मझार ।
पांडुरांग जव देखिउ, लोले विस्मय पामीया भार ।।सा० वोलि ।।१४।।५८६।।

क्षीण गात्र जव दीखीउ, लोके पूछइ हो तेहनि ताम ।
एतला दिवस कहि रया, चंग ते कहु अमनि ठाम ।।सा० वोलि ।।१५।।५८७।।

पाताल कन्या लेई गई, मुझनि तिहा रहु पट माम ।
इम कहीनि ऊतर आप्यु, अवीउ निज आवास ।।सा० वोलि ।।१६।।५८८।।

स्नान भोजन करी हुउ सुरूप, पामीउ रूप अंनग ।
पुनरपि राणीइ देखीउ चग, नेह पाम्यु वणउ रग ।।सा० वोलि ।।१७।।५८९।।

पूरवलीपिरितेडीउ तेह, वोलीउ सोवन कार ।
तुझ घिर भोगव्या जे भोग सार, साभलि ते मुझ अपार ।।सा० वोलि ।।१८।५९०।

इसुय कही घिर आवीउ, तेह नवि मान्यु तेणि ।
वोल जे परनारी लंपट पुरुष, नयर माहि करि रंग रोल ।।सा० वोलि ।।१८।५९१।

नरक तिर्यंच गति उल्लंवी पामीउ माणस जन्म ।
भोग इछा नवि नीगमउ, ए हइसंुय जाणे तम्हे मर्म ।।सा० बोलि ।।२०।।५९२।।

अचल मेरजु चालवु माडि तु नवि चलि मुझ चित ।
पूरवलु सूर पश्चिम ऊगितु, मन नवि आमि भंग ।।सा० बोलि ।।५९३।।

हस्तनागपुर सवर राजा, तेह तणु पुत्र एह ।
विद्युप्रत्र तम्हे नामि जाणउ, आसन भव्यछिदेह ।।सा० वोलि ।।२२।।५९४।।

पद्मश्री आदि च्यार नारी, ते पण हुई निरास ।
पंचसि चोर सहि तसु, प्रभवु, तेणे मूंकी वली आस ।।सा० वोलि । २३।।५९५।।

ज्ञानी करी प्रभवु प्रति वोध्यउ, प्रति वोधी च्यार नारी ।
पचसि चोर तिहा प्रति बोध्या, मात तात तिणी वार ।।सा० वोलि ।।२४।।५९६।।

दूहा—तिणी अवसर उदयाचलि, उदय पाम्यु तव सूर ।
राग रहित कुमरनि, जोवा आव्यु सूर ।।१।।५९७।।

सिय्या कुमर मूकी करि, करि सामायक सार ।
केतला पडि कमणु करि, केवि जंपि नवकार ।।२।।५९८।।

अधिक वैरागि वासीउ, इहा रहिवा नही लाग ।
वन जाई दिक्षा लेउ, करु हू जीवनु माग ।।३।।५९९।।

इसुय जाणी घिर थकी, आव्यु श्रेणिक पास ।
हरप हूउ हीयडि घणउ, प्राम्यु मन उल्लास ।।४।।६००।।

वाजित्र वागा अति घणा, को नवि लाभि पार ।
मुकट कूंडल वाजूव हरसा पहिराव्या कुमार ।।५।।६०१।।

सिवका आणी रूयडी, विसास्यु तिणी वार ।
नगर लोक राय सहित, सुं चाल्युं जम्बूकुमार ।।६।।६०२।।

कुमर चाल्यु तव जाणीउ आवी जिन मती माय ।
दुखि रुदन करि घणु, वली वली लागि पाय ।।७।।६०३।।

ढाल बलभद्रनी—राग बेलाउल

बिलवि ते पुत्रहू एकली तुझ विण रहि उ न जाय ।
तुरू विण उद्वस एस हूइ, सुय कहि वली माय ।
बोलि माय पुत्र पाछावलु, ए दिक्षानु नहि काल ।
तु सुदर नान्हु अछि दीसतु सकोमाल ।।बोलि ।।१।।६०४।।

पुत्र आगिल माता रही करि रूदन अपार ।
बार वार दुख धरि करि मोह अपार ।।बोलि ।।२।।६०५।।

सीयालिसी वाजसि वन रहिणउ न जाइ ।
दत ताढि तिहा खड खडि किम रहिसि हो काय ।।बोलि।।३।।६०६।।

पाए अणू हाणे चालवु ऊपरि सूरज ताप ।
तपती वेलू तपती सिला किम सहि सुहो वाय ।।वोलि।।४।।६०७।।

वरषा काल वरसा तनी किम सहि सुहो घोर ।
झाझावात वाइ घणा किम रहिसु निरधार ।।वोलि।।५।।६०८।।

छह आवस्यक दोहिला महाव्रत पच ।
अठावीस मूल गुण दोहिला दोहिलु तेहनु संच ।।वोलि।।६।।६०९।।

जल विण किम रहि माछली तिम तुझ विण पुत्र ।
मुझ मेहली वीसासीनि कांइ जाउ वन सुत ।।७।।६१०।।

परभव दव पर जालीया, किमि दीधी हो आव ।
किमि मुनिवर दूहव्या किवि छोहा हो बाल ।।बोलि।।८।।६११।।

हाहाकार करि घणु करि रुदन अपार ।
अश्रुपात करि घणु करि विविध विकार ।।वोलि।।९।।६१२।।

मूरछा वस धरणी पडी करी भाणा हो वाय ।
मूर्छा वाली तेहनी सावधान हूउ तस काय ।।वोलि।।१०।।६१३।।

पुत्र कहि माता सुणु ए संसार असार ।
दिया लेवा मुझ देउ, कोई करु अतराय ।।वोलि।।११।।६१४।।

दर्शन ज्ञान चरित्र विना नवि लहीइ मोक्ष ।
माता मुझ मां वारसु. मां धरसु हो रोष ।।१२।।६१५।।

हेतु दृष्टांत देइ घणा प्रति बोधी मात ।
सासु सुसुरा वूझवी प्रति बोधी हो तात ।।१३।।६१६।।

आदेस लेई माय नु चाल्यु, राय संघात ।
लोक सवे तिहां चालीया, बोलता बहू क्षात ।।बोलि।।१४।।६१७।।

दूहा—वाजित्र वांगा अति घणा, वदी जन जयकार ।
हरप हुउ हीयडि भणउ, को नवि लामि पारि ।।१।।६१८।।

तिहा थी वली आवीउ नंदन वनह मझार ।
सोधर्म्म स्वामी प्रणमीनि विठउ जंबू कुमार ।।२।।६१९।।

नगर लोक सहू आवीया, आव्यु श्रेणिकराय ।
त्रण प्रदक्षणा देइनि, विठउ प्रणमी पाय ।।३।।६२०।।

अवसर पामीनि वली. वोलि जंवूकुमार ।
स्वामी मुझ दिक्षा देउ, ऊतारू भवपार ।।४।।६२१।।

इसु कहीनी तिहा रहुं, मुनिवर अग्रवि भाग ।
दिक्षा लेई तिहां निर्मली, छोडि परिग्रह माग ।।५।।६२२।।

ढाल वाजारीनीर-राग गुडो

मुकि परिग्रह वाह्य, आभ्यंतर मूकी वली ।
चेतन हीयलारे ।।१।।६२३।।

मुकट कुंडल वाजूवध हार ऊतारि मन रली ।।चेतन।।१।।६२४।।

शरीर तणां जे वस्त्र सार शृंगार मूंकि सही ।
स्वकीय हस्ति करि लोच, पंच मुष्टी तिहा रही ।।चेतन।।२।।६२५।।

पंच महावरतन भार, पच सुमति भण गुप्त सु ।
चारित्र तेर प्रकार, तेह घरि मन सुध सुं । चेतन।।३।।६२६।।

छह आवश्यक सार मूल गुण घरि वली ।
इद्रीय पंच सहित, विपयनि वारि ते वली ।।चेतन।।४।।६२७।।

गुरनु लही ऊपदेश, लीधी दिक्षा तिहा सही ।
परिसह सहिरे बावीस, ध्यान धरि वन रही ।।५।।६२८।।

हरष्यु श्रेणिकराय स्वजन लोक सहू हरषीउ ।
केतले लीया समकित केतले व्रत तिहा लीयां ।।चेतन।।६।।६२६।।

पंचसि चोर सहित विद्युत्प्रभ तिहां आवीउ ।
प्रणमी मुनिवर पाय दिक्षा लेईनि भावीउ ।।चेतन।।७।।६३०।।

मुकी परिग्रह सर्व चारित्र भार तिहा धरी ।
हूउ मुनिवर राय सर्व संग तिहा परहरी ।।८।।६३१।।

संसार जाणी असार, अर्हदास मुनिवर हूउ ।
लीधी दीक्षा सार, ध्यान धरि मुनिवर सहू ।।चेतन।।६।।६३२।।

जिनमती जे वली माय, दिक्षा लीधी निर्मली ।
पद्मश्री आदि नारि दीक्षा लीधी मनरली ।।चेतन।।१०।।६३३।।

सुप्रभा प्रणमीय पाय, सास्त्र भणी तिहा रही ।
तप जप करि अपार, स्त्री लिंग हणवा ते सही ।।चेतन।।११।।६३४।।

श्रेणिक घरी सहू कोय सोधर्म्म मूनी नमी चालीया ।
आव्या हो नगर मझार, धर्म ध्यानि करी वासी ।।चेतन।।१२।।६३५।।

एक दिवस जवूस्वाम नगर प्रतिवली मावीउ ।
ईर्यापथ सोधत, नीची दृष्टि करी भावीउ ।।चेतन।।१३।।६३।।६

नगर तणी जे नारि, भवन लोकन करि घणु ।
पड़घाई मुनिराय, भाव सहित सु अति घणउ ।।चेतन।।१४।।६३७।।

बोलि हो नगरी नारि, च्यार नार छोडी करी ।
परहरी मायनि बाप, भव धणु मनसु धरी ।।चेतन।।१५।।६३८।।

लीधउ हो संयम भार एह सरीखउ को नही ।
एहवो बोलइ सहू क्षाति, नगर लोक नारी रही ।।चेतन।।१६।।६३९।।

जम्बू हो मुनिवर राय, जिनदास घिर आवीउ ।
पडघाई मुनिराइ, आहार लेईनि आवीउ ।।चेतन।।१७। ६४०।।

तिणि अवसर जिनदास, पुण्य करि नव घिरा ।
आहार अनतर नाम, रत्न वृष्टि हुई घरि ।।चेतन।।१८।।६४१।।

धर्म वृद्धि कही तेण, तप स्थानिक मुनि आवीउ ।
मुगति तणि वली हेतु, अधिक तपि करी भावीउ ।।१९।।६४२।।

ध्यानि धरि मुनिराय, विपुलाचल पर्वत रही ।
शुक्ल ध्यान चडी स्वाम, मोह समावि तिहा सही ।।२०।।६४३।।

सोधर्म मुनि तिणी ठाम, आठ कर्म हणी थया ।
प्रथम पक्ष माघ मास, सप्तमी दिन मुगति गया ।।२१।।६४४।।

दहा—तिणि दिन जंबू केवली, चडीउ उपसम श्रेणी ।
कर्म सवे समावतु, चडीउ क्षपकह श्रेणि ।।१।।६४५।।

तिसठ प्रकृति तिहां क्षय करी, घातु कर्म करी हानि ।
गुणस्थानिक लही तेरमुं ऊपनु केवल ज्ञान ।।२। ६४६।।

इंद्रादिक तिहा आवीया, आव्या चतुर्णिकाय ।
गध कुटी रची भली, प्रणमी केवलि पाय ।।३।।६४७।।

धर्म प्रकास्य केवली, सागार अणगार ।
बार व्रत प्रकासीया क्रिया ते त्रेपन सार ।।४।।६४८।।

आठ मूलगुण कहा, श्रावक नो छह कर्म ।
छ आवस्य मलगुण कहवु ते दश विध धर्म ।।५।।६४९।।

धर्म सुणी राजादिक, आव्या नगर मझार ।
निज स्थानिक देव गया, करता जय जय कार ।।६।।६५०।।

विहार करि वली केवली, पुर पाटणनिग्राम ।
भव्व जीव मति वूझवी, आव्या विपुल गिरि ठाम ।।७।।६५१।।

ध्यान धरी तिहा मुनिवरि, वहुत्यरि प्रकृति करि घात ।
गुणास्थानिक लह्यु चौदमु, क्षय करी कर्म अघात ।।८।।६५२।।

तेर प्रकृति तिहां क्षय करि, रही तिहा अथर पंच ।
हूया ते मुगति नाराजीया, सौक्ष तणु लही संच ।।९।।६५३।।

ढाल दशमी यशोधरनी

जिहां नही ए जामण मरण रूप रस जिहां नही ए ।
जिहा नही ए भोग वियोग, मोग सौख जिहां नही ए ।।१।।६५४।।

ते स्थानिक ए प्राम्यु कुमार, आठ कर्म हणी करीए ।
प्राम्यु मुगति निवास, सार सौख वली धरीए ।।२।।६५५।।

तिहां नही ए देशनि ग्राम पुर पाटण जिहां नही ए ।
जिहां नही ए शीतनि उष्ण, वर्ण गंध जिहां नही ए ।।३।।६५६।।

जिहां नही ए मातनि तात, पुत्र कलित्र जिहां नही ए ।
जिहां नही ए योग वियोग, रात्रि दिवस जिहां नही ए ।।४।।६५७।।

जिहां नही ए काय विकार, सौक्ष अनंत जिहां अछिए ।
जिहा नहीं ए आयु नु अत, तेज अनतु जिहा अछि ए ते स्थानि ।।५।।६५८।।

जिहा नहीं ए जीव समास, गुणस्थानिक जिहां नही ए ।
जिहां नही ए संज्ञाचार, छमयाति तिहां नही ए ।।६।।६५९।।

जिहां नहीं ए मार्गणा नव सिद्ध मार्गणा जिहां ।
अछिए जिहा अछि केवल ज्ञान, केवल दर्शन जिहा अछिए ।।७।।६६०।।

जिहां अछिए क्षयक सम्यकत्व, अनाहारक जिहा अछिए ।
पचतालीसए योजन लाख, स्थानिक पाम्यु ते अछित ॥८॥६६१॥

महोछव ए कीउ निर्व्वाण, देवे मिली मननी रलीए ।
गया सहुए निज निज ठाम, सस्कारी काया वलीए ॥९॥६६२॥

दूहा—अर्हंदास मुनि तप करी, छठा स्वर्ग मझार ।
इद्र तणी पदवी लही, भोगवि सौक्ष अपार ॥१॥६६३॥

स्त्री लिंग छेदी जिनमती तपह तणी परभाव ।
ब्रह्मोत्तर पत्तेंद्र हूउ, भोगवि सौक्ष स्वभाव ॥२॥६६४॥

वासपूज्य चपापुरी, तिहा जई च्यारि नारी ।
तप जप सयम आदरी, ध्यान धरी भवतार ॥३॥६६५॥

सन्यासि कालह करी, स्त्री लिंग छेदी हेव ।
स्वर्ग महर्द्धिक देवता, अवतरीया तत खेव ॥४॥६६६॥

विद्युच्चर मुनि तप करी, सही परीसह भार ।
काल करी सर्वार्थसिद्धि, अवतरीउ भवतार ॥५॥६६७॥

तेत्रीस सागर आयुपुं, पामी मन उल्लास ।
मध्य लोक वली अवतरी, लहिसि मुक्ति निवास ॥६॥६६८॥

प्रशस्ति

काष्ट संघ जगि जाणीइ, नदीयड गछ मझार ।
रामसेन मुनिवर हुआ, गछ तणा सणगार ॥७॥६६९॥

तेह अनुक्रमि मुनिवर हुआ, सोमकीर्ति सुविचार ।
ज्ञान विज्ञानइ आगला, सास्त्र तणा भण्डार ॥८॥६७०॥

तसु पट्टि अति रूयडा, विजयसेन जयवत ।
तप जप ध्यानि मडीया, क्षमावत गुणवंत ॥९॥६७१॥

महो मंडल महिमा घणउ, महीमलि मोटु नास ।
यशकीरति यश आगला, श्री यशकीर्ति अभिराम ॥१०॥६७२॥

तस पट्टि उदयाचलिइ, ऊग्यु अभिनव भांण ।
वाणी जन मन मोहीया, श्री उदयसेन सूरी जाण ॥११॥६७३॥

तस शिष्यइ अति रूयडउ, रच्यु रास मनोहार ।
त्रिभुवनकीर्तिइ सूरीश्वरइ, सौक्ष तणु आधार ॥१२॥६७४॥

जे कवीयण अति रूयडा, तेणे सोधवु एह ।
खरू करी विस्तार वु, दोष न प्रामि जेह ॥१३॥६७५॥

जांइ मडल महीधर, जां सायर ससि सूर ।
ता लगिइ रहु रास, जंबू स्वामिनु ज्ञान तणु ए ॥१४॥६७६॥

सवत सोल पचदोसि, जवाछ नयर मझार ।
भुवन शांति जिनवर तणि, रच्यु रास मनोहार ॥१५॥६७७॥

इति जंबूस्वामी रास समाप्त ।

सवत् १६४४ वर्षे फागुण मासे शुक्ल पक्षे अष्टमं सुक्रवासरे वडवाल नगरे आदिनाथ चैत्यालये श्रीमत्काष्ठा सघे नंदीतट गच्छे विद्यागणे भ० विश्वभूषण तत् शिष्य ब्र० सामल लक्षंत ।

← महाकवि ब्रह्म रायमल्ल द्वारा सवत् १६१३ मे देहली मे लिपिवद्ध पाडुलिपि के अन्तिम पृष्ठ का चित्र।